रायबहादुरबङ्किमचन्द्रचट्टोपाध्याय सी. आइ. ई. कृत

रा ज सिं ह

ऐतिहासिक उपन्यास

जिस को

सर ऐल्फ़्रेड उडली क्रौफ्ट के. सी. आइ. ई. एम. ए,

डाइरेक्टर औफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन बङ्गाल के

आज्ञानुसार

म. कु. बाबू रामदीन सिंह ने

पं० किशोरीलाल गोस्वामी से अनुवाद कराया

और

म॰कु॰बाबू रामरण विजय सिंह ने प्रकाशित किया





पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर

चण्डीप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया

१९१०

सदा के शत्रु क्षत्रियों के गुणों के बखान को तो प्रायः सभी मुसलमान इतिहासलेखकों ने नहीं कहा।

इधर राजपूतों के लिखवाए हुए इतिहासों पर भी पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि इधर भी अपनी जाति का पक्षपात कुछ न कुछ था ही।

म्यानिशी नाम का एक वेनिस नगर का रहनेवाला डाक्टर मोगल बादशाहों के राज्य के समय कुछ दिन तक भारतवर्ष में रह गया था। उस ने भी मोगल बादशाहों के समय का इतिहास लिख रक्खा था; जिस को बार्क नामक पादरी ने छापा है। परन्तु राजपूत, मुसलमान, और कृस्तान इन तीनों के लिखे हुए इतिहास आपस में इतने अनमिल हैं कि प्रायः सच्ची घटना का पता लगाना बहुत ही कठिन है। अब बतलाइये इन तीनों जाति के लिखे हुए इतिहासों में किस की बात सच मानी जाय और किस की झूठ? इस का निबटेरा करना बहुत ही कठिन है। बरन सच पूछिए तो इन इतिहासों में से बीन बीन कर सच्ची घटनावली का पता लगाना बड़े परिश्रम और खोज का काम है।

इतिहास का काम कभी कभी उपन्यास से भली भांति बन जाता है। क्योंकि उपन्यास के लिखनेवाले सभी अंश में सचाई की जंजीर से नहीं जकड़े हुए हैं, बरन वे अपने इच्छानुसार अपने मतलब को पूरा करने के लिये कल्पना का आसरा भी लेते हैं। तौ भी सभी अंश में उपन्यास, इतिहास की गद्दी पर नहीं बैठाया जा सकता। परन्तु इस (राजसिंह) ग्रन्थ में जो

मेरा उद्देश्य है, उस से यह निषेधवचन नहीं चरितार्थ होता। अब मैं समझा देता हूँ कि मेरा उद्देश्य क्या है।

"भारतकलंक" नामक प्रबन्ध में मैं ने इस बात के समझाने का यत्न किया है कि भारतवर्ष की अवनति के कारण कौन कौन से हैं। पर उन सब कारणों में हिन्दुओं के बाहुबल का अभाव नहीं है। इस उन्नीसवीं शताब्दी में अवश्य हिन्दुओं के बाहुबल का कोई चिन्ह नहीं दिखलाई देता। व्यायाम (कसरत) के न करने से मनुष्य के सभी अंग दुर्बल हो जाते हैं। जाति के विषय में भी यही बात जाननी चाहिये। तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में हिन्दुओं का बाहुबल अवश्य लुप्त हो गया है, परन्तु इस के पहिले उस (बाहुबल) का कभी लोप नहीं हुआ था। बस, हिन्दुओं के बाहुबल का दर्साना ही मेरा मतलब है। उदारण के लिये मैं ने राजसिंह को लिया है। क्योंकि मेरा ऐसा विश्वास है कि मरहटों की अपेक्षा राजपूतों की बाहु में अधिक बल था। पर राजोचित और और गुणों में ये मरहटों की अपेक्षा न्यून थे।

तो जब कि केवल बाहुबल मात्र ही के दिखलाने का मेरा विचार है, तो फिर उपन्यास के द्वारा उस कथा को पाठकों के समझाने के लिये राजसिंह के पहिलेवाले तीनों संस्करणों में जिन छोटी छोटी घटनाओं का आसरा लिया गया था, केवल उतने ही से मेरा मतलब नहीं पूरा होता। इसलिये राजसिंह के साथ मोगल बादशाह की जो गहरी लड़ाई हुई थी, वह सभी बातें उपन्यास में लानी पड़ीं। इस बात में मैं ने परिश्रम उठाया है, इसी से इस ग्रंथ का आकार भी इतना बढ़ गया। अलावे इस के

उपन्यास के उपन्यासपने को बनाए रखने के लिये अपनी कल्पना से निकले हुए कई विषयों को भी इस में रखना पड़ा है।

जैसे एक मोटी बात यह है कि लड़ाई आदि का फल; यह जैसा इतिहास में कहा गया है, वैसाही इस में भी है। यहां तक कि इस में कही हुई किसी युद्ध की बात भी कल्पना से नहीं निकली है। परन्तु युद्ध का 'प्रकरण' जो इतिहास में नहीं है, उसी को गढ़गढ़ा कर इस में लगा दिया है। औरंगज़ेब, राजसिंह, ज़ेबउन्निसा, उदयपुरी, ये सभी इतिहास में कहे हुए लोग हैं। इन का चरित्र भी जैसा इतिहास में लिखा गया है, वैसाही इस उपन्यास में भी रक्खा है। पर उन से संबंध रखनेवाली जितनी घटनाएं इस ग्रन्थ में कही गई हैं वे सभी ऐतिहासिक नहीं हैं। और उपन्यास की सभी बातें ऐतिहासिक हों, इस का कुछ काम भी नहीं है।

ऐतिहासिक घटनाओं में किसे सच्ची जान कर लेना चाहिये, इस पर जरा सोच विचार करने की आवश्यकता है। पर मैं ने इस बात का अधिक विचार नहीं किया। इसे दो एक दृष्टान्त दे कर समझा देता हूं—देखिये, रूपनगर की राजकन्या के विषय में जो प्रधान घटना कही गई है, वह टाडसाहब के ग्रन्थ में है, पर आर्म के ग्रन्थ में नहीं है; और उदयपुरी के बारे में जो घटना कही गई है, वह आर्म के ग्रन्थ में तो है, पर टाड के ग्रन्थ में नहीं है। पर मैं ने उन दोनों घटनाओं को सच्ची जान कर ले लिया। दर्रे (रंध्र) में औरंगज़ेब को जिस प्रकार से रोका जाना मैं ने लिखा है, आर्म ने भी इसी भांति लिखा है। पर टाड ने शाहज़ादे का इस घटना में फंसना बतलाया है। मैं ने इस बात में आर्म का

कहना माना है। बस इसी प्रकार और बातों के विषय में भी जान लेना चाहिये।

कहा है कि, " कोई नाच गान न करने पावे, " औरंगज़ेब ने ऐसा हुक्म जारी किया था; पर उस के खास महलों में ही इस हुक्म की कैसी मिट्टी खराब थी, यह बात इस उपन्यास में झलकाई गई है। मुझे पूरा विश्वास है कि इस में इतिहास की सचाई मेरी ही ओर होगी।

औरंगज़ेब आप तो शराब नहीं पीता था, पर इस के बाप, दादे, चचा और भाईलोग बड़े भारी शराबी थे, और उन के महलों में रहनेवाली औरतें भी बड़ी ही शराबिनें थीं, इस बात का प्रमाण भी इतिहास में है। यदि इस बात में कोई संदेह करे तो मैं उन का संदेह दूर करने के लिये तैयार हूं।

अंत में मुझे यह कहना है कि इस के पहिले मैं ने कोई ऐतिहासिक उपन्यास नहीं लिखा था। दुर्गेशनंदिनी, चंद्रशेखर, या सीताराम ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहे जा सकते। बस पहिले-पहिल मैं ने यही ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। मैं समझता हूं कि अभी तक ऐतिहासिक उपन्यास के लिखने में कोई भी लेखक सब भांति से कृतकार्य नहीं हो सके हैं, और मैं भी इस बात में कृतकार्य न हो सका, इस का कहना ही क्या !

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय।

राजसिंह ।

पहिला खण्ड ।

पहिला परिछेद ।

तस्वीरवाली ।

राजस्थान के पहाड़ी प्रदेश में रूपनगर नाम का एक छोटा सा राज्य था । राज्य चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका एक राजा अवश्य रहेगा; सो रूपनगर का भी राजा था । किन्तु राज्य के छोटे होने से राजा का नाम जो बड़ा हो तो इस में कोई आपत्ति नहीं है—इस लिये रूपनगर के राजा का नाम बिक्रम सिंह था । इन का विशेष परिचय पीछे दिया जायगा ।

इस समय इनके अन्तःपुर में प्रवेश करने की हमारी इच्छा है । छोटा सा राज्य, छोटी सी राजधानी, और छोटी सीही पुरी; उन में एक घर बहुत ही सुहावना था । गलीचे की नकल का सफेद और काले पत्थर से महल का फर्श बनाहुआ था, सफेद पत्थर से बनी हुई और अनेक रंगों के रत्नों से रंगी हुई उस की दीवारें थीं । उस समय ताजमहल और मोरतख़्त की नकल की ही चलन थी, इसलिये उसी नकल के अनु-

सार इस घर की दीवारों में भी सादे पत्थर के अजूबा पंछी अजीब तरह से अजूबी लताओं के ऊपर बैठे हुए अजीब जाति के फूलों के ऊपर पंख फैलाकर अजूबी जाति के फलों को खा रहे थे। उसी घर में बड़ा मोटा एक गलीचा बिछा हुआ था और उस पर बराबर की दस बारह स्त्रियां बैठी हुई थीं। उन के अनेक रंग विरंगे वस्त्रों की और तरह तरह के जड़ाऊ गहनों की बहार हो रही थी। उन सभों की ही अनेक भांति के गौर और उज्ज्वल कोमल वर्ण की कमनीय देह-कांति थी। उन में कोई चमेली के से रंगवाली, कोई लाल कमल के से रंगवाली, कोई चंपा के से रंगवाली और कोई नवीन दूर्वादल सी श्याम वर्णवाली थी और सभी अपने अपने रूप रंग के आगे खानि से निकली हुई रत्न राशि का उपहास करती थीं। उन में कोई पान खा रही थी, कोई गुड़गुड़ी गड़गड़ा रही थी, कोई अपनी नाक की बड़े बड़े मोतियों वाली नथ को हिलाती हुई भीम सिंह की पद्मिनी रानी की कथा कह रही थी और कोई अपने कान के हीरे जड़ाऊ कर्णफूल को हिलाकर पराए की निंदा से मजलिस को सरगर्म कर रही थी। इन में बहुतेरी स्त्रियां युवावस्था की थीं, बस उन की हँसी ठहाके की धूम पड़ गई थी और अच्छा रंग जम गया था।

युवतियों के हंसने का कारण यह था कि एक

बुढ़िया थोड़े से चित्र बेंचने के लिये आकर इन सभों के हाथ पड़ गई थी। हाथी दांत की पटरी पर लिखे हुए छोटे छोटे अपूर्व चित्र थे। बुढ़िया बेंचने की इच्छा से एक एक चित्र अपनी पोटली में से निकालती और युवतियां चित्र में लिखे हुए व्यक्ति का परिचय पूछती थीं।

बुढ़िया ने पहिला चित्र बाहर निकाला तो एक कामिनी ने पूछा,—"यह किस की तस्वीर है, बूढ़ी?"

बुढ़िया ने कहा,—"यह शाहजहां बादशाह की तस्वीर है"।

युवती ने कहा,—"दुर, निगोड़ी! यह दाढ़ी तो मैं चीन्हती हूं। यह तो मेरे दादे की दाढ़ी है।"

और एक जनी ने कहा,—"यह क्या री! दादे का नाम ले कर क्यों छिपाती है? यह तो तेरे दुलहे की दाढ़ी है।" फिर और सभों की ओर घूम कर उसी रसीली ने कहा,—"इस दाढ़ी में एक दिन एक बिच्छू लुका था, जिसे मेरी सहेली ने झाड़ू से मारा"।

इस पर हंसी का तार बंध गया। फिर तस्बीर बेचनेवाली ने एक और तस्बीर दिखलाई और कहा,—यह जहांगीर बादशाह की तस्बीर है।"

उसे देखकर एक रसीली युवती ने कहा,—"इस का दाम कितना है?" हंसते

बुढ़िया ने बड़ा दाम हांका। इस पर रसीली ने फिर कहा,—"खैर, यह तो तस्वीर का दाम हुआ, पर असल आदमी को नूरजहां बेगम ने कितने पर खरीदा था ?"

तब बुढ़िया को भी हंसी सूझी, उस ने कहा,—"सेंत में" रसिका बोली—"जब कि असल की यह दशा है, तो फिर नकल को तो अपने घर के कुछ रुपए के साथ हमलोगों को देतीजाव।"

फिर हंसी की धूम मच गई। इस से चिढ़ कर बुढ़िया ने अपनी तस्वीरें ढांक ली और कहा,—"बेटी! हंसी से तस्वीर नहीं खरीदी जाती! अच्छा राजकुमारी आवें, तब मैं तस्वीर दिखाऊंगी और उन्हीं के लिये लाई भी हूं।"

तब सात जनी सात ओर से बोल उठीं,—अरी! मैंही राजकुमारी हूं! हे बूढ़ी! मैं राजकुमारी हूं! बुढ़िया बिचारी अकचका कर चारो ओर देखने लगी, और फिर एक हंसी का हल्ला मच गया।

एकाएक हंसी की धूम कम पड़ गई—शोर गुल रुक गया केवल ताकाताकी, मटका मटकी और वृष्टि के उपरान्त मंद मंद विजली की चमक की भांति होठों पर मुस्कुराहट ही मुस्कुराहट रह गई तो तस्वीर-ने इस का कारण जानने के लिये पीछे फिर

कर देखा कि 'मेरे पीछे कोई एक देवी की प्रतिमा को खड़ी करा गया है।'

बुढ़िया टकटकी बांध कर उस शोभामयी स्वेत पत्थर की मूर्त्ति की ओर देखती रह गई—अहा! कैसी सुन्दर मूर्त्ति है?—पर बुढ़ापे के कारण उस की आंखों से ज़रा कम दीखता, उतना साफ़ नहीं दिखाई देता था,—यदि ऐसा न होता तो वह देखती कि, यह तो पत्थर का रंग नहीं है, निर्जीव का ऐसा सुन्दर रंग नहीं होता। अरे! पत्थर तो दूर रहे, फूल में भी ऐसा सुहावना रंग नहीं पाया जाता। देखते देखते बुढ़िया ने देखा कि मूर्त्ति जरा जरा मुसकुरा रही है। पुतली भी क्या हंसती है?' उस समय बुढ़िया मन ही मन सोचने लगी कि,—तो यह पुतली नहीं है—क्योंकि ये लंबे काले तारेवाले, चंचल सजल, बड़े बड़े नेत्र मेरी ओर देख कर हँस रहे हैं।'

बुढ़िया चकपका कर जिस के तिस के मुंह की ओर निहारने लगी; पर सोच विचार कर के कुछ ठीक न कर सकी और घबरा कर रसिका युवतियों की ओर देखती हुई हांफते फांफते बोली,—"हां जी! तुम लोग बतलाती क्यों नहीं?"

यह सुन कर एक एक सुन्दरी हंसी न रोक सकी, रस का सोता उमड़ पड़ा—मुंह से आप ही आप हंसी का फुहारा छूटने लगा—युवती जन हंसते

हंसते लोटपोट हो गईं। ऐसी हंसी देख कर चकपकाई हुई बुढ़िया ने रो दिया।

तब वही मूर्त्ति बोली, उस ने बड़े मीठे स्वर से पूछा,—"बूढ़ी! रोती क्यों है?"

उस समय बुढ़िया ने समझा कि यह गढ़ी गढ़ाई पुतली नहीं है, बरन सचमुच आदमी है—तो यह राजमहिषी या राजकुमारी होगी। यह सोच कर उस ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। यह प्रणाम राजकुल के लिये नहीं किया गया, बरन सुन्दरता के लिये। बुढ़िया ने जैसी सुन्दरता देखी, वैसी सुन्दरता देख कर सिर झुकाना ही पड़ता है।

दूसरा परिच्छेद।

चित्रदलन।

यह भुवनमोहिनी सुन्दरी, जिसे देखकर तस्वीर-वाली ने प्रणाम किया, रूपनगर के राजा की कन्या चंचलकुमारी थी। और जो स्त्रियां अब तक बुढ़िया के साथ ठट्ठा कर रही थीं, वे उस की सखी और लौंड़ी थीं। चंचलकुमारी भी इस घर में घुस कर और उस रंगत को देखकर चुपचाप मुसकुरा रही थी, और अब उस ने मीठे स्वर से बुढ़िया से पूछा—"तुम कौन हो, जी!"

चटपट उस की सहेली बोल उठीं,—"यह तस्वीर बेचने आई है।"

चंचलकुमारी ने कहा,—"तो तुम लोग इतनी हंस क्यों रही थीं ?"

यह सुनकर कोई कोई लज्जित सी हो गई, और जिस ने अपनी सखी से झाड़ूवाली दिल्लगी की थी, वह बोली,—"इस में हमलोगों का क्या दोष है ? यह बुढ़िया सब पुराने बादशाहों की तस्वीरें निकाल कर दिखलाती थी, इसी से हम सब हंसती थीं।—क्या हमलोगों के राजाओं महाराजाओं के घर में शाहजहां या जहांगीर बादशाह की तस्वीरें नहीं हैं ?"

बुढ़िया ने कहा,—बेटी ! होंगी, क्यों नहीं ? पर क्या, एक के रहते फिर दूसरी न लेनी चाहिए ? जो आपही लोग न लेंगी तो फिर हम गरीबों की गुजर क्योंकर होगी ?"

इस पर राजकुमारी ने बुढ़िया की सब तस्वीरें देखनी चाहीं। उस ने भी एक एक कर के सब तस्वीरें राजकुमारी को दिखलाना प्रारंभ किया। बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां, नूरजहां, नूरमहल की तस्वीरें उस ने दिखाईं, जिन्हें राजकुमारी ने हंस हंस कर फेर दिया और कहा,—"वे सब हमारे नातेदार हैं, इन सभों की बहुतेरी तस्वीरें हमारे यहां है। हां ! किसी हिन्दू राजा की भी तस्वीर हैं ?"

"कमी क्या है" यह कह कर बुढ़िया ने राजा

मान सिंह, राजा बीरबल, राजा जय सिंह आदि की तस्वीरें दिखलाईं। पर राजकुमारी ने उन्हें भी देख देख कर फेर दिया और कहा,—

"इन्हें भी न लूंगी! ये सब भी हिन्दू नहीं हैं, मुसल्मानों के गुलाम हैं।"

बुढ़िया ने हंस कर कहा,—"बेटी! कौन किस का गुलाम है, यह मैं नहीं जानती। मेरे पास जो कुछ है उसे दिखलाती हूं आप पसंद कर लें।"

यह कह कर बुढ़िया चित्र दिखलाने लगी। उन में से पसन्द कर के राजकुमारी ने राणाप्रताप सिंह, राणाअमर सिंह, राणाकर्ण सिंह, राणा यशवन्त सिंह आदि के कई चित्र खरीदे। एक चित्र को बुढ़िया ने ढांप लिया, दिखलाया नहीं। तब राजकुमारी ने पूछा,—

"उसे ढांप क्यों लिया?" पर बुढ़िया चुप रही। इस पर राजकुमारी बार बार पूछने लगी। तब बुढ़िया डर कर हाथ जोड़े हुई बोली,—

"मेरा कसूर माफ करिएगा, गफलत से ऐसी बात हुई—दूसरी दूसरी तस्वीर के साथ यह भी चली आई।"

राजकुमारी ने कहा,—"तो इतनी डरती क्यों हो? ऐसी कौन सी तस्वीर है कि जिस के दिखलाने में इतना डर रही हो?"

बुढ़िया,—"इस के देखने का कुछ काम नहीं है, यह आप के घर के दुश्मन की तस्वीर है।"

राजकुमारी,—"किस की तस्वीर है !"

बुढ़िया,—(डरती हुई) "राणा राजसिंह की।"

राजकुमारी ने हंस कर कहा,—"वीरपुरुष स्त्री जाति के कभी शत्रु नहीं होते। मैं उस तस्वीर को लूंगी।"

तब बुढ़िया ने राजसिंह के चित्र को उस के हाथ में दिया। राजकुमारी उस चित्र को हाथ में ले कर कुछ देर तक उसे निहारती रही। देखते देखते उस का मुख प्रफुल्ल हुआ, और आंखें खिल गईं। एक सखी ने उस के ऐसे भाव को देख कर चित्र देखना चाहा, तब राजकुमारी ने उस के हाथ में चित्र दे कर कहा,—"देख ! यह देखने ही योग्य है।"

फिर तो सखियों के हाथों में वह चित्र फिरने लगा। राजसिंह युवापुरुष न थे, तो भी उन के चित्र को देख कर सभी प्रशंसा करने लगीं।

बुढ़िया ने मौक़ा देख कर इस चित्र में दूना मुनाफ़ा किया, फिर लालच पा कर बोली,—

"राजकुमारी ! जो बहादुरों की तस्वीर लेनी हो तो एक और देती हूं। इन के बराबर दुनियां में दूसरा कौन बहादुर है ?"

यह कह कर उस ने एक और चित्र निकाल कर राजकुमारी के हाथ में दिया।

राजकुमारी ने पूछा,—"यह किस का मुखड़ा है?"

बुढ़िया,—"बादशाह आलमगीर का।"

राजकुमारी,—"खरीदूंगी।"

यह कह कर उस ने खरीदे हुए चित्रों के दाम लाकर बुढ़िया को देने के लिये एक लौंडी से कहा। वह दाम लाने चली गई। इतने में राजकुमारी ने अपनी सखियों से कहा,—

"आओ, एक खेल खेला जाय!"

खिलवाड़िन सखियों ने कहा,—"कहो, कहो, कौन सा खेल?"

राजकुमारी ने कहा,—"मैं इस आलमगीर बादशाह के चित्र को धरती में धरती हूं, सब जनी उस के मुंह पर बाएं पैर की एक एक ठोकर मारो, देखूं किस की ठोकर से उस की नाक टूटती है!"

हंस कर राजकुमारी ने चित्र को धरती पर रखा और कहा,—"लो, कौन जनी ठोकर मारती हो, मारो।"

पर कोई आगे न बढ़ी। इतने में निर्मल कुमारी नाम एक सखी ने आकर राजकुमारी का मुंह बंद कर लिया और हंसते हंसते कहा—"ऐसी बात फिर मत कहना!"

पर यह सिखावन सुनता कौन है ? देखते देखते चंचलकुमारी ने धीरे धीरे अलंकार शोभित वाएं चरण को औरंगज़ेब के चित्र के ऊपर रखा, अहा ! इस से चित्र की शोभा मानो और भी बढ़ गई । राजकुमारी ज़रा हिली, कड़कड़ शब्द हुआ, और औरंगज़ेब बादशाह का चित्र राजपूत कुमारी के पैरों तले चूर चूर हो गया ।

"ए ! गज़ब यह क्या किया ?" यों कहती हुई सखियां कांपने लगीं ।

राजकुमारी ने हंसकर कहा,—"जैसे बच्चे खिलौने खेल कर संसार की साध मिटाते हैं, वैसेही मैंने भी मोगल बादशाह के मुंह पर ठोकर मारने की साध मिटाई ।"

फिर वह निर्मल की ओर देख कर बोली,—"सखी, निर्मल ! बच्चों की मनसा पूरी हो जाती है, समय पा कर उन्हें सचमुच घर गृहस्थी हो जाती है; तो क्या फिर मेरी मनसा न पूरी होगी ? मैं क्या कभी असली औरंगज़ेब के मुंह पर इसी तरह..........."

निर्मल ने राजकुमारी का मुंह पकड़ लिया । बात पूरी न होने पाई—पर सब ने उस का मतलब समझ लिया । यह ढंग देख कर बुढ़िया का कलेजा कांपने लगा वह सोचने लगी कि—'जहां ऐसी सत्यानाशी बातें होती हैं 'वहां से कब छुटकारा पाऊंगी?' इतनेही

में उस की बेंची हुई तस्वीरों का दाम आ गया और उसे पातेही वह हांफते हांफते वहां से भागी।

उस के घर के बाहर होतेही, निर्मल भी उस के पीछे पीछे दौड़ आई और आ कर उस के हाथ में एक अशर्फ़ी दे कर बोली, "बुढ़िया, मैया! देखना, जो कुछ तुम ने यहां पर सुना है, उसे किसी के आगे ज़बान पर मत लाना। राजकुमारी के मुंह में अंटक नहीं है—अभी भी उन का लड़कपन है।"

बुढ़िया ने अशर्फ़ी ले कर कहा,—"भला बेटी! ऐसी बात भी क्या कही जाती है! मैं तुम लोगों की बांदी हूं—मैं क्या फिर कभी इन बातों को जवान पर ला सकती हूं?"

इतना सुन और संतुष्ट हो कर निर्मल लौट गई।

तीसरा परिच्छेद।

चित्र विचार।

दूसरे दिन चंचलकुमारी अकेले में बैठ कर ख़रीदे हुए चित्रों को मन लगा कर देखने लगी। इतने ही में निर्मल कुमारी वहां आ पहुंची। उसे देख कर चंचल कुमारी ने कहा,—

"निर्मल! इन में से किसी को भी व्याहने का तुम्हारा जी चाहता है?"

निर्मल ने कहा,—" जिसे व्याहने का मेरा जी चाहता है, उस के चित्र को तो तुम ने पैर से तोड़ डाला।"

चंचल,—" औरंगज़ेब को ! "

निर्मल,—"अचरज में क्यों आई ? "

चंचल,—"बदज़ातों का सरदार है? ऐसा बदमाश संसार में दूसरा नहीं जन्मा। "

निर्मल,—"बदज़ात को बश करने ही में मुझे आनंद है, तुम्हें याद नहीं है, मैंने बाघ पाला था ? सो मैं एक न एक दिन औरंगज़ेब से व्याह करूंगी; ऐसी इच्छा है।"

चंचल,—" अरी ! वह मुसलमान है न ? "

निर्मल,—" मेरे हाथ पड़ने पर वह भी हिन्दू हो जायगा।"

चंचल,—तू मर जा—

निर्मल,—" कुछ पर्वाह नहीं, पर यह किस की तस्वीर है, जिसे तुम बार बार देखती हो; बस इस की खबर ले कर तब मैं मरूंगी। "

यह सुनतेही चंचलकुमारी ने चट पट अपने हाथ वाले चित्र को कई चित्रों में मिला दिया और कहा,— ऐं, किस चित्र को मैं बार बार देखती थी ? क्या किस को कलंक लगा देने से हो जायगा ? बताओ, कि चित्र को मैं बार बार देखती थी ? "

में उस की बेंची हुई तस्वीरों का दाम आ गया और उसे पातेही वह हांफते हांफते वहां से भागी।

उस के घर के बाहर होतेही, निर्मल भी उस के पीछे पीछे दौड़ आई और आ कर उस के हाथ में एक अशर्फी दे कर बोली, "बुढ़िया, मैया! देखना, जो कुछ तुम ने यहां पर सुना है, उसे किसी के आगे ज़बान पर मत लाना। राजकुमारी के मुंह में अंटक नहीं है—अभी भी उन का लड़कपन है।"

बुढ़िया ने अशर्फी ले कर कहा,—"भला बेटी! ऐसी बात भी क्या कही जाती है! मैं तुम लोगों की बांदी हूं—मैं क्या फिर कभी इन बातों को ज़बान पर ला सकती हूं?"

इतना सुन और संतुष्ट हो कर निर्मल लौट गई।

तीसरा परिच्छेद।

चित्र विचार।

दूसरे दिन चंचलकुमारी अकेले में बैठ कर खरीदे हुए चित्रों को मन लगा कर देखने लगी। इतने ही में निर्मल कुमारी वहां आ पहुंची। उसे देख कर चंचल कुमारी ने कहा,—

"निर्मल! इन में से किसी को भी व्याहने का तुम्हारा जी चाहता है?"

निर्मल ने कहा,—"जिसे ब्याहने का मेरा जी चाहता है, उस के चित्र को तो तुम ने पैर से तोड़ डाला।"

चंचल,—"औरंगज़ेब को!"

निर्मल,—"अचरज में क्यों आई?"

चंचल,—"बदज़ातों का सरदार है? ऐसा बदमाश संसार में दूसरा नहीं जन्मा।"

निर्मल,—"बदज़ात को बश करने ही में मुझे आनंद है, तुम्हें याद नहीं है, मैंने वाघ पाला था? सो मैं एक न एक दिन औरंगज़ेब से ब्याह करूंगी, ऐसी इच्छा है।"

चंचल,—"अरी! वह मुसलमान है न?"

निर्मल,—"मेरे हाथ पड़ने पर वह भी हिन्दू हो जायगा।"

चंचल,—तू मर जा—

निर्मल,—"कुछ पर्वाह नहीं, पर यह किस की तस्वीर है, जिसे तुम बार बार देखती हो; बस इस की खबर ले कर तब मैं मरूंगी।"

यह सुनतेही चंचलकुमारी ने चट पट अपने हाथ वाले चित्र को कई चित्रों में मिला दिया और कहा,— एँ, किस चित्र को मैं बार बार देखती थी? क्या किसी को कलंक लगा देने से हो जायगा? बताओ, किस चित्र को मैं बार बार देखती थी?"

निर्मल ने हंस कर कहा,-" तुम एक तस्वीर देखती थीं, इस में कलंक की कौन बात है ? राजकुमारी तुम्हारे चिढ़ने से ही मैंने तुम्हें पकड़ लिया। किस का ऐसा भाग्य चमका है, तस्वीरों में खोज ढूंढ कर मैं उसे बाहर कर सकती हूं। "

चंचल—" अकबर शाह का "।

निर्मल-"अकबर के नाम पर राजपूतिन झाड़ू मारती हैं। और वह है कहां ?' यह कह कर निर्मलकुमारी तस्वीर का बंडल हाथ में लेकर खोजने लगी। बोली,—"तुम जिस तस्वीर को देखती थीं, उस की पीठ पर एक कालादाग मैंने देखा है।' बस इस चिन्ह के सहारे से उस ने एक चित्र निकाल कर चंचलकुमारी के हाथ में दिया और कहा,-" यही है।"

चंचलकुमारी ने चटक कर तस्वीर को दूर फेंक दिया और कहा,—" तुझे और तो कुछ काम है नहीं, इसी लिये तू दूसरों को जलाती फिरती है; दूर हो यहां से। "

निर्मल,—"दूर न होंऊंगी। सो राजकुमारी ! इस बुड्ढे की तस्वीर में ऐसा क्या है, जिसे तुम इतना निहारती थी ? "

चंचल,-"बूढ़े हैं ! तेरी क्या आंखें फूट गई हैं ?

निर्मल चंचल को चटका रही थी। इस लिये चंचल के क्रोध को देख कर वह मंद मंद हंसने लगी।

वह बड़ी सुंदरी थी, पर मीठी और रसीली हंसी से उस की सुंदरता और भी बढ़ गई। उस ने हंस कर कहा,—

"तो तस्वीर में चाहें ये बूढ़े न जान पड़ें, पर लोग तो कहते हैं कि 'महाराणा राजसिंह की उम्र बहुत हुई है' उन के दो लड़के युवा हो चुके हैं।

चंचल,—"यह क्या राजसिंह की तस्वीर है? इतना किस को मालूम है, सखी!"

निर्मल,—"सखी! कल तो तुम ने इसे खरीदा है, और आज कुछ जानती ही नहीं? इस आदमी की इतनी उम्र भी हो चुकी है और यह कुछ सुंदर भी नहीं है; तो फिर तुम इतना निहारतीं क्या थीं?"

चंचल,—

"पारवती जानहिं सिवहिं, स्यामहिं गोपकुमारि।
सहसनयन जानहिं सची, बीर, बीर जो नारि॥
"गंगागर्जत संभु जटा पर-धरनी पैठत बासुकि फन में।
पवन अगिनिकोसखाकहावै-बीरभजतहैं जुवती मन में॥"

निर्मल,—"अब देखती हूं कि तुमने आपही अपने मरने के लिये जाल फैलाया है। राजसिंह को प्यार तो किया, पर कभी उन्हें पा सकोगी?"

चंचल,—"पानेही के लिये क्या प्यार किया जाता है? तूने क्या पाने हीं के लिये औरंगज़ेब बादशाह को प्यार किया है?"

निर्मल—"मैंने औरंगज़ेब को वैसा ही प्यार किया है, जैसा बिल्ली चूहे को प्यार करती है। मैं यदि उसे न पाऊं तो समझलो कि मेरा बिल्लीवाला खिलवाड़ इस जन्म में योहीं रह गया; पर क्या तुम्हारा भी प्यार वैसाही है ?"

चंचल—"मान लो कि मेरा भी संसार का खेल इस जन्म में न हुआ सही।"

निर्मल—"यह क्या कहती हो, राजकुमारी! तस्वीर देखने से क्या यहां तक नौबत पहुंचती है ?"

चंचल—"किस से क्या होता है, इसे हम तुम क्या जानें, और क्या हुआ है, इसी को मैं क्या जानूं ?"

हम भी यही कहती हैं। चंचलकुमारी को क्या हो गया, यह हम नहीं कह सकतीं; केवल चित्र मात्र के देखने से क्या हो जाता है, यह हम नहीं जानतीं। प्रेम तो मनुष्य मनुष्य के देखने से होता है। क्या चित्र से और मनुष्य से भी प्रेम हो सकता है? हो सकता है, यदि तुम चित्र के अलावे आप ही आप थोड़ा सा ध्यान भी कर ले सको। जब यह हो सकता है तो पहिले तुम मनही मन कुछ गढ़ रक्खो, फिर चित्र या स्वप्न को मन से गढ़ी हुई वस्तु का या चित्र का या स्वप्न का ध्यान करो। क्या चंचल कुमारी को भी ऐसा ही कुछ हुआ था ? पर अठारह बरस की लड़की का मन हम कैसे समझें वा कैसे समझावें ?

चंचलकुमारी के मन में चाहे जो हो, पर मन की आग में अभी से फूंक मार कर उस ने अच्छा नहीं किया। क्योंकि सामने बड़ी भारी विपद है, पर उन सब विपत्तियों का हाल कहने में अभी हम को बहुत विलंब है।

चौथा परिच्छेद।

बुढ़िया बहुत सावधान है।

जिस बुढ़िया ने तस्वीरें बेंची थीं, वह लौट कर घर आई। उस का घर आगरे में था। वह देस देस घूम कर तस्वीर बेंचा करती थी। सो वह रूपनगर से लौट कर आगरे आई। वहां जा कर उस ने देखा कि 'मेरा लड़का आया है।' उस का लड़का दिल्ली में दूकान करता था।

छोटी सायत में बुढ़िया रूपनगर में चित्र बेंचने गई थी। चंचलकुमारी की जो कुछ ढिठाई का काम वह देख आई थी, उसे किसी के आगे न कहने के कारण उस का जी घबरा उठा। यदि निर्मलकुमारी ने उसे अशर्फी दे कर उस बात के खोलने की नाहीं न कर दी होती तो शायद उस बुढ़िया का मन इतना डामाडोल न भी होता, पर जब कि उस बात के प्रगट करने के लिये मनाही की गई तो बुढ़िया का मन आप ही आप उस बात के कहने के लिये बहुत ही व्याकुल हो गया। वह बिचारी क्या करे! एक तो

वह प्रतिज्ञा कर आई, दूसरे उस ने हाथ फैला मोहर ले कर निमक खाया; फिर ऐसी बात के खुलने पर ज़ालिम बादशाह के हाथ से चंचलकुमारी की बड़ी दुर्दशा हो सकती है, यह बात भी बुढ़िया समझती थी। इस लिये एकाएक वह इस बात को किसी के आगे न कह सकी। पर अब तो बात के अजीरन से उस से न तो दिन को खाया जाता और न रात को उसे नींद आती। अंत में उस ने आप ही आप कसम खाई कि 'यह बात किसी के आगे न कहूंगी।' इस के थोड़ी ही देर पीछे उस का बेटा खाने बैठा। बुढ़िया ने उस की रकाबी में थोड़ा सा मसालेदार कबाब डाल कर कहा,—

"खा, बच्चे! खा, खाले। ऐसा कबाब रूपनगर से आने पर एक रोज़ बना था, फिर कभी नहीं बना।"

उस का लड़का खाते खाते बोल उठा,—"अम्मा जान! रूपनगर का वह क़िस्सा, जो आप फ़र्माने को थीं?"

उस की मां बोली,—"चुप रह! ऐसी बात मुंह से मत निकाल, फर्ज़ंद! मैंने क्या कहा था? शायद ख़याल में कुछ बोल उठी हूंगी!"

बुढ़िया इस समय भूल गई थी, क्योंकि पहिले एक दिन चंचलकुमारी की बात जब उस के पेट में गड़ने लगी थी तो उस ने अपने लड़के के आगे ज़रा

सा "ऊं:" "आं:" किया था। पर अभी जो उस ने जवाब दिया, उसे सुन कर उस के लड़के ने कहा,—

"चुप क्यों रहूं? अम्मा! ऐसी कौन सी बात है?"

मां-सुनने लायक बात नहीं है, बाबा मेरे!

लड़का,—'तो रहने दीजिए।'

मां,—"और कुछ नहीं, फ़क्त रूपनगरवाली कुमारी की बात।"

लड़का—"वह कुमारी निहायत खूबसूरत है! बस, यही ऐसी पोशीदा बात है?"

मां,—"यह नहीं; उस बांदी को बड़ा गरूर है। या अल्लाह! मैं क्या कह गई!"

लड़का—"कहां रूपनगर-कहां वहां की राजकुमारी का दिमाग-इन बातों के कहने की आप को क्या ज़रूरत है? और मुझे सुनने की भी क्या गरज?

मां—"सिर्फ दिमाग; बाबा मेरे! लौंड़ी बादशाह आलम को नहीं मानती।"

लड़का—'बादशाह आलम को उस ने गाली दी होगी?"

मा—"गाली क्या, बेटा! उस से भी कुछ ज्याद:"

लड़का—"उस से ज्याद: क्या हो सकता है? वह बादशाह आलम को मार तो सकती ही नहीं।'

मां—"उस से भी ज़्याद:।"

लड़का—"मार से भी ज़्याद:।"

मा—"बाबाजान! उसे न पूछो-मैंने उस का नमक खाया है।"

लड़का—"नमक खाया है? किस तरह, अम्मा जान!"

मां—"अशर्फी पाई है।"

लड़का—"किस वास्ते अम्मा?"

मां—"इस वास्ते कि उस के गुनाह की बात किसी के सामने खोलनी मुनासिब नहीं।"

लड़का-अच्छी बात है, मुझ को भी एक अशर्फी बख़शिश फ़र्माइए।

मां- किस लिये, बेटा!

लड़का-"नहीं तो मुझे बतला दीजिए कि वह बात क्या है।"

मां—"बात और क्या है, बादशाह की तस्वीर-तौबः! तौबः! वह बात अभी निकल चुकी थी।"

लड़का-तस्वीर तोड़ डाली?

मां—अरे! बेटा! लात से तोड़ डाली! तौबः! मैं नमकहरामी कर बैठी।

लड़का-इस में नमकहरामी क्या है?—आप मा हैं, और मैं बेटा! तो फिर मुझ से कहने में नमकहरामी क्या हुई?

मां-देखना बेटा! यह बात किसी से कहना मत।

लड़का—आप खातिरजमा रखिए, मैं किसी से यह बात जाहिर नहीं करूंगा।

तब बुढ़िया ने तस्वीर के तोड़ने का सारा हाल नमक मिर्च लगा के कह सुनाया।

पांचवां परिच्छेद।

दरिया बीबी।

बुढ़िया के लड़के का नाम था, ख़िज़िर शेख़। वह तस्वीर बनाता था और दिल्ली में उस की दूकान थी। अपनी मां के पास दो दिन रह कर फिर वह दिल्ली चला गया। वहां पर उस की एक बीबी थी, और दूकान ही में वह रहती थी। उस का नाम फ़ातमा था। ख़िज़िर ने अपनी मां से जो कुछ रूप-नगर का हाल सुना था, वह सब कह सुनाया। और सब कहने पर उस ने कहा "कि तुम अभी दरिया बीबी के पास जाओ। और उस से कहो कि यह ख़बर बेग़म साहिबा के हाथ बेंच आवे। इस से कुछ फाइदा होगा।"

दरिया बीबी उस के पड़ोसवाले घर में ही रहती थी। घर के पिछवाड़े सेही राह थी, इस लिये बीबी फ़ातमा बिना पर्दा के ही दरिया बीबी के घर जा पहुंची।

ख़िज़िर या फ़ातमा के विशेष परिचय देने का कोई प्रयोजन नहीं है पर दरिया बीबी का विशेष परिचय देना चाहिए। इस का असली नाम है, दरीर-

उन्निसा—या ऐसा ही कुछ; किन्तु इस नाम से उसे कोई नहीं पुकारता था, जो पुकारता, सो 'दरिया' कह कर ही पुकारता। उस के मां बाप न थे, केवल एक बड़ी बहिन और एक बुढ़िया थी, जो उस की बुआ, फूफू या खाला या ऐसी ही कोई लगती थी। उस के घर में कोई मर्द मानस नहीं रहता था। उस समय उस (दरिया बीबी) की बयस सतरह बरस से अधिक न थी तिस पर वह नाटी थी, इस लिये पंद्रह बरस से अधिक की नहीं जँचती थी। वह बड़ी सुंदरी थी, और सदा खिले हुए फूल की तरह प्रफुल्लित रहती थी।

उस की बहिन बहुत बढ़ियां सुरमा और अतर बनाती थी, बस उसी को बेंच कर उन सब का गुज़ारा होता था। वे दोनों जनी आप एक्के वा डोले पर चढ़ बड़े आदमियों के घर जाकर सुरमा और अतर बेंच आया करतीं। दुखिया थीं, इस लिये रात को पैदल भी जाती थीं। बादशाही महलों में किसी को भी जाने का अधिकार न था, यहां तक कि बाहर की औरतें भी वहां तक नहीं जाने पाती थीं। पर दरिया बीबी के वहां जाने का भी उपाय था। जिसे आगे कहते हैं—

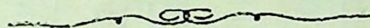
फ़ातमा ने आकर दरिया बीबी से चंचलकुमारी का हाल कहा और यह भी कहा कि 'इस ख़बर को बेंच कर कुछ ज़र लाना चाहिए।

दरिया बीबी ने कहा,—" रंगमहल के भीतर जाना पड़ेगा। इस के वास्ते परवाना कहां है ? "

फ़ातमा ने कहा—" तुम्हारे पास तो है ! "

यह सुन कर उस ने पिटारे में से खोज कर एक कागज निकाला और उसे उलट पलट के देख कर कहा—" यही तो है। "

फिर तो वह थोड़ा सा सुरमा और परवाना लेकर बाहर चली।



दूसरा खण्ड।

पहिला परिच्छेद।

अदृष्ट गणना।

चांदनी के उंजाले में, सफेद बालू के तट पर बहती हुई, नीले जलवाली यमुना के किनारे सारी नगरियों में प्रधान महानगरी दिल्ली, चमकते हुए मणि के टुकड़े की भांति चमचमा रही थी। संगमर्मर आदि पत्थरों से बने हुए हजारों मीनारें, गुम्बज, बुर्ज ऊंचे उठ कर चांदनी की चमक से चमचम कर रहे थे। बहुत दूर कुतुब मीनार की लंबी चोटी धुमले ऊंचे पत्थर के खंभे की भांति दीख पड़ती थी। पास ही जुमा मसजिद की चारों मीनारें नीले आकाश को छेदती हुई चांदनी में खड़ी थीं। सड़कों पर मनिहारी की दूकानें, बाजार में हजारों दीपमाला, मालियों के फूलों की ढेरी की सुगंध,—नगर निवासियों के बदन पर शोभते हुए फूलों की सुगंध, अतर गुलाब की सुगंध, घर घर में राग तान, अनेक भांति के बाजों की धमक, नगरवालों की कभी ऊंची और कभी मीठी हंसी, गहनों की झनकार, ये सब इकट्ठे होकर मनुष्य की नन्दनवन की छाया की भांति अजीब तरह से मोहित करते थे। फूलों की रेलापेली, अतर गुलाब

की भरमार, तबायफ़ों के घुंघुरू की झनकार, गानेवालियों के गले में सातों सुरों के उतार चढ़ाव, बाजों की भरमार, रसीली कामिनी जनों के कोमल करतल से निकलती हुई ताल की चटाचटी, मद्य का बहाव, चंचल कटाक्ष रूपी आग का भड़कना, खिचड़ी पुलाव की ढेरी; विकट, कपट, मधुर, चतुर, ये चारों प्रकार की हंसी, रास्ते रास्ते घोड़ों के टाप की टपाटप, डोलेवालों की कर्कश चिल्लाहट, हाथियों के गले के घंटों का घनघनाना, एकों का झन्नाटा, गाड़ियों की घड़घड़ाहट मची हुई थी।

शहर में बड़े बड़े गुलज़ार चांदनी चौक थे, जहां पर राजपूत या तुरुक लोग घोड़े पर सवार होकर जगह जगह पहरा देते थे। संसार में जो जो मूल्यवान वस्तुएं थीं, वे सभी दूकानों में ठसाठस सजी हुई थीं। कहीं नाचनेवाली राहगीरों को जमा करके सरंगी के सुर पर नाचती गाती थी, कहीं बाज़ीगर अपनी बाज़ी दिखला रहा था; प्रत्येक के निकट सैकड़ों देखनेवाले घेरा डाले हुए तमाशा देख रहे थे। किन्तु सभों की अपेक्षा ज्योतिषियों के पास बड़ी भीड़ थी। मोगलबादशाही के समय में ज्योतिषियों का जितना आदर था, उतना जान पड़ता है कि और कभी न रहा होगा। क्योंकि उन लोगों (ज्योषियों) का आदर हिन्दू और मुसल्मान एक सा करते थे। मोगल-

बादशाह ज्योतिष शास्त्र के बहुतही वशीभूत थे; यहां तक कि वे लोग बहुधा ज्योतिषियों से गणना कराये बिना कदापि बड़े बड़े कामों को नहीं करते थे। जो जो घटनाएं इस पुस्तक में कही गई हैं, उन के कुछही पीछे औरंगजेब का छोटा पुत्र अकबर राजविद्रोही हुआ। पचास हज़ार राजपूत सेना उस की सहायता पर थी, और औरंगजेब के साथ थोड़ीही सेना थी पर ज्योतिषियों की गणना पर विश्वासा करके अकबर ने फ़ौज के कूच कराने में कुछ देरी की, बस इसी अवसर में औरंगजेब ने कौशल करके उस की चेष्टा को निष्फल कर दिया।

दिल्ली के चांदनीचौक में सड़कों पर ज्योतिषी लोग आसन बिछाये, पोथी पत्रा लिये, और सिर पर पगड़ी बांधे बैठे थे; और सैकड़ों स्त्री पुरुष अपने अपने भाग्य की गणना कराने के लिये उन के पास डटे थे। वहां पर पर्देनशीन बीबियां भी बुढ़िया सुढ़िया के साथ जाने में संकोच नहीं करती थीं। एक ज्योतिषी के आसन के चारों ओर बड़ी भीड़ थी, उस भीड़ के बाहर एक घूंघटवाली युवती चक्कर लगा रही थी। वह ज्योतिषी के पास जाया चाहती थी, पर साहस करके भीड़ को ठेल कर नहीं घुस सकती थी और इधर उधर देखती थी। इतनेही में उसी रास्ते से एक घोड़सवार जाता था।

वह घोड़सवार युवा था, और देखने पर अहले-विलायत मोगल जान पड़ता था। वह ऐसा सुंदर था कि मोगलों में वैसा सुंदर आदमी कम पाया जाता। उस का पहिरावा बहुत ही सजीला था, जिस से वह कोई अच्छे घराने का रईस जान पड़ता था। उस का घोड़ा भी आच्छी नसल का था।

भीड़ के कारण वह सवार बहुत धीरे धीरे घोड़े को बढ़ाता था। जो युवती इधर उधर देख रही थी, उस ने उस सवार को देखा और देखते ही उस के पास जाकर घोड़े की लगाम थाम्ह कर उसे ठहराया। फिर कहा—"ख़ां साहब! मुबारक साहब!—मुबारक!"

घोड़सवार का नाम मुबारक था, उस ने पूछा—"तुम कौन हो?"

युवती ने कहा—"या अल्ला! अब क्या चीन्हते भी नहीं?"

मुबारक ने कहा—"दरिया !"

दरिया बोली—"जी"

मुबा०—तुम यहां पर क्यों?

दरिया—क्यों? मैं तो सभी जगह जाती हूं। इस में तुम्हारी तो मनाहीं नहीं है। तुम क्या मना करते हो?

मुबा०—मैं क्यों मना करूंगा? तुम मेरी कौन हो?"

फिर धीरे से मुबारक ने कहा-' कुछ चाहिए, क्या ?'

दरिया ने कान में उंगली डाल कर कहा-" तौबः! तुम्हारा पैसा मेरे लिये हराम है ! मैं अतर खरीदना जानती हूं।"

मुबा०—तो फिर मुझे क्यों रोका ?

दरिया—उतरो तो कहूं।

यह सुन मुबारक घोड़े से उतर पड़ा और बोला—' अच्छा, अब कहो ?"

दरिया ने कहा—"इस भीड़ के भीतर एक नजूमी बैठा है। यह नया ही आया है। ऐसा नजूमी कभी नहीं आया था। इस के पास चल कर तुम अपनी क़िसमत की कैफियत पूछो।"

मुबा—मेरी क़िसमत का हाल जान कर तुम क्या करोगी ? तुम अपनी क़िसमत दिखलाओ।

दरिया—अपनी क़िसमत का हाल मैं नहीं जानना चाहती। क्योंकि बिना दिखलाए ही मैं उस का हाल जानती हूं। पर तुम्हारी क़िसमत के हाल जानने की मुझे ज़रूरत है।

इतना कह कर उस ने मुबारक का हाथ पकड़ उसे घसीट कर ले जाना चाहा। तब उस ने कहा—

" तो फिर मेरा घोड़ा कौन धरेगा ?"

उस समय कई लड़के सड़क पर खड़े खड़े लड्डू

खाते थे, उन से मुबारक ने कहा-

" तुम में से जो कोई एक लहमे भर मेरा घोड़ा थाम्हे रहे तो मैं आकर उसे और लड्डू दूंगा।

इतना कहते ही दो तीन लड़कों ने आकर घोड़े की लगाम थाम्ह ली। उन में एक लड़का बिलकुल नंग धिड़ंग था, वह घोड़े पर चढ़ बैठा। यह देख कर मुबारक उसे मारने दौड़ा, पर उसे अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा; क्योंकि घोड़ेही ने अपने पिछले पैरों से पुश्तादे कर उस लड़के को जमीन में पटक दिया। उसे ज़मीन में गिरते देख, और लड़कों ने उस के हाथ के लड्डू को छीन कर खा लिया। तब मुबारक निश्चिन्त हो कर अपने भाग्य की गणना कराने चला-

उसे देखतेही सब लोगों ने रास्ता दे दिया। दरिया भी उस के साथही साथ गई। ज्योतिषी के आगे जाकर मुबारक ने अपना हाथ फैला दिया, तब उस ने बहुत सोच विचार कर कहा—

" आप जाकर विवाह कीजिए " इतना सुनतेही पीछे से भीड़ में छिपी हुई दरिया ने कहा—

" शादी हो गई है।"

ज्योतिषी ने कहा—" यह बात किस ने कही ? "

मुबारक ने कहा—" वह एक पगली है। आप कहिए, मेरी किस क़िस्म की शादी होगी ? "

ज्योतिषी ने कहा—"आप किसी राजकन्या से विवाह कीजिए।"

मुबारक ने कहा—"ऐसा करने से क्या होगा?"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया—"ऐसा होने पर आप की अच्छी तरह से पदोन्नति होगी।"

भीड़ के भीतर से दरिया बीबी ने कहा—

"और मौत?"

ज्योतिषी ने कहा—"यह कौन है?"

मुबारक—"वही पगली।"

ज्योतिषी—"यह पगली नहीं है। जान पड़ता है कि यह मनुष्य नहीं है। अब मैं आप का हाथ न देखूंगा।"

मुबारक इन बातों का अर्थ कुछ भी न समझ सका और ज्योतिषी को कुछ देकर भीड़ में दरिया को खोजने लगा। पर किसी तरह भी फिर उस का पता न लगा। तब मुबारक कुछ उदास हो और घोड़े पर चढ़ कर क़िले की ओर चला गया।

यह भी जान लेना चाहिए कि लड़कों ने कुछ लड्डू पाए।

दूसरा परिच्छेद।

ज़ेबउन्निसा।

दरिया के ख़बर बेंचने का क्या हुआ? ख़बर का बेंचना कैसा? और उस का खरीददार ही कौन था?

इन बातों के समझाने के लिये मोगलबादशाह के रंगमहल का कुछ थोड़ा सा हाल लिखना चाहिए।

भारतवर्ष की स्त्रियां राजकाज चलाने में बड़ी निपुण कहलाती आई हैं। पश्चिम देश में कदाचित दो एक जेनोविया, ईसाबेला, अलीजेवेथ या कथाराईन पाई जायंगी, किन्तु भारतवर्ष में अनेक राजपूत कुल-बालाहीं राजकाज में निपुण मिलेंगी। मोगलबाद-शाहों की लड़कियां इस विषय में बड़ी विख्यात हैं। किन्तु जितनी वे सब राजनीति में निपुण थीं, उतनी हीं ऐयाश और आरामतलब भी थीं। औरंगज़ेब की दो बहिनें थीं, जहानआरा और रौशनआरा। उन में जहानआरा शाहजहां की बादशाही की प्रधान सहायक थी, क्योंकि शाहजहां उस की सलाह बिना कोई राज्यसंबंधी काम न करता, बरन जहानआरा की सलाह बमूजिब काम करने से वह कामयाब और नेकनाम होता। जहानआरा अपने पिता की पूरी भलाई चाहनेवाली थी। पर जितनी वह इन सब गुणों से भरपूर थी, उस से कहीं बढ़ कर ऐयाश भी थी। इन्द्रिय की लालसा पूरी करने के लिये असंख्य लोग उस की कृपा के पात्र बनते। उन लोगों में योरोप देश के सैलानी लोग ऐसे ऐसे नीच आदमियों का नाम लेते हैं कि जिसे लिख कर हम अपनी लेखनी को कलंकित नहीं कर सके।

रौशनआरा अपने पिता की बुराई और औरंगज़ेब की भलाई चाहनेवाली थी। वह भी जहानआरा की भांति राजनीति में निपुण और सुदक्ष स्त्री थी, पर विषयवासना में वह भी जहानआरा की भांति विचाररहित, बाधारहित, और तृप्तिरहित ही थी। जब अपने पिता को तख्त़ से उतार और क़ैदकर उस के राज्य को छीन लेने के लिए औरंगज़ेब पैरवी कर रहा था, उस समय रौशनआरा ही उस की पूरीपूरी मददगार थी। औरंगज़ेब रौशन आरा का बहुत एहसानमंद था। यहां तक कि औरंगज़ेब की बादशाही के समय वह मानो दूसरी बादशाह थी।

पर उस के अभाग्य के कारण एक दूसरी महाशक्ति वाली स्त्री ने उस के विरुद्ध सिर उठाया। सुनिए! औरंगज़ेब को तीन लड़कियां थीं, उन में से दो छोटी लड़कियों का विवाह तो उस ने अपने क़ैद भतीजों के साथ कर दिया था, पर उन सब में बड़ी बहिन ज़ेबउन्निसा * ने अपना विवाह न किया, वरन अपनी बूआ (फूआ) लोगों की देखादेखी बसंत के भौंरे की भांति नये नये फूलों का रस लेना प्रारंभ किया।

ये दोनों बूआ भतीजी प्रायः केलिमंदिर में एक

---

* मुसलमानी इतिहासों में यह ज़ेब-उन्निसा वा ज़ैब-उन्निसा के नाम से परिचित है। और पादरी कवु कहते हैं कि इसका नाम फ़ख़रउन्निसा है।

दूसरी की शत्रु हो जातीं, होते होते भतीजी ने अपनी बूआ के विनाश करने का संकल्प किया, फिर तो वह बराबर अपनी बूआ की करतूत अपने पिता के सामने सुनाने लगी, जिस का परिणाम यह हुआ कि रौशनआरा संसार से अंतर्धान हो गई और ज़ेबउन्निसा ने इस की गद्दी और उस के कृपापात्रों को पाया।

गद्दी की जो बात कही गई, उस में एक मतलब भी है; बादशाही महलों में खोजाओं के सिवाय कोई मर्दमानस नहीं घुस सकता था, उस के जाने के लिये कोई नियम न था। महलों का पहरा देने के लिये एक औरतों की फ़ौज रहती थी। जैसे हिन्दूराजे महाराजे यवनीगणों को अपने अन्तःपुर के प्रतिहार (द्वाररक्षक) का काम सौंपते वैसेही, मोगलबादशाह भी करते थे। तातार देश की सुंदरी जन मोगलबादशाहों के महलों की खबरदारी करती। उस स्त्रीसेना की एक एक अफ़सर भी थी जो सेनापति के समान समझी जाती थी। उसका दर्जा भी ऊंचा समझा जाता, उसे मुशाहरा भी उसी दर्जे के अनुसार मिलता और वैसी ही उस की इज्ज़त भी की जाती थी। उस दर्जे पर रौशनआरा क़ायम थी। पर एकाएक किसी अलौकिक अन्धकार में उस के छिप जाने पर ज़ेबउन्निसा उस के दर्जे पर क़ायम की गई। बात यह है कि जो कोई इस दर्जे पर क़ायम होतीं, वे बादशाही महलों की

सभी बातों का पूरा अधिकार रखती थीं। इसलिये ज़ेबउन्निसा रंगमहल (१) की पूरी मालकिनी हुई। यहां तक कि पहरेदार, खोज़ा, लौंड़ी, द्वारपाल, सवारी ढोनेवाले, बावर्ची, आदि सभी उस के आधीन थे। इसलिये वह जिसे चाहती, उसे रंगमहल में आने देती।

दो भांति के लोग उस की कृपा से महल में घुसने पाते थे; उन में एक तो प्रेमपात्र लोग थे, और दूसरे वे लोग जो उस के पास तरह तरह की ख़बरों को बेंचने आते थे।

यह बात कह आए हैं कि ज़ेबउन्निसा एक मशहूर Politician थी। एक तरह से मोगलबादशाही रूपा जहाज की पतवार उसी के हाथ में थी। और वह मोगलबादशाही के "चलानेवाला नक्षत्र" भी कही गई है। यह बात सभी जानते हैं कि Politician जमातवालों के बड़े काम की चीज़ "ख़बर" है। कहां पर क्या होता है, चुपचाप सब जानना चाहिये। दुर्मुख के स्वामी श्रीरामचन्द्र से लेकर प्रिंस बिस्मार्क पर्यन्त सभी इस बात के प्रमाण हैं। यह बात ज़ेबउन्निसा भी अच्छी तरह से समझती और इसी से वह चारों ओर से ख़बरों को इकट्ठी भी करती थी। उस के बहुतेरे आदमी ख़बरों के बटोरने

(१) बादशाही अंतःपुर को महल वा रंगमहल कहते थे।

के लिये तैनात थे, उन में तस्वीरवाला खिज़िर भी एक था। उस की मा अनेक देशों में घूम घूम कर तस्वीर बेंचती और वह अपनी मा से देस देस की ख़बरें बटोरता। दरिया बीबी की बहिन भी अतर और सुरमा बेचने के बहाने से दिल्ली में घूम घूम कर तरह तरह की खबरें इकट्ठी करती। फिर इन सब खबरों को दरिया ज़ेबउन्निसा के पास पहुंचा देती। इस पर ज़ेबउन्निसा बराबर कुछ इनाम देती। बस इसी का नाम है, 'ख़बर का बेचना'। ख़बर बेंचने के लिये आकर दरिया महल में घुसने पर रोकी न जाय, इसलिये ज़ेबउन्निसा ने उसे एक परवाना दिया था। उस में यही लिखा था कि—"दरिया बीबी सुरमा बेंचने के लिये रंगमहल में आने पावे।"

पर अबकी बार दरिया बीबी को रंगमहल में घुसने के समय एकाएक रुकना पड़ा। उसने देखा कि 'मुबारक खां रंगमहल में घुसा।' इस लिये उसे रंग-महल में घुसते देख दरिया उस समय महल में न गई वरन थोड़ी देर ठहर कर गई।

उस ने महल में जाकर देखा कि 'जहां ज़ेबउन्निसा का ऐशमहल है, उसी ओर मुबारक गया।' यह देख कर वह (दरिया) एक पेड़ों की झुरमुट की छाये में लुककर ठहरी रही।

तीसरा परिच्छेद।

स्वर्ग नरक।

महानगरी दिल्ली का निचोड़ था, दिल्ली का क़िला। और क़िले का हीर था बादशाही इमारतों की कतारें। इस बादशाही महलों की श्रेणी के भीतर थोड़ी सी भूमि में जितनी धन की ढेरी, रत्नकी ढेरी, रूप की ढेरी, और पाप की ढेरी थी, उतनी सारे भारतवर्ष में भी न थी। इन शाही महलों में सब का निचोड़ था, अंतःपुर वा रंगमहल। यह मानों दूसरे कुबेर और कामदेव की राजधानी थी। इस में सूर्य्य और चंद्रमा नहीं घुसने पाते; यमराज भी बिना भेस बदले वहां नहीं जा सकता; वायु की गती भी वहां पर रुकी हुई थी; वहां सभी घर विचित्र, घरों की सजावट विचित्र, और वहां की सब रहनेवाली भी विचित्र ही थीं। ऐसी जवाहिरातों से जड़ीहुई संग-मर्मर की दीवारें कहीं भी न थीं; ऐसी नंदनकानन-निन्दिनी फुलवाड़ी और कहीं न थी; ऐसी उर्वशी, मेनका, रंभा आदि के रूपाभिमान को चूरकरनेवाली सुंदारियों की भरमार भी कहीं न थी, इतना भोग विलाश भी संसार में और कहीं न था, और इतना महापाप भी दूसरी जगह नहीं होता था।

इन सभों में से ज़ेबउन्निसा के ऐशमहल से हमारा प्रयोन है। प्रयोजन

ज़ेबउन्निसा का ऐशमहल बहुत ही सुहावना था। उस में का फर्श सफेद और काले पत्थरों से बना हुआ था। संगमर्मर उस की की दीवारें थीं, जिन में जवाहिरात के बेल बूटे, फूल, फल, चिड़िया और भौंरे बनाए गये थे। थोड़ी उंचाई पर चारों ओर आइने लगे हुये थे, जिनके चारो ओर सोनहुले काम के चौखटे जड़े थे। ऊपर छत में रूपे के तार से बिना हुआ चंदोवा तना था जिस में मोती की छोटी और ताजे फूलों की बड़ी झालरें झूल रही थीं। ज़मीन में नई बरसाती घासों से भी मुलायम गलीचा बिछाहुआ था और उसके ऊपर हाथी दांत के बने हुए जड़ाऊ पायों का पलंग बिछा हुआ था। उस पर ज़रदोजी मख-मली तोशक बिछी हुई और उस पर वैसे ही ज़रदोजी काम के मखमली तकिये भी रक्खे हुये थे। सेज के चारों ओर भांति २ के बर्तनों में खुशबूदार फूलों की ढेर, अतर, गुलाब, सुगन्ध सुघराई से संवारे हुये पान, और सोने के प्यालों में अंगूरी शराब रक्खी हुई थी। और इन सभों के मध्य में फूलों की और रत्नों की ढेरी को फीकी करती हुई प्रौढ़ा सुन्दरी ज़ेबउन्निसा रात्रि पान के डब्बे को हाथ में लिये खिड़की पर को नक्षत्रशोभा को देखती और मंद मंद पवन में फूलों से गुंथे हुये अपने सिर को ठंढा करती थी। ठीक उसी समय मुबारक खां वहां पर जा पहुंचा।

वह जा कर ज़ेबउन्निसा के बगल में बैठा और पानबीड़े आदि प्रसाद पा कर अपने को धन्य माना।

ज़ेबउन्निसा ने कहा—बिनाबुलाए जो आवै, वही सच्चा चाहनेवाला है।

मुबारक बोला—बिनाबुलाए आया, बेअदबी की। मगर भिखमंगा तो बिनाबुलाए ही आता है।

ज़ेबउन्निसा—तुम्हें क्या भीख चाहिए, दिलवर !

मुबारक—यही कि जिस में मुल्ला के हुक्म से यह नाचीज़ इस जुमले (१) पर पूरा हकदार क़ायम हो।

इस पर ज़ेबउन्निसा ने हंसकर कहा—

"यह तो वही पुराना क़िस्सा है! अजी, बादशाहज़ादियां भी कभी शादी करती हैं?"

मुबारक—तुम्हारी छोटी बहिनों की तो शादी हुई है।

ज़ेब०—उन्होंने शाहज़ादों से शादी की है, क्योंकि शाहज़ादियां शाहज़ादों के अलावे गैर शख़्स के साथ शादी नहीं कर सकतीं। अजी! शाहज़ादियां क्या दो सौ सवारों के मनसबदार के साथ कभी शादी कर सकती हैं?

मुबा०—जानेमन! तुम मुल्क मालिक हो। तुम जो बादशाह से कहोगी, वे वही करेंगे। यह बात सभी जानते हैं।

---

[१] दिलवर [मायाधिक]

ज़ेब०—अगर जो नामुनासिब बात है, उसके लिये मैं बादशाह से गुज़ारिश नहीं करूंगी।

मुबा०—तो क्या, यह बात मुनासिब है, शाहज़ादी ?

ज़ेब०—कौन सी बात ?

मुबा०-यही बड़ा भारी गुनाह ?

ज़ेब०-कौन इस गुनाह को करता है ?

यह बात सुन कर मुबारक ने सिर नीचा कर लिया और फिर कहा,—

तुम क्या समझती नहीं ?

ज़ेब०-" सुनो ! अगर यह हर्कत तुम्हें गुनाह जान पड़े तो अब मत आना।

मुबारक ने गिड़गिड़ा कर कहा—

"मुझ में अगर इतनी ताकत होती तो मैं फिर न आता, मगर मैं इस खूबसूरती पर बिक गया हूं।"

जेब०—अगर तुम बिक चुके हो-अगर तुम मेरे खरीदे हुये हो तो फिर जो मैं कहूं सो करो। बस चुपकर बैठो।

मुबा०-दिलरुबा ! अगर मैं अकेला ही इस गुनहगारी का हकदार होता तो शायद चुपभी होरहता; मगर मैं तुमको अपने से ज्यादः अजीज समझता हूं।

इस पर जेबउन्निसा ठठा कर हंसी और फिर बोली-

"बादशाहजादी के लिये भी गुनाह है ?"

मुबारक ने कहा--"नेकी और गुनाह सबके वास्ते है; ऐसा ही खुदा का हुक्म है।"

जेब०- अल्लाह ने ऐसा हुक्म कमहैसियत लोगों के वास्ते ही फर्माया है-बल्कि काफिरों के वास्ते। मैं क्या हिंदुओं—और खास कर बरहमनों या राजपूतों—की लड़की हूं कि एक शौहर के साथ ही तमाम उम्र लौंडीपना करके अखीर में उसी के साथ जलती आग में जल मरूंगी ? अगर अल्लाह ने मेरे लिये वैसा हुक्म फर्माया होता तो वह मुझे बादशाहजादी हर्गिज न बनाता।

यह बात सुनते ही मुबारक मानों आकाश पर से गिर पड़ा, क्योंकि ऐसी खोटी बात उस ने कभी नहीं सुनी थी। पापस्रोतामयी दिल्ली में भी कभी ऐसी कथा नहीं सुनी थी। यदि कोई दूसरे ने ऐसी बात उस के सामने कही होती तो वह उससे यही कहता कि-"तेरे ऊपर बिजली टूट पड़े।" पर यहां तो वह जेबउन्निसा के रूपसागर में डूब रहा था, इसलिये उसे अपना आगा पीछा नहीं सूझता था। वह केवल भैचक सा होगया था।

जेबउन्निसा कहने लगी-"यह बात जाने दो। दूसरी बातें करो। देखो फिर कभी मैं ऐसी बात न सुनूं, इस का खयाल रखना। सुनो, अगर......."

मुबारक—मुझे खौफ़ दिलाने की क्या ज़रूरत है ? मैं यह बखूबी जानता हूं कि तुम जिस पर नाराज़ होगी, एक सायत भी उस के धड़ पर सर नहीं रहेगा; पर शायद यह भी तुम समझती होगी कि मुबारक मौत से नहीं डरता।

ज़ेबउन्निसा—मरने के बनिस्वत क्या दूसरी सज़ा नहीं है ?

मुबारक—है ! फ़कत तुम्हारी जुदाई।

ज़ेबउन्निसा—ठीक है; हरबार ऐसी फ़जूल बातों के करने पर अखीर में वही बात होगी।

मुबारक ने सोचा कि एक के होने पर दूसरी बात भी अवश्य ही होगी, क्योंकि अगर वह पापिन समझ कर ज़ेबउन्निसा को छोड़ दे तो उसे अवश्यही अपने प्राण देने पड़ें। क्योंकि ज़ेबउन्निसा मोगलराज्य की धुरी थी,खुद औरंगज़ेब उस का आज्ञाकारी था। पर इसी लिये मुबारक दुखी न था; उसे दुःख केवल इसी बातका था कि वह बादशाहज़ादी के रूप पर ऐसा मोहित था कि उसे किसी तरह भी नहीं छोड़ सकता था। बस इस पापरूपी कीचड़ से निकलने की उस में सामर्थ्य नहीं थी।

इसलिये मुबारक गिड़गिड़ा कर बोला—

"आप अपनी खुशी से जितनी इनायत मुझ पर करेंगी, मैं उतनेही में अपनी रूह को आसूदः समझूंगा;

मगर मैं तो अभी बहुत कुछ ख्वाहिश रखता हूं, उसे आप गोया फ़क़ीर की मुराद समझें, क्योंकि ऐसा कौन फ़क़ीर है जो कि दुनियां की बादशाहत न चाहता हो ?"

इस पर प्रसन्न होकर शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा ने मुबारक को शराब का प्याला दिया और फिर कुछ देर तक उस के साथ मज़े की प्यारा की बातें कर के अतर और पान देकर उसे बिदा किया।

वह रंगमहल से बाहर भी न होने पाया था कि बीचही में दरिया बीबी ने आकर उसे रोका और बहुतही धीरे से पूछा-

"क्यों ! शाहज़ादी के साथ शादी पक्की हो गई ?"

मुबारक ने चकपकाकर पूछा-"तू कौन है रे ?"

दरिया-वही, दरिया !

मुबा०—दुश्मन ! शैतान ! तू यहां पर क्यों आई ?

दरिया-तुम नहीं जानते कि मैं खबर बेंचती हूं ?

इस पर मुबारक थर्रा गया, और दरिया ने कहा-

"क्या शाहज़ादी के साथ निकाह होगी ?"

मुबा०—कौन शाहज़ादी ?

दरिया—शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा बेगम साहिबा। नजूमी ने जो राजपुत्री की बात कही थी सो क्या शाहजादी राजपुत्री नहीं है ?

मुबा०—मैं तुझे यहीं मार डालता हूं।

दरिया— तो मैं शोर मचाती हूं।

मुबा०— अच्छा, न मारूंगा, छोड़ देता हूं। पर यह तो बतला कि तू किस के पास खबर बेंचने आई है ?

दरिया— इस बात के कहने ही के लिये तो मैं खड़ी हूं। सुनो हजरत जेबउन्निसा के पास।

मुबा०— कौन सी खबर बेचेंगी ?

दरिया— आज जो तुम बाजार में नजूमी के पास अपनी किस्मत की कैफ़ियत पूछने गये और इस पर जो उस ने तुमको शाहजादी के साथ शादी करने के लिये कहा कि 'इस से तुम्हारी तरक्की होगी' बस यही खबर !!!

मुबा०— दरिया बीबी ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, कि तुम मेरे ऊपर ऐसा जुल्म करने पर उतारू हो ?

दरिया— कहते हो कि क्या बिगाड़ा है ? तुम ने मुझे बिगाड़ने में कसर क्या की है ? तुम ने जो कुछ किया है, उस के बनिस्बत औरतों की और कौन सी खराबी हो सकती है ?

मुबा०- क्यों प्यारी, मुझ सरीखे बहुतेरे पड़े हैं।

दरिया-मगर तुझसा बदकार और कोई भी है।

मुबा०—मैं बदकार नहीं हूं। मगर यहा पर खड़े होकर इतनी बातें नहीं हो सकतीं। इस लिये दूसरी जगह तुम फिर मुझ से मुलाक़ात करना तो मैं तुम्हारा दिल भर दूंगा।

इतना कह कर मुबारक फिर ज़ेबउन्निसा के पास लौट गया और जाकर उस से कहने लगा कि—"मैं दुबारा फिर आया हूं, इस बेअदबी को मुआफ़ करना चाहिए। मैं यह कहने आया हूं कि दरिया बीबी हाज़िर है। और वह अभी आप से मुलाकात करेगी। पर वह बिल्कुल ख़फ़उलहवास है, इसलिये अगर वह आप के आगे मेरी कुछ शिकायत करे तो बग़ैर मुझ से जवाब तलब किए आप मुझ पर नाराज मत होइएगा।"

ज़ेबउन्निसा ने कहा—तुम पर नाराज़ होने की अब मुझ में ताक़त बाक़ी नहीं रही। क्योंकि अगर कभी मैं तुम पर ख़फ़गी जाहिर करूंगी तो खुद ब खुद सदमे उठाऊंगी। ख़ातिरजमा रक्खो, तुम्हारी शिक़ायत मैं कान में न लाऊंगी।

"इस गुलाम पर ऐसी ही मेहे नज़र हमेशः रहे।" यह कह कर मुबारक फिर बिदा हुआ।

चौथा परिच्छेद।

संवादविक्रय।

जो तातारी युवती ढाल तल्वार लेकर ज़ेबउन्निसा

के विलासगृह के द्वार पर पहरा देती थी, उस ने दरिया को देख कर पूछा—

"इतनी रात को क्या काम है ?"

दरिया बीबी ने कहा—वह बात क्या पहरेवाली को बतलाऊं ? तू ख़बर कर।

तातारी ने कहा—तू निकल यहां से—मैं इस वक़्त ख़बर न करूंगी।

दरिया ने कहा—ख़फ़ा क्यों होती हो, दोस्त-मन ! तुम्हारी नज़र दराज़ी से ही काबुल पंजाब फ़तह होते हैं तिस पर भी तुम्हारे हाथों में ढाल तल्वारें हैं तो भला फिर ऐसी हालत में तुम्हारी ख़फ़गी पर कैसे गुज़ारा हो सकता है ? मेरे इस परवाने को देखो और इत्तिला करो।

पहरेवाली ने अपने लाल लाल ओठों पर ज़रा सी मुसकुराहट की झलक दिखला कर कहा—"मैं तुम को भी चीन्हती हूं और तुम्हारे परवाने को भी पहचानती हूं, पर क्या इतनी रात को भी हज़रत बेगम साहिबा सुरमा ख़रीदेंगी ?" तुम कल सुबह को आना। इस वक्त ख़सम है, ख़सम के पास जाओ और अगर शौहर न हो तो....।

दरिया—तू जहन्नुमरसीदः हो ! तेरी ढाल तल्वार भी जहन्नुम में जाय ! और तेरा ओढ़नी पायजामा भी जहन्नुम में जाय ! तू क्या समझती

है कि बिला ज़रूरत ही मैं इस आधी रात के वक्त आई हूं ?

इस पर तातारी ने धीरे से कहा— हज़रत बेगम साहिबा इस वक्त किसी ऐशआराम में होवेंगी।

दरिया ने कहा—अरी ! बांदी यह क्या मैं नहीं जानती ? तू मज़ाक़ करेगी ? अच्छा मुंह बा दे।

इतना कह कर दरिया ने अपनी ओढ़नी के भीतर से एक शीशी शराब की निकाली। पहरेवाली ने मुंह बाया, और दरिया ने उस के मुंह में सारी शीशी उढ़ेल दी। तातारी सूखी नदी की तरह एक ही सांस में उसे सोख गई, और फिर बोली—

"बिस्मिल्लाह ! क्या तौफ़ा शर्बत है? अच्छा, तुम खड़ी रहो, मैं इत्तिला करती हूं।"

इतना कह कर और महल के भीतर जाकर उस ने देखा कि ज़ेबउन्निसा हंसती हुई फूलों का एक कुत्ता बना रही है, उस कुत्ते का मुंह ठीक मुबारक के मुंह का सा बना है और बादशाहों के सर्पेचकलगी की भांति उस की दुम बनी है।

ज़ेबउन्निसा ने पहरेवाली को देख कर कहा—

" नाचने वालियों को बुला।"

रंगमहल की सभी बेगमों के दिलबहलाव के लिये एक एक गोल नाचनेवालियों का भी रहता था, और हरएक महलों में नाच तमाशा हुआ करता था।

ज़ेबउन्निसा के दिलबहलाव के लिये भी एक गोल नाचनेवालियों का था।

पहरेवाली ने फिर कूर्निश करके कहा—

"जो हुकुम! हुज़ूर दरिया बीबी हाज़िर है, मैंने उसे चलेजाने के लिये बहुत कहा, मगर वह नहीं मानी।"

ज़ेब०— उस ने तुझे कुछ बख़्शिश दी है?

यह सुन पहरेवाली सुन्दरी ने लजा कर कानतक अपने सिर को ओढ़नी से ढप लिया। फिर ज़ेबउन्निसा ने कहा— अच्छा, नाचनेवालियों को रहने दे— दरिया को भेज!

दरिया ने आकर कूर्निश की, फिर वह फूल के कुत्ते को देखने लगी। उस कुत्ते को निहारते देख कर बेगम साहिबा ने पूछा— "यह कैसा बना है, दरिया?"

दरिया ने फिर सलाम करके कहा—"हूबहू मनसबदार मुबारक ख़ां साहब की मिसाल का।"

ज़ेब०– दुरुस्त! तू इसे लेगी?

दरिया— हुज़ूर! कौन सा देंगी? कुत्ता या इनसान?

यह सुन कर ज़ेबउन्निसा ने भौवें तानी। फिर क्रोध को सम्हाल और हंस कर कहा–" जिस की तुझे ख़ाहिश हो "।

दरिया— तो यह कुत्ता हज़रत बेगम साहिबा के खिजमत में रहे, मैं इनसान चाहती हूं।

ज़ेब०— कुत्ता तो इस वक्त मौजूद है पर इनसान तो इस वक्त हाज़िर नहीं है। फिलहाल कुत्ते ही को ले।

यह कह कर शराब के नशे में मस्त जेबउन्निसा ने जिस फूल के कुत्ते को रचा था, उसे दरिया के ऊपर फेंक दिया। उस ने भी उस कुत्ते को उठा कर अपनी ओढ़नी में रख लिया, क्योंकि यदि वह उसे न लेती तो बेअदबी होती! फिर उस ने कहा—

"मैंने हुजूर की मिहर्वानी से कुत्ते और इनसान दोनों ही को पाया।"

जेब०— क्योंकर?

दरिया—इन्सान तो मेरा हई है।

जेब०- कैसे?

दरिया- मेरे साथ उस ने निकाह की है।

जेब०-निकल यहां से।

ऐसा कह ज़ेबउन्निसा ने फूलों का तोड़ा ले कर ज़ोर से दरिया को मारा।

दरिया ने हाथ जोड़ कर कहा—दोहाई हक़-ताला की! हुजूर! अभी तक मुल्ला, गवाह सब जीते हैं। अगर हुजूर को मेरी बात का यक़ीन न हो तो दर्याफ्त कर लें।

जेबउन्निसा ने भौंदें तान कर कहा-मेरे हुक्म से उन सभों को फांसी दी जायगी।

यह सुनते ही दरिया थर्रा गई, क्योंकि वह जानती थी कि ' ये बाघिन के समान मोगल शाहजादियां जो न करें, सो थोड़ा ' फिर वह बोली-

" शाहजादी ! मैं एक बेकस औरत हूं, मैं तो खबर बेंचने आई हूं, मुझे इन बातों से कोई मतलब नहीं है। "

जेब०- क्या ख़बर है, बोल !

दरिया-दो खबरें हैं; उन में से एक तो इन्हीं मुबारक ख़ां से इलाका रखती है। मगर बिला इजाजत उस के कहने की हिम्मत नहीं होती।

जेब०— कह !

दरिया—ये आज ही शब को चौक पर गनेस नजूमी के पास अपनी किस्मत दिखलाने गए थे।

जेब—उस नजूमी ने क्या कहा ?

दरिया—यही कि—शाहजादी से शादी करो, इस से तुम्हारी तरक्की होगी।

जेब०—गलत बात है। भला, मनसबदार किस वक्त नजूमी के पास गया था ?

दरिया-यहां आने के जरा पेश्तर।

जेब०-यहां कौन आया था ?

यह सुन कर दरिया कुछ डरी; पर तुरत ही फिर साहस तस्लीम कर के बोली—

"मुबारक खां साहब !"

जेब०—तूने कैसे जाना ?

दरिया-मैंने आते हुए देखा।

जेब०—जो ऐसी बात कहे, उसे मैं फांसी देती हूं।

इस पर दरिया कांप उठी; और बोली—"बेगम साहिबा के पशेमबत में मैं ऐसा कल्मा ज़बान पर नहीं लाती।"

जेब०-अगर लाएगी तो जल्लाद के हाथ से तेरी जीभ कटवा डालूंगी। तेरी दूसरी ख़बर क्या है, कह ?

दरिया-दूसरी खबर रूपनगर की है ?

फिर तो उस ने चंचलकुमारी की तस्वीर तोड़ने-वाली कहानी शुरू से आखीर तक कह सुनाई। उसे सुन कर जेबउन्निसा ने कहा—

"बेशक यह ख़बर अच्छी है इस के वास्ते तू कुछ बख़्शिश पायेगी।"

उसी समय रंग महल के खजानची के ऊपर पर-वाना जारी हुआ। और इनाम पाकर दरिया वहां से भागी।

पर वह भाग न सकी, बीचही में उसे उसी तातारी पहरे वाली ने पकड़ा। और उसके कंधे पर तलवार रखकर कहा—"किधर भागी जाती हो, दोस्तमन ?

दरिया— काम होगया, अब घर जाती हूं।

पहरेवाली— रुपये पाये हैं, उन में से कुछ मुझे न दोगी ?

दरिया— मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत है, इस के एवज में तुम्हें एक ठुमरी सुनाये जाती हूं, सरंगी लाओ।

पहरे वाली के पास सरंगी थी, क्योंकि वह कभी२ उसे बजाया करती। रंगमहल में गाने बजाने की तो धूम मची ही रहती थी। सभी बेगमों के तहत में एक एक गोल नाचनेवालियों का रहता था जो बिना ब्याही रंडियां न थीं, वे सब बिचारी आप ही आप गा बजाकर अपना जी ठंढा कर लेती थीं, उन बिचारियों को गाने वाली कहां मिलती थी ? तात्पर्य यह है कि रंगमहल में रात को तानारीरी हुआ ही करती।

दरिया तातारी की सरंगी लेकर गाने लगी। वह बड़ी ही सुरीली और गाने बजाने में बहुत ही चौकस थी। उस ने बहुत ही अच्छा गाया। उस के गाने की आवाज सुन कर जेबउन्निसा ने भीतर ही से पूछा—

"कौन गा रहा है ?"

पहरे वाली ने कहा—दरिया बीबी।

इस पर हुक्म हुआ कि " उसे भेज दे "

दरिया ने फिर जेबउन्निसा के सामने जाकर कूर्निश की। जेबउन्निसा ने कहा—

"गा तो सही, यह बीन रक्खी है, उठा ले।"

बीन लेकर दरिया गाने लगी। और फिर तो उस ने बहुत ही अच्छा गाया। शाहजादी ने बहुतेरी अप्सराओं को लजाने वाली गान विद्या में निपुण गवैयों और गानेवालियों का गाना सुना था। पर दरिया का सा गाना उस ने कभी न सुना था। दरिया का गाना बंद होने पर पूछा—

"तूने मुबारक के भी आगे कभी गाया था?"

दरिया—मेरा गाना ही सुन कर तो उन्हों ने मेरे साथ निकाह की।

यह सुनते ही जेबउन्निसा ने एक फूल के गुच्छे को फेंक कर ऐसे जोर से उसे मारा कि उस के कनफूल में चोट लगने से कान कट कर खून बहने लगा। तब जेबउन्निसा ने उसे और भी कुछ रुपए अशर्फियां दे कर बिदा किया—"और कह दिया कि अब कभी मत आइयो।"

दरिया तस्लीम बजा कर बिदा हुई पर मन ही मन यह कहती गई कि—"फिर आऊंगी"—फिर तुझे जलाऊंगी, फिर मार खाऊंगी, और फिर इनाम लूंगी। मैं तुम्हें नेस्त नामूद कर छोडूंगी।"

पांचवां परिच्छेद।

उदयपुरी बेगम।

औरंगजेब संसार में प्रसिद्ध बादशाह हुआ, वह जगत्प्रसिद्ध भारत साम्राज्य का अधीश्वर हुआ था। वह आप भी बुद्धिमान, कामकाजी, परिश्रमी और अनेक राजोचित गुणों से गुणवान था। पर इतने असाधारण गुणों के रहने पर भी वही जगत्प्रसिद्ध शाहंशाह अपने जगत्प्रसिद्ध साम्राज्य को आपही एक प्रकार से मटियामेट कर के क़ब्र में सोया।

इस का सब से मुख्य कारण यही है कि वह घोर दुराचारी और महापापी था। उस के सरीखा धूर्त, कपटी, पाप करने में संकोचरहित, स्वार्थपरायण, पराए को दुःख देनेवाला और प्रजाओं को रुलानेवाला शायद ही कोई दूसरा मिलेगा। वही कपटी बादशाह बाहर तो अपनी जितेन्द्रियता का ढकोसला फैलाता और उस का महल असंख्य सुंदरियों से, मधुमक्खियों से छाए हुए शहद के छत्ते के समान, दिन रात गुंजान रहता।

उस की बेगमे भी अनेक थीं और शरह के बर्खिलाफ़ बहुतेरी रंडियां भी नौकर थीं, इन के अलावे लौंड़ियों की तो गिनती ही नहीं थी। पर इन पापिन स्त्रियों के साथ इस पुस्तक का लगाव बहुत

कम है, परन्तु किसी २ बेग़म के साथ इस कहानी का गहरा सम्बन्ध है।

मोगल बादशाह पहिले जिस स्त्री के साथ विवाह करते, वही प्रधान महिषी या बेग़मों की सर्ताज़ होती। हिन्दुओं के घोर बैरी औरंगजेब के अभाग्य से एक हिन्दू लड़की उसकी प्रधान बेग़म थी। अकबर बादशाह ने राजपूत राजाओं की लड़कियों के साथ विवाह करने की चाल निकाली थी। उसी नियम के अनुसार सभी बादशाहों की एक न एक हिन्दू बेग़म थी। औरंगजेब की प्रधान महिषी योधपुरी बेग़म थी। परन्तु प्रधान महिषी होने पर भी योधपुरी बेग़म प्यारी बेग़म न थी, बरन जो सब से अधिक सुन्दरी एक क्रिस्तानी थी, वही उदयपुरी बेग़म के नाम से इतिहास में कही गई है। उदयपुर के साथ इसका किसी तरह का लगाव था, इस लिये इस का उदयपुरी नाम नहीं पड़ा था। एशिया खण्ड में कुछ दूर पश्चिम प्रदेश में जर्जिया नाम का जो शहर आज दिन रूस राज्य के आधीन है, वही उस की जन्मभूमि थी। लड़कपन में एक बुर्देफ़रोश उसे बेचने के लिये भारतवर्ष में ले आया था। और औरंगज़ेब के बड़े भाई दारा ने उस को खरीदा था। वही लड़की स्यानी होने पर अद्वितीय सुन्दरी हुई। उस के रूप से मोहित होकर दारा उस का वशीभूत हो गया था। यह बात ऊपर कह आए हैं कि उदयपुरी मुसल-

मानिन न थी, बरन क्रिस्तानी थी। और ऐसा भी लोगों ने कहा है कि दारा भी अन्त में कृस्तान होगया था।

दारा को युद्ध में परास्त करने पर औरंगज़ेब तख्त पर बैठने पाया था। पहिले उस ने दारा को पराजित करके क़ैद किया पीछे मार डाला। उसे मार डालने पर महा नीच औरंगजेब ने एक अजूबी बात उठाई। ओड़ियावालों में एक यह कलङ्क है कि "बड़े भाई के मरने पर छोटा भाई बिधवा भौजाई को ब्याह कर उसका शोक दूर करता है।" इसी जमात के एक ओड़िया से हम ने एक वार पूछा था कि—"तुम लोग ऐसा नीच कर्म क्यों करते हो?" इस पर चट वह बोल उठा,—"हुजूर! घर की बहू क्या पर (दूसरे को) दूं?" भारतवर्ष के बादशाह औरंगजेब ने भी जान पड़ता है कि यही बात सोची होगी। उस ने कुरान की आयत निकाल कर नजीर दिखलाई कि "मैं इसलाम मजहब के बमूजिब बड़े भाई की जोड़ू के साथ निकाह करने के लिये मजबूर हूं।" बस चट उस दुष्ट ने दारा की दो प्रधान बेग़मों को अपने आधे अंग की हक़दार बनने के लिये बुलाया। उन में एक तो राजपूतकन्या थी, और दूसरी यही श्रीमती उदयपुरी महाशया। अहा! राजपूतकन्या ने तो औरंगजेब का हुक्म सुन कर वह काम किया कि जिसे सभी हिन्दू स्त्रियां ऐसी अवस्था में करगुजरती हैं, पर दूसरी

जात की लड़की वह काम नहीं कर सकती। अर्थात् दारा की हिन्दू बेग़म तो औरंगजेब का राक्षसी हुक्म सुन ज़हर खा कर मरगई। और क्रिस्तानी उदयपुरी खुशी के साथ औरंगजेब के गले से लिपटगई। इतिहास लेखकों ने इस वेश्या के नाम को तो गा गा कर अपना जन्म सफल किया है पर जिस हिन्दू बाला ने अपना धर्म बचाने के लिये जहर खा कर अपनी जान दे दी, उस का नाम लिखते भी शायद उन लोगों को घृणा हुई होगी। हा! यही इतिहास का मोल है!!

उदयपुरी का जैसाही अद्वितीय रूप था, वैसीही उस में शराब की भी लत थी। दिल्ली के बादशाह मुसलमान होने पर भी बड़े भारी शराबी थे। और उन के हाली मोहाली भी शराब में उन्हीं की लीक पर चलते थे। रंगमहल में भी इस सत्यानाशी शराब की रेलारेल थी। इस नरक में भी उदयपुरी ने अपने नाम की शोहरत मचा रक्खी थी।

ज़ेबउन्निसा एकाएकी उदयपुरी के विलासभवन में न घुस सकी। क्योंकि हिन्दुस्तान के शाहंशाह की प्रधानप्यारी बेग़म शराब के नशे में एक तरह से बदहवास हो रही थी और इस के कपड़े गहने सब अपनी अपनी जगह से इधर उधर हो रहे थे। लौंड़ियों ने फिर से सेज सँवारी, और गुलाब छिड़क कर उस के होश हवास दुरुस्त किए। तब ज़ेबउन्निसा ने ख़ाबगाह

के भीतर जाकर देखा कि उदयपुरी के बाएं हाथ में सटक है, आंखें अधखुली हैं, ओठों की घड़ी पर मक्खियां पंख झाड़ रही हैं, और हवा के झोंके से भूमि में गिरे और पानी से भींगे फूलों की ढेरी की भांति वह सेज पर मुर्झाई हुई पड़ी है।

जेबउन्निसा ने आकर और तस्लीम कर के कहा "हुजूर का मिज़ाज़ शरीफ़!"

इस पर उदयपुरी ने आधी जागती हुई की आवाज में लड़खड़ाती हुई जीभ से फ़र्माया—

"इतनी रात को क्यों?"

जेब०—एक ख़बर है।

उदय०—क्या? मरहटा डाकू मरगया?

जेब०—उस के बनिस्वत खुशखबर।

इतना कह कर उस ने बढ़ा चढ़ा और नोनमिर्च लगाकर चंचलकुमारी की उस तस्वीर तोड़नेवाली कहानी को कह सुनाया। इस पर उदयपुरी ने पूछा—"यह क्या खुशखबरी है?"

ज़ेबउन्निसा ने कहा—"ये भैंस की सी बांदियां हुजूर की तंबाकू भरती हैं, यह मुझ से देखा नहीं जाता। इस वास्ते रूपनगरवाली वही नाज़नी आकर हज़रत की तंबाकू भरे, बादशाह से हुजूर इसी बात की फ़र्मायश करें।"

इन बातों को बिना समझेबूझे ही नशे के झोंक में उदयपुरी ने कहा—"बहुत खूब !!!"

इस के थोड़ी देर पीछे राजकाज से थका हुआ औरंगज़ेब थकावट उतारने के लिये उदयपुरी के महल में पहुंचा। तब उस (उदयपुरी) ने नशे के झोंक में चंचलकुमारी की सारी कहानी, जैसा कि ज़ेब-उन्निसा के मुंह सुनी थी, कहसुनाई। और "वह आकर मेरी तंबाकू भरे" यह फ़र्मायश भी की। सुनते ही औरंगज़ेब ने क़सम खा कर उस की फ़र्मायश मंजूर की, क्योंकि उस समय वह मारे क्रोध के कांप रहा था।

छठां परिच्छेद ।

योधपुरी बेग़म ।

दूसरे ही दिन शाही हुक्म सुनाया गया । और रूपनगर के एक अदने राजा के ऊपर पर्वाना जारी हुआ। जिस अद्वितीय कुटिलता के भय से जयसिंह और यशवंत सिंह आदि सेनापति लोग और आज़म शाह वग़ैरह शाहज़ादे सदा कांपा करते थे—जिस अटूट कुटिलता के जाल में फंसकर चतुरचूड़ामणि शिवा जी भी दिल्ली के कारागार में रक्खे गये थे—यह पर्वाना या हुक्मनामा भी उसी कुटिलता से निकला था। उस में लिखा गया था कि—"बादशाह रूपनगर की राजकुमारी की बेहद खूबसूरती का हाल सुन कर उस के मुश्ताक़ हुए हैं। और रूपनगर के राव साहब की नेकमिजाज़ी और शाही फ़र्माबर्दारी पर भी शाहंशाह खुश हुए हैं । चुनांचे बादशाह उस राजकुमारी से शादी कर के राव साहब को उन की उस नेकनीयती के इनाम देने की ख्वाहिश ज़ाहिर करते हैं। लिहाज़ा राव साहब अपनी दुख्तर को दिल्ली रवाना करने का इन्तजाम करें, बहुत जल्द यहाँ से शाहीफौज़ जाकर उसे दिल्ली ले आएगी।"

रूपनगर में इस समाचार के पहुंचते ही बड़ी ही धूमधाम मची। मानो वहां पर आनंद की सीमा न रही! योधपुर, अंबर आदि के बड़े बड़े राजपूत राजे

मोगल बादशाहों को अपनी अपनी लड़कियों के देने में अपना बड़ा भाग्य समझते थे, तो फिर उन के आगे रूपनगर के एक अदने राजा के भाग्य में यह शुभ फल बहुत ही आनंद का विषय समझा गया तो इस में आश्चर्य क्या है ? बादशाहों के बादशाह—कि जिन के बराबर संसार में दूसरा कोई नहीं है–वे दामाद होंगे—चंचलकुमारी हिन्दुस्तान की बेग़म होगी—इस से बढ़ कर और सौभाग्य का विषय क्या हो सकता है ? राजा, रानी, पुरवासी और रूपनगर की सारी प्रजा आनंद से मतवाली हो गई। रानी ने देवी के मन्दिर में पूजा पाठ भेज दिया; और राजा भी इस मौके पर किस किस जमींदार के कौन कौन से गांव छीन लेने चाहिएं इस की एक फ़िहरिस्त तैयार करने लगा।

केवल चंचलकुमारी की सखियां उदास हुईं। क्योंकि वे सब जानती थीं कि इस शादी से मोग़लों की बैरिन चंचलकुमारी को सुख न होगा !

यह समाचार दिल्ली में भी फैल गया। और धीरे धीरे बादशाही रंगमहल के अन्दर भी पहुंचा। इसे सुनते ही योधपुरी बेग़म बहुत ही दुखी हुई। वह हिन्दू की लड़की थीं पर मुसलमान के पाले पड़ कर भारतेश्वरी होने पर भी उन्हें सुख न था। वह औरंगजेब की यवनपुरी में भी अपना हिन्दूपन बनाए रहतीं। वह हिन्दू लौंड़ियों से अपनी सेवा टहल करातीं

हिन्दू के बनाए हुए पाक के सिवाय मुसलमान की छूई हुई चीजें कभी न खातीं ; यहां तक कि औरंगजेब के महल में रह कर भी वह हिन्दू देवता की मूर्त्ति स्थापन कर के पूजा करतीं, प्रसिद्ध देवद्वेषी औरंगजेब जो इतना सहता, इस से यही जान पड़ता है कि वह उन पर भी कुछ अनुग्रह करता था।

योधपुरी बेगम ने यह समाचार सुना। और बादशाह से सामना होने पर नवनताई से कहा—

"जहां पनाह ! जिस के हुक्म से रोजबरोज बड़ेबड़े राजे महाराजे राजसिंहासन से उतारे जाते हैं, एक नाचीज लड़की क्या उस की खफगी के लायक है ?"

यह सुन कर औरंगजेब जरा मुसकुराया, पर कुछ बोला नहीं। वहां पर भी कुछ न हुआ।

तब योधपुर की राजकुमारी ने मन ही मन कहा कि हे भगवान ! अब तू मुझे रांड़ कर ! क्योंकि यह राक्षस यदि कुछ दिन और जीएगा तो हिन्दुओं का नाम निशान भी न रहेगा।

देवी नाम की उन की एक दासी थी। वह योधपुर से ही उन के साथ आई थी। पर बहुत दिनों तक विदेश में रहने और बुढ़िया होने से अब वह मुसलमान के घर में रहने पर राजी न थी। बहुत दिनों से वह बिदा मांगती थी, पर वह बहुत ही विश्वासी थी, इस लिये योधपुरी बेगम उसे नहीं छोड़ती थीं। पर आज उन्हों ने उसे अकेले में ले जा कर कहा—

"तू बहुत दिनों से अपने देश पर जाना चाहती है, सो आज मैं तुझे छोड़ दूंगी। पर तुझे मेरा एक काम करना पड़ेगा। वह काम बहुत ही कठिन, बड़े ही परिश्रम का, पूरे साहस का और बड़े विश्वास का है। उस के लिये मैं तुझे खर्च बर्च दूंगी, इनाम दूंगी, और सदा के लिये तेरा छुटकारा कर दूंगी। बोल, करेगी ?"

देवी ने कहा—"आज्ञा कीजिए।"

योधपुरी ने कहा—"रूपनगर की राजकुमारी का समाचार तूने सुना है न ? बस उसी के पास तुझे जाना पड़ेगा। मैं चिट्ठी पत्री कुछ भी न दूंगी। जो कुछ वहां तुझे कहना पड़ेगा, उसे मेरा नाम लेकर कहियो और मेरा यह पंजा (१) दिखलाइयो। इसे देख कर वह तेरी बातों का विश्वास करेंगी। यदि घोड़े पर चढ़ सकती हो तो, उस पर सवार होकर जा। उस के खरीदने के लिये दाम दूंगी।"

देवी—"वहां पर क्या कहना पड़ेगा ?"

बेगम—"राजकुमारी से कहियो कि, "हिन्दू की लड़की होकर मुसलमान के घर न आवें; क्योंकि हम-लोग आकर नित्य मरने की इच्छा करती हैं।" और कहियो कि, "उस तस्वीर के तोड़नेवाली सारी बात बादशाह ने सुन पाई है, और उस की सज़ा ही देने

(१) पंजा—मुहर।

के वास्ते तुम्हें दिल्ली बुलाते हैं। इन्हों ने प्रतिज्ञा की है कि 'रूपनगर वाली से उदयपुरी बेगम की तम्बाकू भरवावेंगे।" इसलिये कहियो कि, "चाहे विष खालें, पर दिल्ली न आवैं।"

"और भी कहियो कि, "घबरायं नहीं, अब दिल्ली का तख़्त डामाडोल हो रहा है। दक्खिन में मरहटे मोगलों का हाड़ तोड़ रहे हैं; उधर राजपूतों ने भी आपस में एका किया है। ज़ज़िया की आग से सारा राजपूताना लहक उठा है, हाय! वहां पर गौवें मारी जाती हैं, यह बात कौन राजपूत सह सकेगा? इसलिये अब सब राजपूत एकत्र हुये हैं। उन में उदयपुर के राणा वीर पुरुष हैं। मोगल और तातारियों में राणा के समान कोई भी बीर नहीं है। यदि वे राजपूतों के अगुआ होकर तल्वार उठायें, यदि एक ओर शिवाजी और दूसरी ओर राजसिंह हथिआर धरें तो फिर दिल्ली का तख़्त कै दिन टिक सकता है?'

देवी—"महारानी जी। ऐसी बात मुंह से मत निकालिए। दिल्ली का तख्त आप के राजकुमार (शाहज़ादे) के लिये है। अपने लड़के ही के तख्त के उलटने की सलाह आप देती है?"

बेगम—"मैं ऐसी आशा नहीं रखती कि मेरा लड़का इस तख्त पर बैठने पावेगा। क्योंकि जब तक राक्षसी ज़ेबउन्निसा और डाकिनी उदयपुरी जीती

रहेगी, तब तक ऐसा भरोसा मैं नहीं कर सकती। एक बार ऐसी ही आशा करने पर मैंने रौशनआरा के हाथ से बड़ी मार खाई थी (१) आज भी उस ज़खम का निशान मेरे मुंह नाक और आंख पर मौजूद है।

इतना कह कर योधपुरी बेगम कुछ देर तक रोती रहीं, फिर बोलीं,—

इन बातों से कुछ काम नहीं है, तू मेरा सारा मतलब न समझेगी, और उस के समझाने ही से क्या होगा? इस लिये जो मैं कहती हूं, वही कर। राजकुमारी से राज सिंह की शरन लेने को कहियो वे कभी राजकुमारी की बात को रद न करेंगे। कहियो कि—"मैं आशीर्वाद देती हूं कि वह राणा की महिषी हों। और महिषी हो कर इस बात की प्रतिज्ञा करें कि उदयपुरी बेगम उन की तंबाकू भरे और ज़ेबउन्निसा उन्हें पंखा झले।"

देवी—"महारानी जी! भला! ऐसा क्या हो सकता है?"

बेगम—"इस बात का विचार तू न कर। और मैंने जो कुछ कहा है, वह कर सकेगी कि नहीं? सो कह।"

---

(१) यह ऐतिहासिक बात है। रोशन आरा ने योधपुरी बेगम का नाक मुंह नोंच खसोट लिया था।

देवी—"मैं सब कुछ कर सकूंगी।"

तब बेगम ने उसे खर्च बर्च के लिये रुपए अशर्फ़ियां, इनाम और अपना पंजा दे कर बिदा किया।"

सातवां परिच्छेद।

खुदा शाहज़ादी क्यों बनाता है ?

फिर ज़ेबउन्निसा के ऐशमहल में रात के समय मुबारक पहुंचा। इस वार वह गलीचे के ऊपर ऊंचा-मुंह किये और हाथ जोड़े हुए दोजानू बैठा हुआ था। और ज़ेबउन्निसा उस के सामने अपने पलंग के ऊपर, जिस में मूंगे मोतियों की झालर लगी हुई थी, ज़री के कामदार तकिए का सहारा लगाए हुई सोने के गड़गड़े में जड़ाऊ पेंचवान पर तंबाकू पी रही थी। क्योंकि पश्चिम वाले महात्माओं की कृपा से उस समय तंबाकू भारतवर्ष में आ चुकी थी।

ज़ेबउन्निसा ने कहा—"सब सच सच कहोगे ?"

मुबारक ने हाथ बांधे हुए कहा—"जो कुछ इर्शाद होगा, उस में ग़लत हर्गिज़ न कहूंगा।"

ज़ेब०—"तुम ने दरिया से शादी की है ?"

मुबा०—"जब मैं अपने वतन में था, तब की थी।"

ज़ेब०—"इसीलिये आप राहे मेहर्बानी मेरे साथ निकाह करना चाहते थे ?"

मुबा०—" बहुत दिन हुए, मैं तो उसे तिलाक़ देकर छोड़ चुका हूं।"

ज़ेब—" क्यों तिलाक़ दी ?"

मुबा०—" वह खफ्त-उल-हवास है, इस बात को हज़रत ने भी जुरूर समझा होगा।"

ज़ेब०—" मुझे तो वह वहशी हर्गिज़ नहीं मालूम देती।"

मुबा०—" वह अपना काम निकालने के लिये हुजूर के ख़िदमत में हाज़िर होती है। चुनांचे जुरूरत के वक्त मैंने भी उसे कभी वहशी की हालत में नहीं पाया। मगर दूसरे मौक़े पर वह जुरूर पागल हो जाती है। हुजूर किसी दिन बिला वजह उसे बुला कर मुलाहिज़ा फर्माएं।"

ज़ेब०—" तुम उसे भेज दे सकते हो ? उस से कहना कि मुझे थोड़े से उम्दः सुरमे की जुरूरत है।"

मुबा०—" मैं कल शुबह यहां से किसी दूर के शहर को कुछ दिनों के वास्ते जाऊंगा।"

ज़ेब०—" दूर के शहर को जाओगे ? क्या ! इस बारे की तो तुम ने कोई भी बात मुझ से नहीं कही ?"

मुबा०—" आज उसी बात के अर्ज़ करने का इरादा था।"

ज़ेब०—" कहां जाओगे ?"

मुबा०—"राजपूताने में रूपनगर नाम का एक गढ़ है, वहां के राव साहब की लड़की को बेगम बनाने का

बादशाह आलम ने शौक़ फ़र्माया है। कल उसी के लाने के लिये रूपनगर की ओर फ़ौज़ कूच करेगी। मुझे भी फ़ौज़ के हमराह जाना पड़ेगा।"

ज़ेब०—"अच्छा! उसी बारे में मुझे भी कुछ कहना है। मगर पेश्तर उस के एक और बात का जवाब दो। तुम गनेश नजूमी के पास अपनी क़िस्मत की जांच कराने गए थे?"

मुबा०—"गया था।"

ज़ेब०—"क्यों गए थे?"

मुबा०—"सभी लोग जाते हैं, इसी लिहाज़ से मैं भी गया; सिवा इस के और क्या कहूं? मगर अलावे इस के और भी वजह थी। और वह यह थी कि खुद दरिया ही मुझे ज़बर्दस्ती खैंच कर वहां पर ले गई थी।"

ज़ेब०—"हूं!"

यों 'हुंकारा' भरकर कुछ देर तक वह फूलों के गुच्छों के साथ खिलवाड़ करती रही, फिर बोली,—

"तुम क्यों गए?"

उस पर मुबारक ने उस दिन की सारी बात ज्यों की त्यों कह सुनाई, जिसे सुनकर ज़ेबउन्निसा ने पूछा,—"नजूमी ने क्या कहा था कि तुम शाहज़ादी के साथ शादी करो; ऐसा करने से तुम्हारी तरक्की होगी?"

मुबा०—"हिन्दू लोग शाहज़ादी नहीं कहते। इस लिये उस नजूमी ने 'राजपुत्री' कहा था।"

ज़ेब०—"शाहज़ादी क्या राजपुत्री नहीं हैं ?"

मुबा०—"क्यों नहीं, हुज़ूर!"

ज़ेब०—"तो क्या इसी गरज़ से उस दिन तुमने शादी की बात छेड़ी थी ?"

मुबा०—"मैंने फ़क़त नेक-नीयती के खयाल से वह बात कही थी। हुज़ूर को याद होगा कि मैं किस्मत दिखलाने के बहुत पहिले से इस अम्र की अर्ज़ करता आता हूं।"

ज़ेब०—"ए! क्या? मुझे तो कुछ भी याद नहीं आता? बहरकैफ़, इन बातों से कुछ मतलब नहीं है। और तुम से जो इतनी बातें पूछीं, इस से तुम गुस्सा न होना। क्योंकि तुम्हारी खफ़गी से मुझे निहायत रंज होता है। तुम मेरे दिलवर हो,—तुम को जितनी देर तक देखा करती हूं, उतनी देर तक मैं आसूदः रहती हूं। आओ, पलंग पर आकर बैठ जाओ, मैं तुम्हें अतर लगाऊं।"

इतना कह कर और मुबारक को पलंग पर अपने बगल में बैठाकर वह उसे अपने हाथ से अतर लगाने लगी। और फिर बोली,—"अब उसी रूपनगर की बात कहूंगी। नहीं मालूम होता कि रूपनगर वाली का वालिद उसे आने देगा, या नहीं। अगर न आने दे तो ज़बर्दस्ती छीन लाना।"

मुबारक ने कहा—"ऐसा हुक्म तो बादशाह आलम के हुज़ूर में हम लोगों ने नहीं पाया!"

ज़ेब०—"इस बारे में अगर ज़रूरत हो तो तुम मुझी को बादशाह समझ लो ! सोचो ! अगर बादशाह की ऐसी मनशा न होती तो फ़ौज़ क्यों भेजी जाती ?"

मुबा०—"राह की आफ़तों को दूर करने के वास्ते।"

ज़ेब०—"आलमगीर बादशाह की फ़ौज़ जिस काम के लिये जाय, उस काम में वह कभी नाकामयाब होकर लौट आएगी ? चुनांचे तुम लोग जिस तरह हो सके रूपनगर वाली को ले आना। अगर इस पर बादशाह नाखुश होंगे तो मैं हूं कि नहीं !"

मुबा०-"मेरे हक़ में हुज़ूर का हुक्म ही काफ़ी है। मगर हज़रत की ऐसी ख्वाहिश क्यों है, अगर मालूम हो जाय, तो मेरे बाज़ुओं में दूनी ताक़त हो जाय।"

इस पर ज़ेबउन्निसा ने कहा,-"मैं खुदबखुद वह बात कहाही चाहती थी, खैर-इस रूपनगर वाली की तलबी फ़कत मेरी ही हिकमत के बायस से हुई है।"

मुबा०-"हज़रत का खास मतलब क्या है ?"

ज़ेब०—"यही कि उदयपुरी की खूबसूरती की तारीफ़ अब मुझ से नहीं सही जाती। मैंने सुना है कि रूपनगर वाली निहायत ही खूबसूरत है। अगर यह सच हो तो उदयपुरी के एवज़ में वही बादशाह के ऊपर अपनी हुकूमत कायम करेगी। इसलिये अगर

यह बात वह जान जायगी कि इन्हीं ने मुझे यहां बुलाया है तो इस एहसान से हमेशः वह मेरी मुट्ठी में रहेगी। ऐसा होने से मेरे दौर दौरे में जो एक आध कांटा है, वह दूर हो जायगा। चुनांचे तुम जाते हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। अगर देखना कि वह उदयपुरी के बनिस्बत ज्यादः हसीन--"

मुबा०-"मैंने हजरत बेगम साहिबा (उदयपुरी) को कभी देखा नहीं है"।

ज़ेब—"अगर देखना चाहो तो दिखला सकती हूं!-इसी परदे की आड़ में तुम्हें छिपना पड़ेगा।"

मुबा०, "छिः छिः !!!"

इस पर ज़ेब उन्निसा हंस पड़ी और बोली,- "दिल्ली में तुम सरीखे कितने उल्लू के पट्ठे हैं?„ खैर जाने दो-और जो मैं कहती हूं, उसे ग़ौर से सुनो! अगर उदयपुरी को देखना नापसंद करते हो, तो मैं उस की तस्वीर तुम को दिखलाती हूं। मगर रूपनगर वाली को ज़ुरूर अपनी आंखों से देखलेना। अगर उसे उदयपुरी के बनिस्वत ज्यादः हसीन देखना तो यह बात उस के ज़ेहननशीन कर देना कि मेरी ही मेहर्बानी से वह बादशाह की बेग़म बनाई जाती है। और अगर देखो कि वह ऐसी खूबसूरत नहीं है तो—"

इतना कहकर वह सोचने लगी, और मुबारक ने पूछा,-

"अगर देखूंगा कि वह काबिल पसंद नहीं है तो क्या करूंगा ?"

ज़ेब०—"तब, सुनो—तुम शादी को निहायत अज़ीज़ समझते हो, इस वास्ते खुद उस के साथ निकाह कर लेना। और बादशाह जो इज़ाज़त देंगे वह मैं करूंगी।"

मुबा०—"तौवः तौवः या इलाही ! जनाब ! बेगम साहिबा ! इस नाचीज़ के ऊपर हुजूर की ज़रा भी मुहब्बत नहीं है ?"

ज़ेब०—"शाहज़ादियों के पास मुहब्बत कैसी ?"

मुबा०—"तो फिर अल्लाह ने शाहज़ादियों को किस गरज़ से बनाया है ?"

ज़ेब०—"ऐशी वो आराम करने के वास्ते। मुहब्बत में सरासर ज़रर और तकलीफ़ें भरी हुई हैं।"

मुबारक ने इस से अधिक सुनना न चाहा, इस लिये इस बात के दबाने के मिस से कहा—"अच्छा, जो बादशाह की बेगम होनेवाली हैं, उन्हें मैं क्योंकर देख सकूंगा ?"

ज़ेब०—"किसी हिक्मत से...."

मुबा०—"अगर बादशाह सलामत यह बात जान जायंगे तो क्या करेंगे ?"

ज़ेब०—"इस बात का मेरा ज़िम्मा ! इस की कसूरवार मैं बनूंगी।"

मुबा०--"आप जो कुछ फ़र्माती हैं, मैं वही करूंगा, मगर इस ग़मज़दे को ज़रा प्यार करना चाहिये।

ज़ेब०—"मैंने क्या यह बात नहीं कही है कि तुम मेरे दिलोजान से बढ़ कर प्यारे हो!"

मुबा०—"क्या बराहे मुहब्बत आप ने ऐसा कल्मा दिल से फ़र्माया है?"

ज़ेब०—"यह भी कह चुकी हूं कि मुहब्बताना बर्त्ताव ग़रीब दुखिया लोगों की फ़क़त ग़मगीनी ही है, शाहज़ादियां वैसा सदमा बर्दाश्त नहीं कर सकतीं?"

यह सुन, कलेजा मसोस कर और रुखसत हो कर मुबारक चला गया।

तीसरा खंड ।

पहिला परिच्छेद ।

बगुला और राजहंसी की कहानी ।

निर्मल धीरे धीरे जाकर राजकुमारी के पास बैठ गई। उस ने देखा कि राजकुमारी अकेली बैठी हुई रो रही है, उस दिन जो चित्र खरीदे गए थे, उस में का एक चित्र उस के हाथ में है। निर्मल को देखते ही चंचलकुमारी ने चित्र को उलटकर रख दिया, पर वह किस का चित्र था इस बात को निर्मल ताड़ गई। उस ने पास बैठ कर कहा,—

"अब उपाय ?"

चंचल०—"उपाय, चाहे जो हो; पर मैं कदापि मोगल की दासी न होऊंगी।"

निर्मल०—"तुम यह नहीं चाहतीं, सो तो मैं जानती हूं, पर राजा की क्या सामर्थ्य है कि आलमगीर बादशाह की आज्ञा को टाल सकें? अब इस में कोई उपाय नहीं है, सखी ! इसलिये तुम्हें यह बात अवश्य मान लेनी चाहिये। और इस बात को मान लेना तो बड़े भाग्य की बात है। देखो,—योधपुर, अंबर, और दूसरे दूसरे राजा, बादशाह, नव्वाब, उमराव, और सूबा आदि

में से इस पृथ्वी पर ऐसा बड़प्पन वाला कौन है, जिस की कन्या, दिल्ली के तख़्त पर बैठने की अभिलाषा न रखती हो इस लिये, सखी, भारतेश्वरी होने से तुम क्यों इतना हिचकती हौ ?"

इस पर चंचल ने क्रोध से कहा,—"तू यहां से उठ जा !"

निर्मल ने देखा कि "इस चाल से कुछ भी न होगा, तब और किसी चाल से राजकुमारी की कुछ भलाई मुझ से हो सकती है या नहीं," इसी बात को वह ढूंढ़ने लगी, और कुछ सोचविचार कर बोली,—

"तुम मान लो कि मैं उठ गई। पर मैं जिस के अन्न से पल रही हूं,—उस की भलाई की ओर भी मुझे देखना चाहिये,—देखो ! यदि तुम दिल्ली न जाओगी तो तुम्हारे पिता की क्या दशा होगी ? इस बात को तुम ने एक वार भी सोचा है ?"

चंचल०—"सोच चुकी हूं। यदि मैं दिल्ली न जाऊंगी तो मेरे पिता के धड़ पर सिर न रहेगा और रूपनगर गढ़ की एक ईंट भी साबूत न रहने पावैगी। इसे सोच चुकी हूं, इस लिये पिता की हत्या न करूंगी। बादशाही फ़ौज के आते ही मैं उस के साथ दिल्ली चलूंगी, इस का पूरा मन्सूबा बांध चुकी हूं।"

यह सुन कर निर्मल प्रसन्न हुई और बोली,—

"मैं भी यही सलाह देने आई थी।"

यह सुन फिर राजकुमारी ने भौवें तानीं और कहा,—"तैंने क्या समझ रक्खा है कि मैं दिल्ली जा कर बंदरमुहें मुसलमान की सेज पर सोऊंगी? राज-हंसिनी क्या बगुले की सेवा करती है?"

निर्मल ने असल भेद को न समझ कर पूछा,—"तो फिर क्या करोगी?"

इस पर चंचलकुमारी ने अपने हाथ की एक अंगूठी दिखला कर कहा,—"दिल्ली के पथ में विष खाऊंगी।"

निर्मल यह जानती थी कि इस अंगूठी में विष है। उस ने कहा—"क्या और कोई उपाय नहीं है?"

चंचल०—"और कौन सा उपाय है, सखी! आज दिन कौन ऐसा बीर धरती पर है, जो मुझे उबार कर दिल्लीश्वर के साथ बैर करेगा? राजपूताने के सभी कुलांगार तो मोगलों के गुलाम हो रहे हैं—अब संग्राम सिंह या प्रताप सिंह कहां हैं?"

निर्मल०—क्या कह रही हो, राजकुमारी! संग्राम सिंह या प्रताप सिंह होते तो वे तुम्हारे लिये सर्ब्बस खो कर दिल्ली के बादशाह के साथ टंटा क्यों बिसाहते? दूसरे के लिये बैठे बिठाए कौन अपना सर्बस बिगाड़ता है? यदि संग्राम सिंह या प्रताप सिंह नहीं हैं तो क्या हुआ, राजसिंह तो हैं—पर वे तुम्हारे लिये अपना सर्बस क्यों बिगाड़ने लगें? तिस पर भी तुम मारवाड़

के घराने में हो !"

चंचल०—"तू यह क्या कह गई ? भुजाओं में बल रहते कौन राजपूत शरणागत की रक्षा नहीं करता ? मैं यही बात सोचती थी, निर्मल ! कि इस विपद से बचने के लिये मैं उन्हीं संग्राम सिंह और प्रताप सिंह के कुलभूषण महाराणा राज सिंह का सरन लूं। बता तो सही, क्या वे मेरी रक्षा न करेंगे ?" इतना कहते कहते उस ने उलटी हुई तस्वीर को सीधा कर दी। तब निर्मल ने देखा कि वह राज सिंह का चित्र है। उसे देखती हुई राजकुमारी फिर कहने लगी—"देख, सखी ! इस राजा की कांति को देख कर क्या तुझे इस बात का विश्वास नहीं होता कि ये अगति के गति और अनाथ के नाथ हैं ? मैं यदि इन की सरन लूं तो क्या ये मेरी रक्षा न करेंगे ?

निर्मलकुमारी बड़ी ही पोढ़ी समझवाली युवती और चंचलकुमारी की सगी बहिन स भी बढ़ कर थी। उस ने बहुत कुछ सोचा, और अंत में चंचल की ओर आंख गड़ा कर पूछा—

"अच्छा राजकुमारी ! जो वीर तुम्हें इस आपदा से उबारेगा, उसे तुम क्या दोगी ?"

निर्मल की चुहल चंचल समझ गई और गिड़गिड़ाई हुई, पर धीरी, आवाज़ से बोली—

"मैं क्या देने लायक हूं, सखी ! मेरे पास देने के लिये क्या रक्खा है ? मैं तो अबला ठहरी !"

सातवां परिच्छेद।

निर्मल०—"तुम अपने को आप दे डालना !"

चंचल सकुच कर बोली—"दूर हो!"

निर्मल०-"ठहरो ठहरो, अभी न दुर्दुराओ! देखो-राजाओं के घराने में ऐसा होता आया है; इस लिये यदि तुम रुक्मिणी बन सको तो श्री कृष्ण अवश्य ही आ कर शिशुपाल के हाथ से तुम्हारा उद्धार करेंगे।"

यह सुन कर चंचलकुमारी ने अपना सिर नीचा कर लिया। अहा! जैसे सूर्योदय के समय मेघमाला के ऊपर प्रकाश की तरंगें एक पर एक आ कर एक नए सौंदर्य को उत्पन्न करती हैं, उसी भांति चंचलकुमारी के मुख पर भी पल पल पर आनंद, लज्जा, और आशा की लहराती हुई तरंगों की सुन्दरता नृत्य करने लगी। उस ने कहा—"मैंने ऐसी कौन इसी तपस्या की है, जो उन्हें पाऊंगी? मैं जो बिकना चाहूं तो क्या वे खरीदेंगे?"

निर्मल०—"इस बात के बिचार करनेवाले वेही हैं, हम लोग नहीं। सुना है कि राज सिंह के बाहु में बल है, क्या उन के पास कोई दूत नहीं भेजा जा सकता? चुपचाप, जिस में कोई न जाने क्या ऐसा दूत उन के पास नहीं जा सकता?"

चंचल ने सोच कर कहा—" तुम मेरे गुरुजी को बुलवा भेजो। सिवा उन के और मुझे कौन इतना चाहता है जो ऐसे जोखिम के काम को हाथ में लेगा? पर उन्हें सब बातें समझा बुझाकर तब मेरे पास लाना, क्योंकि लज्जा के मारे मैं मुंह फोड़ कर उन से सारी बातें नहीं कह सकूंगी"।

ठीक इसी समय कई सखियों ने आकर कहा कि "एक मोतीवाली मोती बेचने आई है" इस पर राजकुमारी ने कहा—"इस समय मुझे मोती खरीदने की छुट्टी नहीं है, उसे फेर दो"।

एक सखी ने कहा—"हम सभों ने उसे बहुत फेरना चाहा, पर वह किसी तरह भी ड्योढ़ी पर से नहीं टलती, जान पड़ता है कि उस का कुछ गहरा मतलब है।" तब लाचार हो कर चंचलकुमारी ने उसे बुलाया।

उस ने आकर बहुतेरे झूठे मोती दिखलाए। इस पर राजकुमारी ने चिढ़ कर कहा—

"बस, इन्हीं झूठी मोतियों ही के दिखलाने के लिये तू ने इतना हठ किया था?"

मोतीवाली ने कहा—"नहीं। मेरे पास और भी दिखलाने लायक जिन्स हैं, पर उसे जब तक आप अकेली न हों, तब तक नहीं दिखला सकती।"

चंचलकुमारी ने कहा—"मैं अकेली तेरे साथ माथा-पच्ची न कर सकूंगी, इस लिये अकेले में भी एक सखी

मेरे साथ जरूर रहेगी। अच्छा, निर्मल रहे, और सब जनी यहां से हट जाओ"।

इतना सुनतेही सब सखियां बाहर चली गईं। तब देवी ने—वह मोतीवाली देवी ही थी—योधपुरी बेगम का पंजा दिखलाया। उसे देख और पढ़ कर चंचलकुमारी ने पूछा—"यह पंजा तू ने कहां पाया?"

देवी—योधपुरी बेगम ने मुझे दिया है।

चंचल—तुम उन की कौन हो?

देवी—मैं उन की दासी हूं।

चंचल—तो इस पंजे को लेकर यहां किस लिये आई हो?

इस पर देवी ने सब बातें अच्छी तरह से समझा कर कह सुनाईं। जिन्हें सुन कर निर्मल और चंचल एक दूसरी का मुंह देखने लगीं। फिर चंचल ने देवी को इनाम देकर बिदा किया।

देवी जाते समय योधपुरी बेगम के पंजे को न ले गई, बरन जानबूझ कर वहीं छोड़ गई। उस ने सोचा था कि—"मैं इसे जो कहीं गिरा दूंगी तो न जाने कौन इसे उठा लेगा तो योधपुरी बेगम पर आफत आवेगी।" यही सोच समझ कर वह चंचलकुमारी के पास उस पंजे को छोड़ती गई। उस के जाने पर चंचलकुमारी ने कहा—

"निर्मल! उस बुढ़िया को पुकार! वह पंजे को छोड़ती गई है।"

निर्मल—वह इसे भूल कर नहीं छोड़ गई है, वरन मेरे जान तो जानबूझ कर यहीं रख गई है।

चंचल—मैं इसे ले कर क्या करूंगी?

निर्मल—अभी रख छोड़ो, किसी न किसी समय योधपुरी बेग़म के पास भेज देना।

चंचल—अच्छा, ऐसाही सही; बेग़म की बातों से तो मेरा हौसला दूना हो गया। हम दोनों लड़कियां न जानें क्या सलाह करती थीं पर—वह सलाह ठीक थी या नहीं—पूरी होगी या नहीं,-इसे नहीं सोच सकती थीं; पर अब बेग़म की सलाह से साहस हुआ। बस राजसिंह की सरन लेनाही अच्छा है।

निर्मल—यह बात तो मैं बहुत पहलेही से जानती हूं।

यह कह कर वह मुसकुराने लगी। चंचल भी सिर नीचा कर के मुसकुराई।

फिर निर्मल उठ गई, पर उस के मन में कुछ भी ढाढ़स न हुआ। वह रोती हुई वहां से बाहर हुई।



दूसरा परिच्छेद ।

अनंत मिश्र ।

अनंत मिश्र चंचलकुमारी के पुरखाओं के कुल-पुरोहित थे। वे कन्या की भांति उसे प्यार करते और बड़े भारी पंडित भी थे। सभी उन पर भक्ति करते थे। चंचल के नाम से बुलवाते ही वे अंतःपुर में आए—क्योंकि कुलपुरोहित के लिये कुछ रोकटोक न थी! अंतःपुर में आते ही उन्हें बीचही में निर्मल ने घेरा और सारी बात उन्हें समझाबुझा कर तब छोड़ा।

विभूति और चंदन को लगाए, चौड़े लिलार और लंबे शरीरवाले, रुद्राक्ष की माला पहिरे, और हंसते हुए ब्राह्मणदेवता चंचलकुमारी के पास आ कर खड़े हुए। निर्मल के सामने चंचल रोई थी, पर और किसी के सामने वह रोनेवाली नहीं थी। मिश्र जी ने देखा कि वह स्थिर हुई बैठी है; फिर उन्हों ने कहा–

"बेटी, लक्ष्मी! मुझे क्यों बुलाया है?"

चंचल—अपने बचाने के लिये। क्योंकि आप को छोड़ कर मेरा और कोई ऐसा हित नहीं है जो इस समय मुझे इस घोर बिपद से बचावे।

मिश्र जी ने हंस कर कहा–"जाना, जाना; रुक्मिणी का विवाह है, इस लिये बूढ़े पुरोहित को द्वारिका जाना पड़ेगा। अच्छा, देख तो बेटी! लक्ष्मी

के भंडार में कुछ जमापूंजी है ? क्योंकि खर्चबर्च पातेही मैं उदयपुर जाऊंगा।"

यह सुनते ही चंचल ने एक ज़रदोज़ी की थैली निकाल कर उन के हाथ दी, उस में अशर्फ़ियां भरी थीं। पर उन्हों ने उस में से केवल पांच अशर्फ़ी ले कर बाकी उसे फेर दिया और कहा—"बेटी ! राहबाट में अन्नही खाया जाता है, कुछ अशर्फ़ी नहीं खाई जाती, इस लिये इतनी ही बहुत है। अच्छा और एक बात कहूं, कर सकेगी ?"

चंचल ने कहा—"यदि आप मुझे दहकती आग में भी कूदने को कहेंगे, तो मैं इस आफ़त से बचने के लिये वह भी कर सकूंगी। इस लिये आज्ञा करिये, कौन सी बात है ?"

मिश्र—राणा राज सिंह को एक पत्र लिख दे सकती है ?

चंचल ने सोच कर कहा—"एक तो मैं लड़की—दूसरे कुलवाला; फिर बिना जानेपहिचाने उन्हें किस तरह चिट्ठी लिखूं ? पर मैं तो उन से भीख चाहती हूं, इस में लज्जा ही के टिकने की ठौर कहां है ? इस लिये लिखूंगी।"

मिश्र—मैं लिखवा दूं, या तू आपही लिखेगी ?

चंचल—अच्छा, आप कहते चलिए।

निर्मल भी वहां आ कर खड़ी थी, उस ने कहा—

"ऐसा नहीं हो सकता, यह ब्राह्मण की बुद्धि का काम नहीं है—बरन स्त्री की बुद्धि का काम है; इस लिये चिट्ठी हम लोग लिखेंगी, तब तक आप तैय्यार हो कर आइए।"

यह सुन कर मिश्र जी चले गए, पर वे घर न गए; बरन राजा विक्रम सिंह के पास पहुंचे, और बोले—

"मैं देश घूमने को जाता हूं, सो महाराज को आशीर्वाद देने आया हूं।" "किस लिये और कहां जाने का विचार है।" इस बात को राजा ने जानना चाहा, पर ब्राह्मणदेवता ने कुछ साफ़ साफ़ हाल न बतलाया। केवल उदयपुर तक जाने की इच्छा प्रगट की। और राणा से भेंट करने के लिये एक पत्र लिख देने की भी प्रार्थना की। राजा ने भी राणा के नाम पत्र लिख दिया।

तब वे राजा से बिदा हो और पत्र ले कर फिर चंचलकुमारी के पास आए। उतनी देर में चंचल और निर्मल दोनों ने अपनी दोनों बुद्धि को इकठ्ठी कर के एक पत्र लिख कर तैय्यार कर रक्खा था। पत्र पूरे होने पर राजकुमारी ने एक पेटी में से एक बहुत ही सुहावना मोतियों का कंगन निकाल कर और उसे ब्राह्मण देवता के हाथ में दे कर कहा—"राणा जब पत्र पढ़लें, तब मेरे हो कर आप उन के हाथ में यही राखी बांध दीजिएगा। क्योंकि राजपूतकुल के जो

चूड़ामणि हैं, वे राजपूतबाला की भेजी हुई राखी को कभी अस्वीकार नहीं करेंगे।"

मिश्र जी ने इसे स्वीकार किया, तब राजकुमारी ने प्रणाम कर के उन्हें बिदा किया।

तीसरा परिच्छेद।

मिश्र जी का नारायण स्मरण।

दूसरे दिन कपड़े लत्ते, छाता, लाठी और चंदन का मुट्ठा आदि बहुत प्रयोजनीय वस्तु और एक नौकर साथ लेकर मिश्र जी घरवाली से बिदा हो उदयपुर की ओर चले। जाने के समय घरवाली ने घोलमट्ठा करके उन्हें घेरा कि "क्यों जाते हो?" इस पर उन्हों ने कहा—"राणा से कुछ जागीर मिलेगा"। बस इतना सुनतेही मिसरानी शांत हो गई, और फिर विरह की आग उसे न जला सकी। धन मिलने की आशारूपी शीतल जल की धारा से भयावनी विरह की आग दो चार वार "फों-फां" करके बुझ गई। और मिश्र जी ने नौकर के साथ यात्रा की। यदि वे चाहते तो अपने साथ कई आदमी ले जा सकते थे, पर 'जादे भीड़भाड़ से लोग काना फूसी करने लगेंगे' इस लिये केवल एक ही आदमी साथ ले गए।

मार्ग बहुत ही बीहड़ था, तिस पर पहाड़ी पगदंडी—

जहां बहुत दूर तक टिकान नहीं। एकही समय भोजन करनेवाले मिश्र जी जिस दिन जहां टिकने की जगह पाते, उस दिन वहीं आतिथ्य ग्रहण करते। वे दिन की बेला रास्ता चलते थे क्योंकि मार्ग में डाकुओं का बड़ा भय था, और उन के पास मोती का कंगन भी था–इस लिये अकेले वे कभी रास्ता न चलते, जब संगी साथी जुटते, तब वे भी चलते थे। और जब संगियों का साथ छूट जाता, तभी वे टिकान खोजने लगते। एक दिन रात को एक देवमन्दिर के अतिथि बन कर दूसरे दिन सबेरे चलने के समय मिश्र जी को संगी न खोजना पड़ा। उस दिन चार बनिये भी उसी मन्दिर की अतिथिशाला में आकर टिके थे, और सबेरे उठ कर उन सभों ने पहाड़ी पगदंडी पकड़ी। मिश्र जी को देख कर उन सभों ने पूछा—"तुम कहां जाओगे?" इस पर उन्हों ने कहा—"उदयपुर।" बनियों ने कहा—"हम लोग भी वहां जायंगे, अच्छा हुआ, चलो साथही साथ चलें। यह सुन और प्रसन्न हो कर मिश्र जी उन के संग लगे। और बोले—"उदयपुर अब कितनी दूर है?" बनियों ने कहा—"नजदीक है, आज सांझ तक वहां पहुंच सकेंगे। यह सभी प्रदेश राणा के ही राज्य में हैं"।

यों ही बात चीत करते करते वे सब चले जाते थे। पहाड़ी रास्ता बड़ा ही बीहड़ था, कहीं बड़े बड़े ऊंचे पहाड़ों की कठिन चढ़ाई और कहीं वैसी ही

बीहड़ उतराई; तिस पर कोसों तक कहीं बस्ती का नाम तक नहीं। पर यह पेंचीला रास्ता एक प्रकार से कट चुका था और अब समतल भूमि का उतार पास ही था। उस समय वे व्योपारी एक बहुत ही सुहावनी पहाड़तली में पहुंचे। उस के दोना ओर दो छोटे छोटे पहाड़ हरेहरे पेड़ों की हरियाली से सोहते हुए आकाश में सिर उठाए खड़े थे। और उन दोनों के बीच में होती हुई, एक छोटी सी नदी अपने नीले कांच सरीखे फेनवाले जल से पहाड़तली को धोती हुई बनास की ओर गई थी। उसी के किनारे किनारे मनुष्य के चलने की पगदंडी चली गई थी। वहां पहुंचने पर फिर किसी ओर से भी कोई बटोही को नहीं देख सकता, हां केवल उन्हीं अगल बगल वाले पहाड़ पर से देख सकता है।

उस सूनसान जगह में पहुंच कर एक बनिक ने ब्राह्मण देवता से पूछा,—"तुम्हारे पास कितने रुपये पैसे हैं?"

इतना सुनते ही मिश्रजी चिहुंके और डर गए। उन्हों ने सोचा कि शायद यहां पर डांकुओं का अधिक भय है, इसी लिये सावधान करने के लिये ये लोग पूछते हैं।

निबल का अवलंब झूठ है, सोही मिश्रजी ने

कहा,—"मैं कंगाल ब्राह्मण हूं, भला मेरे पास क्या धरा है ?"

एक बनियां बोला—"जो कुछ हो, सो निकाल कर हम लोगों को दो, नहीं तो यहां पर उसे बचा न सकोगे।"

यह सुन मिश्र जी आगा पीछा करने लगे, एक बार उन्हों ने सोचा कि हिफ़ाज़त के लिये जड़ाऊ कंगन बनिकों के हवाले करें फिर बिचारा कि ये बिना जाने पहिचाने हैं, तो फिर इन का भरोसा क्या ? यही सब सोच और आगा पीछा कर के उन्हों ने पहिले ही की भांति कहा,—

"मैं कंगला हूं, मेरे पास क्या रक्खा है ?"

बिपत के समय जो आगा पीछा करता है, वही मारा जाता है। ब्राह्मण को इधर उधर करते देख भेस बदले हुए बनिकों ने समझ लिया कि,-जरूर ब्राह्मण के पास कोई गहरी रकम है। बस चट एक ने ब्राह्मण की गर्दन पकड़कर उन्हें दे मारा और उनकी छाती पर चढ़ कर उन का मुहं बंद कर लिया। यह दशा देख मिश्र जी का टहलुआ धड़ से जिधर मुहं पड़ा उसी ओर प्राण ले कर भागा। उसे भागते किसी ने देखा नहीं। जब मुहं बंद होने से मिश्र जी बोल न सके तो नारायण को स्मरण करने लगे। तबतक एक दूसरा उन की पोटली ले, उसे खोल कर देखने

लगा। उस के भीतर से चंचलकुमारी का दिया हुआ कंगन, दो पत्र और अशर्फ़ियां निकल पड़ीं। डांकू ने उसे लेकर अपने साथी से कहा,-"बस ब्रह्महत्या करने का कुछ काम नहीं है, इस के पास जो कुछ था, सो पाया, अब इसे छोड़ दो।"

और एक बोला—"छोड़ना न चाहिये। क्योंकि छुटने पर अभी यह हल्ला मचावेगा। आजकल राणा राजसिंह का बड़ा उपद्रव है—उन के शासन में अब बीर लोग रसोई कर के भी नहीं खाने पाते। इसलिये जिस में यह हल्ला न मचा सके, इस पेड़ में बांधते चलो।"

इस पर सभों ने मिश्र जी के हाथ, पैर और मुहं उन्हीं की धोती से कसकर बांध पहाड़तली के एक ठूंठे पेड़ में जकड़ दिया। फिर चंचलकुमारी के दियेहुये जड़ाऊ कंगन और दोनों पत्र लेकर उसी सकरी नदी के तीरवाली पगदंडी को धर कर पहाड़ की ओट में छिप गए। ठीक उसी समय पहाड़ की चोटी पर खड़े हुये एक घोरसवार ने उन डांकुओं को देखा, पर वे सब भागने में लगे थे, इस लिये सवार को न देख सके।

डाकू लोग पहाड़ी नदी के तीरवाले जंगल में घुस कर बड़े बीहड़ और आदमी के आने जाने से रहित रास्ते से चलने लगे। इसी तरह कुछ दूर जाकर एक सूनसान गुफा में वे सब घुसे।

गुफा के भीतर खाने का सरजाम, खटिया बिछौने, रसोई बनाने की सामग्री आदि सभी कुछ था। उस के देखने से जान पड़ता था कि कभी २ डांकू लोग इसी गुहा में लुक कर रहा भी करते हैं। यहां तक कि पानी से भरा घड़ा भी वहां रक्खा था।

डांकूलोग वहां पहुंच, तंबाकू भर कर पीने लगे। और उन में से एक आदमी रसोई बनाने की तदबीर करने लगा। एक बोला,—

"मानिकलाल! रसोई पीछे होगी, पहिले माल का निबटेरा करो कि इस का क्या होगा?"

मानिकलाल ने कहा—"अच्छा पहिले माल का ही निबटेरा हो!"

तब तो अशर्फियों को काट कर चार भाग किया गया, और एक एक ने एक एक भाग ले लिया। पर जड़ाऊ कंगन का भाग तो बिना उस के बिके नहीं हो सकता था, इस लिये वह उस समय नहीं बांटा गया। फिर पत्र का क्या किया जाय, इस पर विचार होने लगा। सर्दार ने कहा, "कागज़ ले कर क्या होगा? उसे जला दो।" यह कह कर उस ने वे दोनों पत्र फूंक देने के लिये मानिक लाल को दिए।

मानिक लाल कुछ २ लिखना पढ़ना जानता था, वह उन दोनों पत्रों को आदि से अंत तक पढ़ कर प्रसन्न हुआ और कहने लगा—" इस पत्र को फूंकना

न चाहिए, इस से तो खासा रोज़गार हो सकता है।"

"क्या ! क्या ! " कहते हुए बाकी तीनों जने चिल्ला उठे । तब मानिक लाल ने चंचलकुमारी के पत्र का ब्यवरा उन सभों को समझाया, जिसे सुन कर सब बहुत ही प्रसन्न हुए।

मानिकलाल ने कहा—"देखो, यह पत्र राणा को दे कर कुछ इनाम लेंगे।"

सर्दार ने कहा—"पागल ! राणा जब पूछेंगे कि तुम ने यह पत्र कहां से पाया, तब क्या जबाब दोगे ? तब क्या यों कहोगे कि राहजनी कर के यह लूट लाए हैं? तब राणा से इनाम के बदले फांसी पाओगे। इस लिये यह सलाह ठीक नहीं है ; जो ऐसा ही करना है, तो यह पत्र ले जा कर बादशाह को देंगे-क्योंकि बादशाह के पास ऐसी ख़बर पहुंचाने पर बहुत कुछ इनाम मिला करता है, यह बात हम जानते हैं। और इस से—"

वह (सर्दार) अपनी बात भी पूरी नहीं करने पाया था, उस की बात मुंह की मुंह में हीं रह गई कि देखते देखते उस का सिर धड़ से अलग हो कर भूमि में छटक गया।

———

चौथा परिच्छेद।

मानिकलाल।

घोड़सवार ने पहाड़ की चोटी पर से देखा कि चार जने एक आदमी को पेड़ से बांध कर चले गए। इस के पहिले क्या हुआ था, सो उस ने नहीं देखा था, क्योंकि तब तक वह वहां पर पहुंचा नहीं था। उन्हें जाते देख चुप चाप वह सवार देखने लगा कि वे सब किधर जाते हैं। पर जब वे सब नदी के मोड़ से घूम कर पहाड़ की आड़ में छिप गए, तब सवार घोड़े से उतर पड़ा और फिर घोड़े की पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला कि, "बिजय! यहीं खड़े रहना हम अभी आते हैं, हिनहिनाना मत।" सुनते ही घोड़ा चुप-चाप खड़ा हो गया; और सवार पैदल ही जल्दी जल्दी पहाड़ के नीचे उतरने लगा। पहाड़ बहुत ऊंचा न था, यह बात पहिलेही कह आए हैं।

सवार ने पहिले मिश्र जी के पास आ कर उन का बंधन खोला और पूछा,

"क्या हुआ है, इसे बहुत थोड़े ही में जल्दी कहो।" मिश्र जी ने कहा,—"चार जनों के साथ हम आते थे, उन्हें चीन्हते तो थेही नहीं; रास्ते की जान पहिचान वे सब अपने को व्योपारी कहते थे। पर यहां आकर और हमें पटक झटक कर जो कुछ हमारे पास था, सब ले गए।"

सवार ने पूछा-"वे क्या क्या ले गए हैं ?"

मिश्र जी ने कहा,—"एक मोती का कंगन, कई अशर्फ़ियां और दो पत्र।"

सवार—"अच्छा आप यहीं ठहरे रहिये, वे सब किधर गए हैं, यह हम देख आवें ?"

मिश्र जी ने कहा,—"आप वहां कैसे जायंगे ? वे तो चार जने हैं, और आप अकेले।"

सवार ने कहा,—"देखते नहीं ? हम राजपूत सिपाही हैं ?"

मिश्र जी ने देखा कि "सचमुच यह आदमी लड़ाका है।" उस की कमर में तल्वार और पिस्तौल लटकती थी, और हाथ में बड़ा लंबा बर्छा था। यह देख कर फिर मिश्र जी ने डर के मारे उस से बात-चीत न की।

उस राजपूत ने जिधर से डांकुओं को जाते देखा था, उसी ओर बड़ी सावधानी से उन का पीछा किया। पर बन में आकर फिर उस ने कहीं भी पगदंडी न देखी, और न डांकुओं ही की कोई टोह पाई।

तब वह फिर पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगा। और वहां पहुंच कर इधर उधर देखते देखते उस ने देखा कि बहुत दूर बन के भीतर चार आदमी अपने को छिपाये हुए चले जा रहे हैं।' तब तो वह वहीं पर कुछ देर तक खड़ा खड़ा देखने लगा कि ये सब किधर

जाते हैं। उस ने देखा कि थोड़ी देर में वे सब डांकू एक पहाड़ी तरहटी में पहुंचे और फिर नहीं दिखाई दिए। तब उस राजपूत ने निश्चय किया कि या तो वे सब वहीं बैठ कर सुस्ताते होंगे, पेड़ों की झाड़ से नहीं दिखाई देते; या उसी पहाड़ में कोई गुफा है, जिस में वे सब घुस गए होंगे।

यह सोच कर उस राजपूत ने पेड़ों की चिन्हानी से वहां तक पहुंचने के लिये मार्ग का निश्चय कर लिया। फिर वह चोटी से उतर और बन में घुस कर उन्हीं पेड़ों की चिन्हानी का मार्ग धर कर चलने लगा। इसी प्रकार बड़ी चतुराई से उस ने पहिले के लखे हुए स्थान पर पहुंच कर देखा कि वहां पर पहाड़ में एक गुफा है, जिस के भीतर से आदमियों के बोलचाल की आहट आती है।

यहां तक आ कर वह राजपूत कुछ आगापीछा करने लगा। क्योंकि गुफा के भीतर चार जने थे, और यह अकेला था; ऐसी दशा में गुफा के भीतर घुसना चाहिए, या नहीं? यदि गुहा के द्वार को रोक कर वे चारों इस के साथ लड़ाई करें तो फिर इस के बचने की आस नहीं है। पर यह बात बीर राजपूत के मन में देर तक न ठहर सकी—मौत का डर क्या वस्तु है? मौत के डर से राजपूत क्या किसी काम से पीछे नहीं हटते? पर उस राजपूत का दूसरा सोच यह

था कि गुफा में घुसते ही मेरे हाथ से एक दो जने अवश्य मरेंगे, परन्तु यदि वे डांकू न हों, तो ? तो निरपराध व्यक्ति की हत्या होगी।

यह सोच कर वह राजपूत अपनी दुविधा मिटाने के लिए बहुत ही धीरे धीरे गुहा के द्वार के पास आकर खड़े हो, भीतरवालों की बात कान लगा कर सुनने लगा। उस समय वे सब लूट के माल के हिस्से बखरे लगाने की बातचीत करते थे, जिसे सुनकर राजपूत ने निश्चय किया कि ये डांकू ही हैं। तब तो उस ने गुफा में घुसना ही निश्चय किया।

उस ने धीरे धीरे अपने बछेे को बन में लुकाया। फिर तल्वार खैंच कर दाहिनी मुट्ठी से कस कर पकड़ी और बाएं हाथ में पिस्तौल ली। जिस समय डांकू लोग चंचल कुमारी के पत्र को देख कर दौलत पाने की आशा में मतवाले हो रहे थे, उसी समय वह राजपूत बड़ी सावधानी से पैर रखता हुआ गुफ़ा में घुसा। उस समय डांकुओं का सरदार गुफ़ा के द्वार की ओर पीठ कर के बैठा था, बस राजपूत ने घुसते हीं सर्दार के गले पर ज़ोर से तल्वार मारी। उस के हाथ में इतना बल था, कि एक ही वार में सर्दार का सिर कट कर धरती पर छटक गया।

उसी समय एक दूसरा डांकू जो सर्दार के पास ही बैठा था, उस की ओर घूम कर राजपूत ने उस के खोपड़े पर इतने ज़ोर से लात मारी कि जिस की

चोट से वह बेसुध होकर वहीं लोट गया। इस के पीछे राजपूत ने बचे हुए दोनों डांकुओं की ओर आंख फेर कर देखा कि उन में से एक डांकू गुफ़ा के सिरे पर खड़ा हुआ, उस (राजपूत) के मारने के लिये एक बड़े से पत्थर का ढोंका उठा रहा है। यह देख कर राजपूत ने उस पर पिस्तौल चलाई, जिस की चोट से वह घायल होकर धरती में गिर पड़ा और गिरते ही मर भी गया। और दूसरा या उन चारों में बचा हुआ—मानिकलाल बेढब मामला देख कर गुफा के द्वार से झपट कर बाहर निकला और दम रोक कर भागा। राजपूत ने भी धड़ाके के साथ गुफा से निकल कर उस का पीछा किया। इतने ही में राजपूत ने जो बर्छी बन में छिपा रक्खा था, वह मानिक लाल के पैरों में लगा। बस चट उस ने उस बर्छे को उठा कर दाहिने हाथ से पकड़ा और राजपूत की ओर घूम कर कहा,—"महाराज! मैं आप को चीन्हता हूं; बस कीजिए, नहीं तो इसी बर्छे से घायल करूंगा।"

राजपूत ने हंस कर कहा,—"तुम यदि मुझे उस बर्छे से मार सकते होते तो मैं उसे बाएं हाथ से पकड़ता। पर तुम उसे नहीं चला सकते।—यह देखो!" इतना कहते कहते उस राजपूत ने अपने हाथ की खाली पिस्तौल मानिक लाल के दाहिने हाथ की मुट्ठी पर ज़ोर से खैंच मारी, जिस की कड़ी चोट से उस के हाथ से बर्छी

गिर गया। चट राजपूत ने उस बर्छे को उठा कर मानिक लाल की चुटिया पकड़ी और तल्वार उठा कर उस के सिर काटने को ठहराई।

तब उस ने गिड़गिड़ा कर कहा,—"महाराजाधिराज! मुझे प्राणदान कीजिए—रक्षा करिए—मैं शरणागत हूं।"

यह सुन राजपूत ने उस की चुटिया छोड़ कर अपनी तल्वार झुका ली और कहा, "तू मरने से इतना डरता क्यों है?"

मानिक लाल ने कहा,—"मैं मरने से नहीं डरता, पर मेरी एक सात बरस की लड़की है, उस की मा नहीं है; सिवाय मेरे और उस का कोई नहीं है। मैं सबेरे उसे खिलापिला कर घर से बाहर हुआ हूं, और फिर संझा को जाकर जब मैं उसे खाने को दूंगा, तब वह खायगी। इसलिये महाराज! मैं उसे जीती छोड़ कर नहीं मर सकता। क्योंकि मेरे मरने से वह भी मर जायगी। तो फिर यदि मुझे मारनाही हो तो पहिले उसे मार डालिए।"

यह कह कर वह डांकू रोने लगा, फिर अपने आंसू पोछ कर बोला,—"महाराजाधिराज! मैं आप के चरण छू कर कसम खाता हूं कि अब कभी डकैती न करूंगा और मरते दम तक आप की सेवकाई करूंगा। और यदि मेरी ज़िंदगी रहेगी तो एक न

एक दिन इस अदने टहलुए से भी आप की कोई न कोई भलाई ही होगी।"

राजपूत ने कहा—"तुम हमें चीन्हते हो ?

डांकू बोला—"महाराणा राजसिंह को कौन नहीं पहिचानता ?"

तब राजसिंह ने कहा—"अच्छा, हम तुम्हें जीवन-दान देते हैं, पर तुम ने ब्राह्मण का सर्वस्व लूट लिया, इस पर यदि हम तुम्हें कुछ भी दंड न दें तो राजधर्म से हाथ धोवें !"

इस पर मानिक लाल ने नवनताई से कहा,—महाराजाधिराज ! इस पाप में मैं पहिले ही पहिल लगा हूं, इसलिये दया कर के मेरे लिये किसी छोटे से दंड की आज्ञा दीजिए। अच्छा, मैं खुद आप के सामने हीं अपने ऊपर दंड करता हूं।"

यह कह कर उस ने अपनी कमर में से एक छोटी सी छुरी निकाली, फिर लापर्वाही से वह आप ही आप अपनी तर्जनी अंगुली काटने लगा। पर उस छुरी से मांस तो कटा पर हाड़ न अलग हुआ। तब उस ने एक चट्टान पर अपना हाथ रख और उस कटी उंगली पर उसी छुरी को गड़ा कर उस पर एक पत्थर का ढोंका देमारा जिस से अंगुली कट कर दूर जा छटकी। फिर उस ने कहा,—"महाराज ! इसी दंड को आप सकारिए।"

राज सिंह उस का यह कर्त्तब देख कर बहुत ही

चकराए। उन्हों ने देखा कि यह डांकू ऐसा कठजीव है कि अपनी कटी अंगुली की ओर ताकता तक नहीं। फिर उन्हों ने कहा—

"बस, इतनाही बहुत है। तुम्हारा नाम क्या है?'

डांकू ने कहा—"इस पापी का नाम मानिक लाल सिंह है। यह राजपूतकुल का कलंक है।"

राज सिंह ने कहा—"मानिकलाल! आज से तुम हमारे काम में लगाए गए, अब से तुम घोड़-सवारों में भरती किए गए,इसलिये अपनी लड़की को लेकर उदयपुर आओ। वहां आने पर तुम्हें रहने के लिये भूमि दी जायगी।

तब उस ने महाराणा के चरण की धूल अपने सिर पर चढ़ाई और उन्हें थोड़ी देर वहीं ठहरने के लिये कह कर फिर वह गुफा में घुसा और वहां से लूटे हुए मोती के कंगन, दोनों पत्र और अशर्फी के टुकड़े लाकर उन्हें दिए और कहा—

"महाराज! ब्राह्मण का जो कुछ हमलोग लूट लाए थे, वह आप के श्रीचरणों में मैं अर्पण करता हूं। ये दोनों पत्र आप ही के लिये लिखे गए हैं। इस दास ने जो इन पत्रों को पढ़ लिया है, इस अपराध को आप क्षमा करिएगा।"

राणा ने उन पत्रों को लेकर देखा। उस पर उन्हीं के नाम का सरनामा था। उन्हों ने कहा :—

" मानिक लाल ! पत्र के पढ़ने का यह स्थान नहीं है, मेरे संग आओ, तुमलोग पथ जानते हो, सो मार्ग बतलाओ। "

यह सुनते ही वह आगे आगे मार्ग दिखलाता हुआ चला। राणा ने देखा कि यह डांकू ज़रा भी अपनी कटी अंगुली की ओर नहीं ताकता, या उस बारे में कुछ भी नहीं कहता सुनता—वा एक वार भी उस की पीड़ा से अपना मुंह नहीं बिगाड़ता। यह सब सोचते विचारते वे तुरत ही बन से निकल कर वेग-वती क्षुद्र नदी के किनारे एक सुहावनी जगह में पहुंच गए।

पांचवां परिच्छेद।

चंचल कुमारी का पत्र।

वहां पर मधुर तरंगाघात करती हुई नदी के सुहावने शब्द के साथ मंद मंद पवन चल रही थी, और उस के साथ स्वर लहरी के फैलानेवाले कुञ्ज के पक्षीगण अपना कलरव मिला रहे थे। बनैले फूलों के गुच्छे के गुच्छे खिल खिल कर पहाड़ी वृक्षावली को सुशोभित कर रहे थे। वहां पर रूप उफनाया पड़ता था, शब्द की तरंगें चल रहीं थीं, सुगन्धि मँहमँहा रही थीं, और चित्त प्रकृति के वशीभूत हुआ जाता था।

वहीं पर एक बड़े से शिलाखंड पर बैठ कर राजसिंह दोनों पत्रों के पढ़ने में लवलीन हुए।

पहिले उन्हों ने राजा विक्रम सिंह के पत्र को पढ़ा और पढ़ कर उसे फाड़ कर फेंक दिया। सोचा कि ब्राह्मण को कुछ देने ही से इस पत्र का मतलब पूरा हो जायगा। फिर वे चंचल कुमारी के पत्र को पढ़ने लगे। उस की नकल यह हैः—

"महाराज !

"आप राजपूतकुल के और हिन्दुओं के शिरोमणि हैं। मैं एक बिना जानी पहिचानी हीनमति बालिका हूं—घोर विपद में न पड़ती तो कभी आप को इस पत्र के लिखने का साहस न करती। इसलिये मुझे बहुत ही विपद की मारी समझ कर मेरी इस ढिठाई को क्षमा करिएगा।

"जो इस पत्र को ले जाते हैं, वे मेरे गुरुजी हैं। उन से पूछने पर आप जान सकेंगे कि मैं राजपूत-कन्या हूं। रूपनगर का बहुत ही छोटा सा राज्य है, तौभी विक्रम सिंह सोलंकी राजपूत हैं। यदि मैं मध्यदेश के राजराजेश्वर (आप) के आगे राज-कन्याओं में न गिनी जाऊं, तौभी राजपूतकन्या होने से दया की पात्री अवश्य हूंगी, क्योंकि आप राजपूतों के स्वामी और राजपूतकुलतिलक हैं।

"दया कर के आप मेरी विपत की बात सुनिये! मेरे अभाग्य ही से दिल्ली के बादशाह ने मेरे साथ बिवाह करने की इच्छा की है। बहुत ही शीघ्र उस की सेना मुझे दिल्ली ले जाने के लिये आवेगी। किन्तु मैं राजपूत कन्या होकर—क्षत्रिय के कुल में जन्म लेकर कैसे मुसलमान की दासी होऊंगी? हाय! राजहंसिनी हो कर क्योंकर बगुले की संगिन बनूंगी? हिमालयनन्दिनी (गंगा) होकर किस तरह कींचड़ से भरे तालाब में मिलूंगी? और राजकुमारी होकर किस भांति विधर्म्मी यवन की आज्ञाकारिनी बनूंगी? इसलिये मैंने सोच लिया है कि इस बिवाह से पहिलेही विष खा कर अपने प्रान देदूंगी।

" महाराजाधिराज! आप मुझे अभिमानिन मत समझिएगा। इसे मैं जानती हूं कि मैं एक अदने जिमींदार की लड़की हूं—और जब कि जोधपुर अंबर आदि के महाप्रतापी राजराजेश्वर लोग भी दिल्ली के बादशाह को बेटी देने में कलंक समझना तो दूर रहा, बरन अपनी बड़ाई समझते हैं तो भला फिर मैं उन घरानों के आगे किस गिनती में हूं? तो फिर मुझे इतनी टिर्र क्यों है? यह बात आप पूछ सकते हैं? सुनिए, महाराज! सूर्य देवता के अस्त होने पर क्या तारे अपनी चमक दमक नहीं दिखाते? पाले से कमलिनी के मुंदने पर क्या तुच्छ कुंद की कली नहीं खिलती?

और क्या योधपुर, अंबर आदि के क्षत्रियकुलांगारों ने अपने अपने कुल का नाश कर डाला तो रूपनगर के कुल की रक्षा नहीं हो सकती? महाराज! भाटों के मुंह सुना करती हूं कि बनबासी महाराणा प्रताप सिंह के साथ महाराज मान सिंह भोजन करने को आये तो महाराणा ने उन के साथ न खाया।" और कहा कि "जिस ने तुर्क को अपनी बहिन देडाली है, उस के साथ महाराणा कदापि भोजन नहीं कर सकते।" उसी महाप्रतापी वीर प्रताप के कुलतिलक को क्या यह बात समझानी पड़ेगी कि यवन से विवाह करना राजपूतकुलवालाओं के लिये दोनों लोकों में हंसी की बात है? महाराज! आजतक आप के वंश की कन्या के साथ तुर्क क्यों न विवाह कर सका? केवल इसी लिये नहीं कि आप लोग बहुतही बलवान, प्रतापी और पराक्रमवाले हैं,—जब कि महाबली और महा प्रतापी रूम और फ़ारस के बादशाह भी दिल्ली के बादशाह को अपनी लड़की देने में अपना बड़प्पन समझते हैं तो फिर केवल उदयपुरवालों ने मुसलमान को लड़की क्यों न दी? इसी लिये कि वे सचमुच राजपूत हैं। बस महाराज! मैं भी वैसीही राजपूतिन हूं कि प्रान देडालूंगी तो भी कुल में कलंक कभी न लगाऊंगी, इस बात की मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूं।

" काम पड़ने पर प्राण देदेने की प्रतिज्ञा तो मैं करही चुकी हूं; तौ भी सुनिए तो सही—इस अठारह बरस की कच्ची उमर में इस अनमोल प्रान के बचाने का भी मेरा जी चाहता है; पर कौन मुझे इस घोर विपद से बचावेगा ? मेरे पिता में तो इतना बल है नहीं, भला उन की क्या सामर्थ्य है कि आलमगीर के साथ झगड़ा करें ? और तो जितने छोटे बड़े राजपूत राजा हैं, वे सभी बादशाह के गुलाम हैं और सभी उस से कांपा करते हैं। ऐसी अवस्था में एक आपही—राजपूतकुल के एकमात्र दीपक आपही—केवल आप ही स्वाधीन—बस एक उदयपुरेश्वर आप ही बादशाह की बराबरी कर सकते हैं। आप के अलावे इस समय अब हिन्दुओं में ऐसा कोई भी नहीं है, जो मुझ आपद की मारी बालिका की रक्षा कर सके—इसलिये मैं ने आप की सरन ली है, क्या आप मुझे न बचावेंगे ?

" कितने बड़े काम के लिये मैं आप से बिनती कर रही हूं, इसे मैं नहीं समझती, सो नहीं है। मैं निरी लड़कपन की समझ के फेर में पड़ कर आप को ऐसा लिखती हूं, सो बात नहीं है, और दिल्ली के बादशाह से टंटा बिसाहना सहज नहीं है यह भी मैं जानती हूं; क्योंकि संसार में इस समय ऐसा कौन है, जो उसे छेड़ कर बैठे बिठाए अपने सिर लड़ाई मोल

ले ? यह सब समझती हूं पर महाराज ! सोचिए तो सही कि महाराणा संग्राम सिंह ने बाबर बादशाह को एक तरह से राज्यच्युत ही कर छोड़ा था, और महाराणा प्रताप सिंह ने अकबर शाह को मध्यदेश से निकाल बाहर किया था। आप भी उसी सिंहासन पर बैठे हैं, आप भी उन्हीं संग्राम सिंह और प्रताप सिंह के वंश में हैं, तो फिर क्या आप अपने पुरुषों की अपेक्षा बल और पराक्रम में कुछ कमती हैं ? मैं ने सुना है कि महाराष्ट्र देश में एक पहाड़ी डांकू ने आलमगीर को हरा दिया है—तो फिर वहां आलमगीर क्या राजस्थान के राजराजेश्वर के आगे गिना जाने योग्य है ?

" आप यह कह सकते हैं कि ' हां हमारी बाहु में बल है, पर तौ भी हम तुम्हारे लिये क्यों इतनी झंझट झेलें ? हम क्यों एक बेजानी सुनी बकवादिन सुन्दरी के लिये सेना कटावें ? और क्यों घोर लड़ाई खड़ी करें ? ' किन्तु महाराज ! सर्वस खोकर शरणागत की रक्षा करना क्या राजा का धर्म नहीं है ? सर्वस खोकर कुलकामिनी का रक्षा करना क्या क्षत्रियों का धर्म नहीं है ?"

यहां तक तो वह चिट्ठी राजकन्या के हाथ की लिखी थी, बाकी उस में नीचे जो कुछ लिखा था, वह उस के हाथ की लिखावट न थी, बरन उसे निर्मल-

कुमारी ने लिखा था। पर यह बात राजकुमारी को मालूम थी या नहीं, यह हम नहीं कह सकते। उस पत्र में निर्मल ने यह लिखा था—

"महाराज! और एक बात कहते लाज आती है, पर बिना कहे रहा नहीं जाता। मैं ने इस आफ़त में फंस कर यह पन किया है कि 'जो वीर मोग़ल के हाथ से मुझे बचावेगा, वह यदि राजपूत होगा और मुझे शास्त्र की पद्धति से अपनाया चाहेगा तो मैं उस की दासी बनूंगी, हे वीरचूड़ामणि! युद्ध में स्त्री को पाना वीरधर्म है। देखिये, महावीर पाण्डवों ने सारे क्षत्रिय कुलवालों से संग्राम कर के द्रौपदी को पाया था। काशिराज के यहां बटुरी हुई सारी राजमण्डली के आगे अपनी वीरता दिखला कर महात्मा भीष्मपितामह राजकुमारियों (अंबा, अंबालिका और अंबिका) को ले आए थे। हे राजा! आप ने रुक्मिणी-हरण की कथा कभी सुनी है? इसलिये आजदिन आपही एक इस संसार में अद्वितीय वीर हैं; तो क्या आप वीरधर्म से मुंह मोड़ेंगे?,

"तौ भी मैं जो आप की महिषी बनने की इच्छा करती हूं, यह मेरी बड़ी भारा ढिठाई है। हां! जो मैं आप के अपनाने योग्य न होऊं तो क्या आप के साथ किसी दूसरे भांति के नाते लगाने का भरोसा भी न करूं? निदान उस तरह की कृपा भी जिस में मुझे मिल सके

इसी इच्छा से गुरु जी के हाथ राखी (रक्षावंधन) भी भेजी है। वे आप के हाथ में बांध देंगे—फिर आप का राजधर्म आप के हाथ है और मेरा प्रान मेरे हाथ। इतने पर भी जो मुझे दिल्ली ही जाना पड़ेगा तो मार्ग ही में विष खा लूंगी।"

पत्र पढ़ कर थोड़ी देर के लिये राजसिंह गहरे सोच में डूब गए। फिर सिर उठा कर मानिकलाल से बोले—

"मानिकलाल! इस पत्र की बात तुम्हारे अलावे और कौन जानता है?"

मानिक—जो जानते थे उन का बध तो श्री महाराज गुफाही के भीतर कर आये हैं।

राजा—अच्छा तुम घर जाओ। उदयपुर में आकर हम से भेंट करना और इस पत्र की बात किसी के आगे मत प्रगट करना।

यह कह कर उन्हों ने जो कुछ अशर्फ़ियां पास थीं, मानिकलाल के हाथ धरीं और वह प्रणाम कर के विदा हुआ।

छठां परिच्छेद ।

माता की जय ।

अनंत मिश्र से ठहरने के लिये कह कर राणा साहब डांकुओं की टोह लगाने गए थे। मिश्रजी भी उन की आसरा देखते थे—पर उन का चित्त ठिकाने न था। वे उस सवार के सिपाहियाना ठाठ और रोबीली आंखें देख कर कुछ घबड़ा गए थे। 'एक बार भरपूर बिपद में पड़ कर भाग्य ही से प्राण बचे और सब कुछ गया; चंचल कुमारी की सारी आशा भी मिट्टी में मिल गई, अब क्यों कर उसे मुंह दिखावेंगे?' इन्हीं सब बातों को मिश्र जी सोच रहे थे, इतने ही में उन्हों ने देखा कि पहाड़ की चोटी पर दो तीन जनें खड़े खड़े न जाने क्या सलाह कर रहे हैं। यह देखतेही ब्राह्मण देवता कांप उठे, सोचने लगे कि 'अब ये दूसरे डांकू आ धमके क्या? तब तो जो कुछ पास था, उसी को लेकर लुटेरों ने प्राण न लिया, पर अब जो कहीं ये सब आकर हमें घेरें तो क्या देकर प्राण बचावेंगे?' मिश्र जी इसी तरह सोच विचार कर रहे थे इतने ही में उन्हों ने देखा कि 'पहाड़ की चोटीवाले वेही लोग हमारी ओर हाथ फैला फैला कर आपस में न जाने क्या क्या बातचीत कर रहे हैं।' इतना देखतेही बिचारे ब्राह्मण के जी में जो कुछ ढाढ़स था, वह भी

जाता रहा और वे भागने का विचार कर के उठ खड़े हुए। उसी समय पहाड़ पर जो लोग खड़े थे, उन में से एक आदमी नीचे उतरने लगा—यह देखतेही मिश्र जी सांस रोक कर भागे।

तब तो "धर धर" कर के तीन चार जनें उन के पीछे पीछे छूटे—मिश्र जी भी भागे—बदहवास, लांग खोले हुए तौ भी "नारायण नारायण" स्मरण करते करते तीर की तरह वेग से भागे। जो लोग उन के पीछे पीछे कुछ दूर तक दौड़े थे, उन लोगों ने उन्हें जब न देखा तो वे सब पीछे लौट आए।

वे सब कोई दूसरे न थे, महाराणा ही के नौकर चाकर थे। महाराणा के साथ यहां पर हमारी क्योंकर भेंट हुई, इस बात को यहां पर खोल देते हैं—

राजपूतों को शिकार का बहुत ही चाव रहता है, सो आज महाराणा सौ सवारों और बहुतेर नौकर चाकरों को साथ लेकर शिकार खेलने निकले थे, जो अब शिकार से लौट कर उदयपुर की ओर फिर रहे थे। उन का यह स्वभाव था, कि वे सदा सिपाही प्यादों से घिरा रहना नहीं पसंद करते थे, बरन कभी कभी तो वे अपने सिपाहियों को दूर छोड़ कर अकेले घोड़े पर सवार हो और भेष बदल कर अपनी प्रजाओं की दशा देखते फिरते; इसी से उन के राज्य में सारी प्रजा बहुत ही सुखी थीं, क्योंकि राणा अपनी आंखों से

सब बात देखते और अपने हाथ से सब का दुःख दूर करते थे।

सोही आज शिकार से लौटने के समय वे अपने नौकर चाकरों को पीछे पीछे आने की आज्ञा देकर विजय नामक तेज़ घोड़े पर सवार हो अकेले आगे बढ़ आए थे। और इसी अवस्था में अनंत मिश्र से उन की भेंट होने पर जो कुछ हुआ, वह ऊपर कहाही गया है। राणा लुटेरों का अत्याचार सुनतेही अपने हाथ से ब्राह्मण के उद्धार करने के लिये दोड़े थे; क्योंकि जो काम बहुत ही कठिन और विपद से भरा हुआ होता, उसी में उन को आनंद मिलता था।

इधर बहुत देर होने पर कई सिपाई तेज़ी से उन्हें खोजने के लिये आगे बढ़े। और उन लोगों ने पहाड़ से नीचे उतरते समय देखा कि 'राणा का घोड़ा खड़ा है।' यह देख कर वे लोग बहुतही घबड़ाए। उन्हें संदेह हुआ कि राणा पर कोई विपद तो नहीं आई? फिर उन सभों ने पहाड़ के नीचे शिलाखंड पर बैठे हुए अनंत मिश्र को देख कर सोचा कि 'यह बटोही राणा के बारे में शायद कुछ जानता हो!' इसीलिये उन सभों ने मिश्र जी की ओर हाथ उठाया और उन से पूछनेपाछने के लिये पहाड़ के नीचे उतरना आरम्भ किया था। इतनेही में तो देवता जी नारायण को स्मरण करते करते भाग पड़े, तब सिपाहियों ने

समझा कि 'तब तो यही आदमी अपराधी जान पड़ता है।' यही सोच समझ कर के वे लोग मिश्र जी के पीछे छूटे थे, पर वे एक कंदरा में लुक गए, इसी से सिपाहियों ने उन्हें न पाया।

इधर महाराणा चंचलकुमारी के पत्र को पूरा २ पढ़ के और माणिकलाल को बिदा कर के अनंत मिश्र की खोज में चले, पर जहां मिश्र जी को वे बैठा गए थे, वहां आकर देखा कि उन का पता नहीं है—और उन के बदले अपने नौकर चाकर और साथ के सवार लोग आकर पहाड़तली में फैले हुए हैं। राणा को देखते ही सब के सब जयजयकार करने लगे। बिजय भी अपने प्रभु को देखतेही तीन छलांग में पहाड़ की चोटी से उतर उन के पास जा खड़ा हुआ। तब राणा उस पर सवार हुए। उन के कपड़ों में खून का दाग देख कर सभी ने समझा कि आज कोई छोटी मोटी लड़ाई कहीं हुई है। पर राजपूतों की तो यह नित्य की लीला है यही समझ कर किसी ने उन से कुछ पूछा पाछा नहीं।

राणा ने पूछा—"यहां पर एक ब्राह्मण बैठा था, वह किधर गया? किसी ने देखा है?"

इस पर जो लोग मिश्र जी के पीछे पीछे दौड़े थे, वे बोल उठे—"महाराज! वह तो भाग गया।"

राणा—जल्दी उसे खोज लाओ।

इस पर नौकरों ने सब हाल खुलासा सुना कर कहा

कि " हमलोगों ने उसे बहुत खोजा, पर किसी तरह उस का पता नहीं लगा। "

बटुरे हुए सवारों में राणा के दोनों पुत्र, भाई बंद, और मंत्री लोग भी थे। उन में से अपने दोनों लड़कों और मंत्रियों को निराले में लेजाकर चंचल-कुमारी के पत्र का पूरा २ ब्योरा राणा ने कह सुनाया और इस पर जो कुछ करना बिचारा था, वह भी कहा। फिर लौट कर और सभों से कहा कि—

" प्यारे ! भाइयो ! आज बहुत अबेर हुई है, तुम सभों को भूख प्यास ने सताया होगा, इस में सन्देह नहीं है; पर आज उदयपुर जाकर भूख प्यास बुझाना हमलोगों के भाग्य में नहीं है। इसी पहाड़ी मार्ग की ओर फिर हमलोगों को लौटना पड़ेगा, क्योंकि एक छोटी सी लड़ाई जुट गई है। अब जिसे लड़ने की साध हो, वह हमारे साथ आवे, हम अभी इस पहाड़ पर फिर चढ़ेंगे—और जिस का जी लड़ने को न चाहे, वह शौक से उदयपुर फिर जाय। "

यह कह कर राणा पहाड़ पर चढ़ने लगे। और साथही, " जय महाराणा की जय ! जय माता जी की जय ! " कहते हुए सौ घोड़सवार उन के पीछे पहाड़ पर चढ़ चले। और पहाड़ के ऊपर पहुंच कर सब के सब " हर ! हर ! " करते हुए रूपनगर के मार्ग पर चल पड़े। घोड़ों की टाप की चोट से पहाड़ी प्रदेश खूब ही गूंज उठा।

सातवां परिच्छेद।

निराशा।

इधर रूपनगर से अनंत मिश्र के चलतेही वहा धूम मच गई। मोगल बादशाह की दो हज़ार घोड़सवार फौ रूपनगर गढ़ पर आपहुंची। यह फौज़ चंचल के लेने के लिये आई थी।

यह देखतेही निर्मल का मुंह सूख गया, चट वह दौड़ी हुई चंचलकुमारी के पास जाकर कहने लगी,-"अब क्या होगा? सखी!"

चंचलकुमारी ने मुसकुरा कर कहा—"किस का क्या होगा?"

निर्मल—तुम्हें लेने के लिये फ़ौज तो आपहुंची, पर मिश्र जी तो अभी उदयपुर गये हैं—अभी भी वहां पहुंचने में उन्हें देर लगेगी। हाय! राजसिंह का जवाब आते आते तो ये लोग तुम्हें लेही जायंगे—अब क्या किया जाय, सखी?"

चंचल—अब इस का कोई उपाय नहीं है--बस मेरा वही एक उपाय भर है, सो दिल्ली के रास्ते में ज़हर खाकर जान देदूंगी—इस बा का मैं पक्का इरादा कर चुकी हूं; इसी से अब मुझे रत्ती भर घबड़ाहट नहीं है। एक वार मैं पिता जी से विनती करूंगी कि मोगल सेनापति सात दिन की मोहलत दें।

यही बात उस ने मौका देखकर अपने पिता से भी कही कि—"मैं तो अब जन्म भर के लिये रूप-नगर से बिदा होती ही हूं, मैं फिर कभी आप लोगों को देख सकूंगी, या अपनी बालेपन की सहेलियों के साथ मिल सकूंगी, ऐसा भरोसा तो है नहीं; इसलिये मैं केवल सात दिन की मोहलत चाहती हूं—सात दिन बादशाही फौज़ यहीं ठहरी रहे और इसी सात दिन में मैं अच्छी तरह आप लोगों को देख कर जन्म भर के लिये बिदा होऊंगी।"

यह सुन राजा रोने लगे। उन्हों ने कहा कि—"देखें! सेनापति से बिनती करेंगे, पर वे ठहरने में राज़ी होंगे या नहीं, इसे हम अभी नहीं कह सकते।"

राजा ने अपने कहे अनुसार मोगल सेनापति को अपनी बिनती जनाई। इस पर सेनापति ने विचार कर देखा कि—"बादशाह ने कोई वक्त तो मुकर्रर किया ही नहीं है—यह तो कहा ही नहीं है कि इतने अर्से के भीतर लौट आना," तौ भी सात दिन की मोहलत देने की उस की हिम्मत न हुई। पर होनहार बेग़म की बिनती को एकदम से वह रद भी न कर सका; बस केवल पांच दिन का रहना उस ने सकारा। इस पर चंचलकुमारी के मन में पूरा ढाढ़स न बंधा।

इधर उदयपुर से कुछ भी समाचार न आया—न मिश्र जी ही लौट कर आए। तब तो चंचलकुमारी

ऊपर देख और हाथ जोड़ कर यों कहने लगी—"हे अनाथ के नाथ! हे देवताओं के देवता! विचारी अबला के प्रान मत लेना।"

रात को निर्मल आकर उस के पास ही सोई। सारी रात दोनों ही ने दोनों को कलेजे से लगा लगा, आंसू बहा कर बिता दी। निर्मल ने कहा—

"मैं भी तुम्हारे संग चलूंगी।"

कई दिन से वह यही बात रट रही थी। इस पर चंचल ने कहा,—"तुम मेरे साथ कहां चलोगी? मैं तो मरने जाती हूं।"

निर्मल ने कहा—"मैं भी मरूंगी। तुम जो मुझे छोर जाओगी तो क्या मैं जीती रहूंगी?"

चंचल ने कहा—"छिः! ऐसी बात मुंह से न निकालो। और भी मेरे दुख के ऊपर दुख क्यों चढ़ाती हो?"

निर्मल ने कहा-"चाहे तुम मुझे ले चलो या न ले चलो; पर मैं तो ज़रूर तुम्हारे साथ चलूंगी-मुझे कोई रोक नहीं सकेगा।"

योहीं दोनों ने रो रो कर रात काटी।

आठवां परिच्छेद ।

मेहरजान ।

जे दिन मोगल सिपाही रूपनगर में छावनी डाल कर ठहरे हुए थे, उतने दिन बड़े चैनचान से बीते। मोगलसेना के साथ साथ नाचनेवालियों के भी गोल रहते थे। बस जब लड़ाई न होती ते। तंबू के भीतर नाच तमाशे की धूम मची रहती। रूपनगर में भी मोगल सेना चैन उड़ाते ही आई थी, इसलिये रात को तंबू में नाचने गाने की वह धूम मचती कि जिस का नाम !

नाचनेवालियों में एकाएक एक रंडी के नाम की बड़ी शोहरत मच गई। दिल्ली में किसी ने कभी भी मेहरजान का नाम नहीं सुना था; पर जिन रंडियों का नाम दिल्ली में बहुत ही मशहूर हो रहा था, वे रंडियां भी रूपनगर में आकर मेहरजान के बराबर अपना नाम न कर सकीं। इस के अलावे नाचनेवाली होकर भी मेहरजान बहुतही नेकचलन और भली थी, इसलिये उस ने और भी नाम पाया।

मोगलसेनापति सैयद हसनअली ने उस का गाना सुनना चाहा, पर वह पहिले तो राज़ी न हुई, और बोली कि—"मैं बहुत से लोगों के सामने नाचना गाना नहीं कर सकती।" इस पर सैयद हसन-

अली ने एकरार किया कि—"मैं अकेला ही रहूंगा, मेरे दोस्त यार कोई भी न रहेंगे।" तब मेहरजान ने आ कर उसे अपना नाचना गाना दिखलाया। इस पर वह बहुत ही खुश हुआ और उस ने मेहरजान को बहुत कुछ इनाम दिया। पर उस ने इनाम न लिया और कहा—

"मैं ज़र नहीं चाहती, अगर आप मुझ पर खुश हुए हों तो मैं जो इनाम चाहती हूं, उसे इनायत कीजिए, वर्ना दूसरा इनाम मुझे मंजूर नहीं।"

सैयद हसनअली ने पूछा—"तुम क्या इनाम चाहती हो?"

मेहरजान बोली—"मैं आप की घोड़सवार फ़ौज में भर्ती हुआ चाहती हूं।"

यह सुनते ही हसनअली तो हक्का बक्का सा हो कर उस के मुसकुराहट से खिले हुए चेहरे की ओर देखता ही रह गया। तब मेहरजान ने उसे सन्नाटे में डूबा हुआ देख कर कहा—

"आप घबराएं नहीं, मैं अपने लिये घोड़े, हथियार और पोशाक की क़ीमत दूंगी।"

हसनअली ने कहा—"ऐं! औरत घोड़सवार फ़ौज़ में भर्ती होगी?"

मेहरजान ने कहा—"हर्ज़ क्या है? जंग तो

होहीगा नहीं ! अगर हो भी तो मैं भागनेवाली नहीं हूं।"

हसनअली—"इस पर लोग क्या कहेंगे ?"

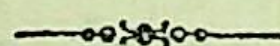
मेहरजान—"ग़ैरों पर ज़ाहिर करने से मतलब ? बस इस अम्र को मैं जानूं या आप जानें।"

हसनअली—"तुम किस वास्ते ऐसी ख़्वाहिश करती हो ?"

मेहरजान—"चाहे किसी ग़रज़ से करती होऊं, बादशाह का तो इस में कुछ नुक़्सान हई नहीं।"

पहिले तो हसनअली ने किसी तरह भी यह बात न सकारी, पर मेहरजान भी छोड़नेवाली न थी। अन्त में हसनअली राजी हुआ और मेहरजान की अर्ज़ क़बूल हुई।

यह मेहरजान कौन थी ? वही दरिया बीबी।



नवां परिच्छेद ।

प्रभुभक्ति ।

अब ज़रा मानिक लाल का हाल भी लिखा जाता है। वह राणा से विदा हो कर पहिले फिर उसी गुफा में पहुंचा। अब तो ठगी करने की उस की इच्छा थी ही नहीं, पर संगी साथी मरे या बचे इस बात को वह क्यों न देखता ? यदि कोई एकदम से मर न गया हो तो उसे बचाना चाहिये। यही सब सोच बिचार करते करते वह गुफा में घुसा।

वहां जाकर उस ने देखा कि दो जने तो मरे हुए पड़े हैं और जो केवल बेसुध हो गया था, वह होश में आकर कहीं चला गया है। तब उदास होकर मानिक लाल ने जंगल से लकड़ियां बटोर कर दो चिताएं बनाईं और दोनों मुर्दों को उन पर रख दिया। फिर गुफा में से चकमक पत्थर ला कर और उस से आग जला कर चिता में लगा दी। इसी भांति अपने साथियों को फूंकफांक कर वह वहां से चल खड़ा हुआ। फिर उस ने सोचा कि "जिस ब्राह्मण को सताया था, उस की क्या गत हुई, सो देखना चाहिए।" यह विचार कर जहां अनंत मिश्र को उस ने बांधा था, वहां जा कर देखा कि ब्राह्मण देवता का पता नहीं है। उस ने देखा कि निर्मल जलवाली पहाड़ी नदी का पानी कुछ मँट-मैला हो रहा है, और जगह जगह के पेड़ों की शाखा,

लत्तर, घास आदि दरकचरे से हो रहे हैं। इन सब निशानों को देख कर उस ने समझा कि "जान पड़ता है कि यहां पर बहुत से लोग आए थे। फिर उस ने देखा कि पहाड़ की पथरीली पगदंडी में भी जगह जगह घोड़ों के टापों के दाग उखड़े हुए हैं। तिस पर भी घोड़ों की टापों से जहां के लत्तर और घास कचर गए हैं, वहां पर अर्द्धचंद्राकार चिन्ह साफ साफ दिखलाई देते हैं। इन सभों को देर तक देखते देखते उस ने समझ लिया कि यहां पर कईएक घोड़सवार आए थे।

चतुर मानिकलाल फिर देखने लगा कि सवार लोग किधर से आए थे और किस ओर गए। उस ने देखा कि कई निशानों का अगला भाग दक्खिन की ओर और कइयों का उत्तर की ओर उभड़ा हुआ है। फिर कुछ दूर दक्खिन जा कर सब निशान उत्तर की ओर के पड़े हैं इन सभों को देख कर उस ने समझ लिया कि सवार लोग उत्तर की ओर से यहां तक आ कर फिर उत्तर ही की ओर लौट गए हैं।

इन सभों को अच्छी तरह सोचसमझ कर वह अपने घर गया। वहां से उस का घर दो तीन कोस पर था। वहां जा कर और रसोई बना कर जब वह खा पी चुका तो अपनी लड़की को गोद में ले और घर में ताला लगा कर बाहर हुआ।

उसे कोई न था। केवल एक बुआ के ननद की गोतनी के चाचा की लड़की थी। चाहे भलमंसी से या नातेदारी के साध मिटाने के लिये वह उस बुढ़िया को बुआ कह कर पुकारता। सो वह अपनी लड़की को लिए हुए बुआ के घर गया और वहां जा कर उस ने पुकारा—"बुआ जी!"

बुआ ने जवाब दिया—"कौन है, बेटा मानिक लाल! किधर चले?

मानिक लाल ने कहा—"बुआ! मेरी लड़की को जरा रख सकती हो?"

बुआ—कितनी देर तक?

मानिक—यही दोचार छः महीने तक।

बुआ—अरे बेटा! मैं कंगली-भला लड़की को कहां से खिलाऊंगी?

मानिक—यह क्या, बुआ! तुम गरीब कब से हुई? क्या अपनी पोती को दो चार महीने खिला नहीं सकतीं?

बुआ—यह क्या सहज बात है? दो महीने एक लड़की के पालने पोसने में एक अशर्फ़ी खर्च पड़ती है।

मानिक—अच्छा, मैं एक मोहर देता हूं, तुम दो महीने इस लड़की को रक्खो। मैं उदयपुर जाता हूं, वहां राजदर्बार में एक अच्छी नौकरी मैं ने पाई है।

यह कह कर उस ने राणा की दी हुई अशर्फ़ियों में से एक अशर्फ़ी बुआ के सामने फेंक दी और उस

के पास लड़की को बैठा कर कहा—"जा, बेटी ! अपनी दादी की गोदी में जा कर बैठ।"

अब तो बुआ जी को लालच ने घेरा, वह खूब जानती थी कि एक मोहर में इतने बड़े बच्चे की गुज़र एक बरस तक मज़े में हो सकती है-और मानिक लाल तो फ़क़त दो महीने का करार करता है सो इस मोहर में से बहुत कुछ बच रहेगा। और फिर जब कि इस की नौकरी राणा के दर्बार में हुई है तो जब इस का पसार फैलेगा-यह अमीर होगा, तो क्या फिर मुझ (बुआ जी) को कभी कुछ न देगा ? इस लिये इसे अपनी मुट्ठी में रखना चाहिये।

यह सोच कर बुआ जी ने मोहर उठा कर कहा-"इस में अचम्भे की कौन सी बात है, बेटा ! तुम्हारी लड़की का पालना पोसना क्या कुछ बड़ी बात है ? तुम सुचित रहना। आ, री ! बेटी ! आ !" यह कह कर बुआ जी ने लड़की को गोद में ले लिया।

लड़की का इस तरह बंदोबस्त कर के सुचित हो कर मानिक लाल गांव से बाहर हुआ। और बिना किसी से कुछ कहे सुने रूपनगर जानेवाले पहाड़ी रास्ते पर चल खड़ा हुआ।

वह यों सोचता था कि—"इस पहाड़तली में कई घोड़सवार क्यों जमा हुए थे ? यहां पर राणा भी अकेले ही घूमते थे-पर उदयपुर से यहां तक वे कभी अकेले नहीं आ सकते। इसलिये वे सब सवार महा-

राणा ही के थे। फिर देखा गया कि वे सब उत्तर ओर से यहां पर आए थे और उदयपुर की ओर जाते थे, जान पड़ता है कि राणा शिकार खेलने या जंगल की सैर करने आए होंगे और फिर उदयपुर की ओर लौटते थे। फिर देखा कि वे लोग उदयपुर नहीं गए, और यहां से फिर कर उत्तर ओर गए, सो क्यों? उत्तर ओर तो रूपनगर है। जान पड़ता है कि चंचल-कुमारी के पत्र को पाकर राणा घोड़सवार सेना के साथ उस का न्यौता पूरा करने गए हैं। यदि मेरे सोचने के अनुसार वे उधर न गए हों तो फिर उन का 'राजपूत' नाम ही झूठा है। मैं उन का दास हूं, सो मैं भी उन के पास चलूंगा। पर वे सब तो घोड़े पर गए हैं, और मुझे पांवप्यादे जाने में देर होगी। तौ भी एक यह भरोसा है कि पहाड़ी रास्ते में घोड़ा तेज़ी के साथ नहीं चल सकता और मैं पांवप्यादे ही बहुत तेज़ चल सकता हूं।"

बस इन बातों को अच्छी तरह सोचसमझ कर वह रातदिन रास्ता तय करने लगा और ठीक समय पर रूपनगर पहुंचा। वहां पहुंच कर उस ने देखा कि दो हज़ार मोगल घोड़सवारों ने आकर छावनी डाली है, पर राजपूत सेना का तो कहीं पर भी पता नहीं लगता। उस ने यह भी सुना कि परसों सबेरे बाद-शाही फ़ौज राजकुमारी को लिवा ले जायगी।

वह (मानिकलाल) भी अपनी समझदारी से

एक खासे सेनापति की बराबरी कर सकता था। सो वह राजपूतों का कोई पता न पा कर उदास न हुआ। बरन उस ने मनही मन यह निश्चय कर लिया कि राणा की खोज मोगलों के तो बाप दादे भी नहीं लगा सकते, पर मैं अपने प्रभु का पता लगाही लूंगा।

यह सोच कर उस ने एक वहीं के रहनेवाले से कहा कि,—"मुझे दिल्ली जानेवाली राह दिखला दे सकते हो? मैं इनाम दूंगा।" इस पर वह आदमी राज़ी हुआ और कुछ दूर तक उस के साथ जाकर उस ने पथ बतला दिया। फिर तो मानिक लाल दिल्ली की राह में चारो ओर अच्छी तरह देख भाल करता हुआ आगे बढ़ने लगा। उस ने खूब सोच लिया था कि राजपूत घोड़सवार लोग अवश्य कहीं न कहीं दिल्ली जाने वाले रास्ते ही पर लुके छिपे होंगे। पहिले तो उस ने कुछ दूर तक राजपूत सेना का कोई चिन्ह न देखा, पर फिर एक जगह देखा कि यहां का रास्ता बहुत सकरा है, जिस के दोनों ओर दो खड़े पहाड़ लगभग आध कोस तक बराबर चले गए हैं और बीच में सकरी राह है। उस के दहिनी ओर वाला पहाड़ बहुत ऊंचा था—जिस पर चढ़ना भी बहुत ही कठिन था, यहां तक कि उस की चोटी रास्ते के ऊपर ही झूलपड़ी थी। पर बाईं ओर वाला पहाड़ बहुत धीरे धीरे उठता गया था, उस पर चढ़ने में भी सुभीता था, और वह बहुत ऊंचा भी न था। वहीं पर बाईं ओर

एक दर्रा था, जिस में होकर एक बहुत ही सकरी राह दूसरी ओर चली गई थी।

नेपोलियन आदि बहुतेरे डाकू खासे सेनापति थे, पर राजा होने से फिर उन्हें लोग डाकू नहीं कहते थे। किन्तु मानिक लाल राजा नहीं हुआ, इसलिये हम उसे डाकू कह सकते हैं। पर डाकू राजाओं की भांति इस अदने डाकू को भी सेनापतियों सी ही आंखें थीं। पहाड़ से घिरे हुए बहुत ही सकरे रास्ते को देख कर उस ने समझ लिया कि यदि राणा आए होंगे तो यहीं पर कहीं छिपे होंगे। बस जब मोगल सेना इस सकरी राह से होकर जाने लगेगी, तब इस पहाड़ के ऊपर से राजपूतों के घोड़े मुसलमानों के सिर पर बज्र की भांति गिरेंगे। दहिनी ओर वाला पहाड़ बहुत ही बीहड़ और सवारों के चढ़ने उतरने योग्य नहीं है, इस से उस पर राजपूत सेना कभी न होगी—पर बाईं ओर वाले पहाड़ पर से उन के उतरने का बड़ा सुभीता है। यह सोच कर फिर वह उसी छोटे पहाड़ पर चढ़ चला। उस समय सन्ध्या हो चुकी थी।

ऊपर जा कर उस ने कहीं किसी को न देखा, तब बिचारा कि खोजना चाहिए। फिर सोचा कि राणा के अलावे और तो कोई भी राजपूत मुझे नहीं पहचानता, तब जो कहीं मुझे मोगलों का भेदिया समझ कर कोई राजपूत मारडाले तो? यह सोच कर फिर

वह आगे न बढ़ा और वहीं खड़े होकर चिल्लाया—"महाराणा जी की जय !"

इस जयध्वनि के होते ही तल्वार खैंचे हुए पांच चार राजपूत दर्रे में से निकल पड़े और तलवार उठा कर मानिकलाल को काटने दौड़े। उन में से एक ने कहा—"मारना मत।" मानिकलाल ने देखा कि इस आज्ञा के देनेवाले स्वयं राणा हैं।

राणा ने कहा—"मारना मत, यह हमारा ही आदमी है।" इतना सुनते ही सब सिपाही फिर जहां से आए थे, वहां जा कर छिप गए। तब राणा ने उसे पास बुलाया, वह पास आया। तब एक निराली जगह में जाकर राणा बैठे, उसे भी बैठने को कहा। जब वह बैठ गया तो उन्हों ने पूछा—"तुम यहां क्या करने आए ?"

मानिकलाल ने कहा—"स्वामी जहां हो, दास वहां क्यों न पहुंचेगा ? और ऐसी हालत में जब कि आप ने एक भयानक काम में पैर रक्खा है, तब यह दास भी कदाचित कुछ काम आवे, इसी भरोसे से आया है। मोगल सवार तो दो हज़ार हैं, और आप के साथ केवल सौ आदमी। तब भला फिर मैं क्योंकर चुपचाप बैठा रह सकता था ? आप ने मुझे जीवदान दिया है, जन्म भर इस बात को मैं क्या कभी भूल सकता हूं ?"

राणा ने पूछा—"मेरा यहां पर आना तुम ने क्योंकर जाना ?"

इस पर मानिकलाल ने अपनी सोची हुई सारी बात कह सुनाई, जिसे सुन कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। और बोले—"खैर, आए तो अच्छा ही किया; हम तुम्हारे ऐसे एक चालाक आदमी की खोज ही में थे। अच्छा, अब जो हम कहें, उसे कर सकोगे ?"

मानिकलाल ने कहा—"आदमी जहां तक कर सकता है, वहां तक मैं भी कर सकूंगा।"

राणा ने कहा—"हमारे साथ केवल सौ बीर हैं, और मोगल सेना में दो हज़ार। ऐसी अवस्था में हम लोग जूझ कर प्राण दे सकते हैं, पर जीत नहीं सकते। केवल लड़ाई ही के भरोसे राजकन्या का उद्धार नहीं कर सकते, इसलिये पहिले उसे बचा कर तब लड़ना पड़ेगा। क्योंकि यदि वह भी लड़ाई की जगह रहेगी, तो घायल होगी, इसलिये पहिले उस का बचाव करना चाहिये।

मानिकलाल ने कहा— "मैं एक तुच्छ जीव हूं, इतनी बातें कहां तक समझ सकूंगा, इस लिए मुझे क्या करना चाहिए, सो आज्ञा कीजिए।"

राणा ने कहा—"तुम्हें मोगल सवारों का भेस धर कर कल उसी फ़ौज़ के साथ हो लेना चाहिए, और राजकुमारी के डोले के साथ ही साथ रहना

चाहिए, फिर जो कुछ हम कहते हैं, वह करना होगा।" फिर राणा ने भली भांति अपना सोचा विचारा उसे समझाया, जिसे सुन कर उस ने कहा—

"श्री महाराणा की जय होय! मैं इस काम को पूरा करूंगा। अब कृपा करके मुझे एक घोड़ा दे दीजिए।"

राणा—हम सौ योद्धा हैं, और उतने ही घोड़े भी हैं। बढ़ती घोड़ा नहीं है, कि तुम्हें दिया जाय। दूसरे सिपाही का तो घोड़ा ले नहीं सकते हो! हमारा चाहो तो ले जाओ।

मानिक—उसे तो जीते जी नहीं ले सकता। अच्छा, मुझे ज़रूरी हथियार दीजिए।

राणा—कहां से लावें? जितने हथियार हैं, उन से हमारा ही पूरा पड़ता नहीं दीखता और फिर किसे बेहथियार का करके तुम्हें हथियार दें? हां, जी चाहे तो हमारा ले लो।

मानिक—ऐसा नहीं हो सकता। ख़ैर, मुझे पोशाक तो दीजिए?

राणा—यहां जो कुछ पहिरे आए हैं, उस के अलावे दूसरी कोई पोशाक नहीं है। सो हम कुछ भी न देंगे।

मानिक—महाराज! तब आज्ञा दीजिए, फिर

तो मैं जिस तरह बन पड़ेगा, ये सब चीज़ें इकट्ठी कर लूंगा।

राणा—मुसकुरा कर बोले—"तो क्या चोरी करोगे?"

यह सुनते ही मानिकलाल ने दांतों तले जीभ दबाई और कहा—"राम! राम! मैं तो कसम खा चुका हूं कि फिर ऐसा काम कभी न करूंगा।"

राणा—तो फिर ये सब सामान क्योंकर इकट्ठे होंगे?

मानिक—किसी से ठग लूंगा।

राणा ने मुसकुरा कर कहा—"लड़ाई के समय सभी चोरी करते हैं, सभी ठगी करते हैं। हम भी तो बादशाह की बेगम को चुराने आए हैं और चोरों की तरह अपनी घात लगाए लुके हुए हैं। बस तुम भी जैसे हो सके, इन सब चीज़ों का बंदोबस्त कर लेना।"

तब तो वह प्रसन्न हो कर प्रणाम कर के बिदा हुआ।

—⊶⊷—

दसवां परिच्छेद।

रसीली पानवाली।

मानिकलाल उसी समय रूपनगर को लौट आया। उस समय संध्या ढल चुकी थी। रूपनगर की बाज़ार में जा कर उस ने देखा कि बाज़ार में बड़ी बहार है। दूकानों के अनगिनती दियों के उंजाले से बाज़ार रौशन हो रही है, तरह तरह की मिठाइयां अपनी अपनी चमकदमक दिखला कर जीभ का पानी गिराए देती हैं, फूलों के गजरों के ढेर आखों में तरावट पहुंचा रहे हैं, और सुगंधि से चित्त कली की तरह खिला जा रहा है।

मानिकलाल का मतलब था कि किसी तरह घोड़ा और हथियार जुटाना चाहिये, पर इतने ही काम के लिये वह अपने खाली पेट को निरा कोरा ही नहीं रहने दिया चाहता था, इसलिये थोड़ी सी मिठाई खरीद कर पेटपूजा करने लगा। केवल पांच छः सेर मिठाई चट कर के ऊपर से उस ने डेढ़ सेर पानी भी पी डाला और फिर मिठाईवाले को वाजबी दाम दे कर पान चाभने की ठहराई। उस ने देखा कि एक दूकान बड़े ठाट से सजी हुई है, और अनेक कवल सुहावने फानूसों में जल रहे हैं। दीवार में रंगबिरंगे कागज चिपकाए हुए हैं, और जगह जगह तरह तरह की तस्वीरें लटक

रही हैं। पर वे तस्वीरें कुछ जादे मज़ेदार थीं, जिन्हें आज कल की नई बोली में "Obscene" और पुराने जमाने की भाषा में "रसीली" कह सकते हैं। दूकान के बीचोबीच मुलायम गालीचे पर दूकान की मालकिनी पान बेचनेवाली बैठी हुई थी। उस की उम्र तीस बरस से कुछ ऊपर होगी, पर वह भद्दी या बदसूरत न थी। उस के शरीर का रंग गोरा, आंखें बड़ी बड़ी, आंखों की पुतली बहुत ही चंचल और मुसकुराहट बड़ी ही मज़ेदार थी। वह मुसकुराहट मोती की लड़ी से सुहावने दांतों की पांती में दिन रात खेला करती, और उस मुसकुराहट के साथ शरीर के सारे गहने भी हिला करते। गहने कुछ चांदी के और कुछ सोने के थे, पर उन की गढ़न सुंदर थी। मानिकलाल ने उस तंबोलिन की और उस की दूकान की सजावट को देख कर पान मांगा।

पानवाली आप पान नहीं बेंचती, बरन दूकान के चौखट पर बैठी हुई उस की टहलनी पान लगाती और बेंचती थी। और पानवाली केवल पैसा थाम्ह लेती और हंस दिया करती थी।

लौंड़ी ने पान लगा कर दिया, जिस क दूना दाम मानिकलाल ने दिया और फिर पान मांगा। जब तक पान लगा कर तैयार हो, उतनी देर तक वह हंस हंस कर पानवाली से इधर उधर की बातें करने लगा।

पहिले पहिल रूप की बड़ाई करने से कदाचित् पानवाली कुछ बुरा माने, इसलिये पहले वह उस की दूकान की सजावट और गहनों की गढ़न की बड़ाई करने लगा। बड़ाई बड़ी बुरी बला है। मानिकलाल की बड़ाई से रसीली पानवाली पानी पानी हो गई, तब तो उस ने मानिकलाल के हाथ रसीले पान के साथ ही साथ अपनी मीठी मीठी बातों का भी बेंचना प्रारम्भ किया। फिर तो मानिकलाल भी ढीठ होकर उस की दूकान पर चढ़ बैठा और पान चाभते चाभते उस के हाथ से नैचा लेकर आप सुड़सुड़ाने लगा। यहां तक उस ने पान चाभ डाला कि दूकान का सारा मसाला ही चुक गया। तब वह लौंडी मसाला लाने दूसरी दूकान पर गई। बस निराला देख कर मानिकलाल ने पान-वाली से कहा, "बीबी महराजी! तुम बड़ी चतुरी हो, मैं तुम्हारी ही सी एक चतुरी स्त्री को ढूंढ़ता था, सो भाग्य से तुम भली मिल गई। मेरा एक दुश्मन है, उसे जरा छकाना चाहिये। क्योंकर उसे मुंहफिट्टा करना चाहिये यह बात मैं तुम से समझाकर कहता हूं। जो तुम मेरी मदद करो तो मैं तुम्हें एक अशर्फी इनाम दूंगा।"

पानवाली—"मुझे क्या करना पड़ेगा?"

इस पर मानिकलाल ने धीरे धीरे अपना मतलब उस से कह सुनाया। पानवाली तो पहले सिरे की ठट्ठे-बाज थी ही, बस तुरंत वह मानिकलाल की बात पर

राजी हो गई और बोली—" अशर्फ़ी की कोई ज़रूरत नहीं है—इस दिल्लगी ही को मैं अपना इनाम समझती हूं।"

तब मानिकलाल ने दावात कलम और कागज़ मांगा, जिसे लौंड़ी ने पास ही एक बनिएं की दूकान से ला दिया। तब उस ने पानवाली से सलाह मिला कर यह चिठ्ठी लिखी—

" जानेमन सलामत !

" तुम ने जिस सायत से रूपनगर में कदम रक्खा है, उसी लहजे से मैं तुम्हें देखकर तुम्हारे ऊपर मुश्ताक़ हो रही हूं। प्यारे तुम्हें एक नजर बगैर देखे मेरी जान न बचैगी। सुनती हूं कि तुम सब कल चले जाओगे। लिहाज़ा आज एक मर्त्तबा जुरूर जुरूर अपनी सूरत दिखलाओ; वर्ना मैं अपने गले में छुरी मार मरूंगी। जो क़ासिद यह ख़त ले जाता है, उस के साथ आओ; वह अपने हमराह तुम्हें मज़े में ले आवेगा।"

चिठ्ठी पूरी कर के मानिकलाल ने उस के सरनामे की जगह लिख दिया—" मुहम्मद ख़ां।"

पानवाली ने पूछा—"यह मुआ है, कौन ?

मानिक—" एक मोगल घोड़सवार।"

सच तो यों है कि मानिकलाल उन मोगल सवारों में किसी को भी नहीं पहिचानता और न किसी का नाम ही जानता था, पर इस बात तो को वह

अच्छी तरह जानता था कि "दो हज़ार मोगल सवारों में एक 'मुहम्मद' के नाम का आदमी भी होहीगा; और 'ख़ा' तो सभी मोगल कहलाते हैं।" इसलिये जी पोढ़ा कर उस ने चिठ्ठी पर 'मुहम्मद ख़ां' लिखा फिर चिठ्ठी पूरी होने पर उस ने पानवाली से पूछा—

"उस मुर्दे को यहीं लाऊं?"

पानवाली ने कहा—

"नहीं, दूकान पर ठीक नहीं होगा। कोई दूसरा घर भाड़े पर ले लेना चाहिए।"

तब दोनों जनों ने बाज़ार में जाकर उसी समय एक घर भाड़े पर ले लिया। फिर पानवाली तो मोगल बच्चे की ख़ातिरदारी के लिये घर की सजावट में लगी और मानिकलाल चिट्ठी लिये हुए मुसलमानी छावनी पर जा पहुंचा।

छावनी में बड़ा अंधेर तो यह था कि उस में कुछ भी सिलसिला या तरीका न था। उस के भीतर बाज़ार लगी हुई थी जहां नाच तमाशे रौशनी और आतशबाजी की धूम मची हुई थी। वहां पर जिस मोगल को सामने पाता उसी से मानिकलाल पूछता कि—"जनाब! मुहम्मद ख़ां किस का नाम है? उन के नाम का एक ख़त है।" "इस पर कोई तो कुछ जवाबही न देता, कोई गाली दे बैठता, कोई कहता—"मैं नहीं पहिचानता" और कोई कहता—"तलाश कर लो।" अंत में एक मोगल बोला—

" मुहम्मद ख़ां को तो मैं नहीं पहिचानता, मगर मेरा नाम है, 'नूर मुहम्मद ख़ां।' लाओ, खत देखूं? देखने पर मालूम कर सकूंगा कि यह खत मेरा है, या नहीं।"

मानिकलाल ने उमंग के साथ उस के हाथ में चिट्ठी पकड़ा दी क्योंकि वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि "चाहे कोई मोगल हो, मेरे इस जाल में जरूरही फंसेगा।"

मोगल ने भी यही विचारा कि—" यह खत चाहे किसी का हो, पर मैं क्यों ऐसे मौके पर बीबीजान को एक नज़र न देख आऊं?

यह सोच कर उस ने मानिकलाल से कहा—

" हां, यह खत मेरा ही है। ठहर, मैं तेरे हमराह चलता हूं।" यह कह कर ख़ां साहब अपने तंबू के भीतर जाकर बालों में बल देने, अतर लगाने, और डाढ़ी मोंछ संवारने लगे। फिर बढ़ियां पोशाक पहिर कर बाहर आए। उन्हों ने मानिकलाल से पूछा—

" क्यों बे, गुलाम! वह जगह यहां से कितने फ़ासले पर है?"

मानिकलाल ने हाथ जोड़ कर कहा—

" हुज़ूर! बहुत दूर है, घोड़े पर चलने में बेहतर होगा।"

"बहुत खूब" कह कर ज्योंही ख़ां साहब घोड़े पर चढ़ने लगे, त्योंही मानिकलाल ने फिर हाथ जोड़ कर कहा—

"गरीब परवर! बड़े घराने का मामिला है, हथियार बांध कर चलना मुनासिब है।"

नये आशिक ने सोचा कि—"सच तो है, जंगी जवान होकर खाली हाथों क्या जाना!" यह सोच कर और सब हथियार बांध कर ख़ां साहब घोड़े पर सवार हो मानिक के साथ हुए।

ठिकाने पर पहुंच कर मानिक लाल ने कहा—

"हुजूर, यहीं पर उतरना चाहिये। मैं आप का घोड़ा थाम्हे रहूंगा, आप इस घर के अंदर जाइए।"

ख़ां साहब उतर पड़े—मानिकलाल ने घोड़े की लगाम थाम्ह ली। पर जब ख़ां बहादुर हथियार लिये ही घर में घुसने लगे तो उन्हें एकाएक खटका लगा कि "हथियार बांधे हुए माशूका की मुलाकात को जाना नामुनासिब है।" यह सोच कर और मानिकलाल के पास आकर उन्हों ने अपने सारे हथियार उस के हवाले किए, तब घर में पैर रक्खा। इस से मानिकलाल को और भी सुभीता हुआ।

घर में घुस कर उन्हों ने देखा कि "एक चौकी के ऊपर सुथरा पलंग बिछा हुआ है और उस के ऊपर एक हँसीन औरत बैठी हुई है। अतर और गुलाब-जल की सुगंधि से घर मह मह कर रहा है और चारो ओर फूल बिखरे हुए हैं। सेज के नीचे खासे पेच-वान पर अंबूरी तंबाकू भी भरी हुई तैयार है।"

यह सब देखकर ख़ां साहब बहुत खुश हुए और जूता उतार कर तख्त पर बैठ गए। फिर तो बीबी जान से हंस हंस कर प्रेम भरी बातें करने लगे। गरमी मालूम होने से पोशाक उतार कर उन्हों ने वहीं चौकी पर रख दी और फूल की पंखी उठा कर हवा करने और पेचवान की मुहंनाल मुहं में ले कर हुक्का गड़गड़ाने लगे।

वह बिचारे अच्छी तरह तंबाकू भी न पीने पाए थे कि बाहर से मानिकलाल ने दरवाज़ा भड़भड़ाया।" बीबी ने पूछा—

"कौन है ?"

मानिकलाल ने आवाज़ बदल कर कहा—

"मैं हूं।"

तब तो उस चालाक औरत ने घबराकर ख़ां साहब स कहा—

"गज़ब हो गया,—मेरा शौहर आ पहुंचा; मैंने समझा था कि यह मुआ आज न आएगा, ख़ैर, तुम ज़रा इस तख्त के नीचे लुक जाओ, मैं अभी उस निगोड़े को धत्ता करती हूं।"

ख़ां बहादुर बोले—

"यह क्या! मर्द होकर किसी की दहशत से लुक जाऊं? चाहे कोई हो, उसे आने दो, फ़ौरन क़त्ल कर डालूंगा।"

पानवाली ने दांतों तले जीभ दबाकर कहा—

"यह क्या, गज़ब! मेरे खाविंद को काट कर तुम मेरे पर्वरिश की राह बंद करना चाहते हो? तुम्हारी मुहब्बत का यही नतीजा निकलेगा? फ़ौरन तख्त के नीचे घुसो। मैं बात की बात में उसे टाले देती हूं, ज़रा सब्र तो करो।"

इधर से मानिकलाल भी धड़ाधड़ किवाड़ा पीट रहा था, लाचार ख़ां साहब तख्तपोश के नीचे घुसे। मोटा शरीर जल्दी क्योंकर घुसे, पर इस ठसाठसी में बिचारे के बदन के खाल कई जगह से छिलगई— बिचारा क्या कर सकता था? "चाखा चाहे प्रेम रस, जोखिम क्यों न सहे।"

उस मोटे ताजे मांस के लोंद के तख्त के नीचे घुसने पर पानवाली ने दर्वाज़ा खोल दिया।

मानिकलाल के घुसते ही उसी की पट्टी पढ़ाई हुई पानवाली ने कहा—

"तुम फिर आ पहुंचे! आज तो तुम नहीं आने की बात कह गए थे!"

मानिकलाल ने पहिले की तरह आवाज़ बदल कर कहा—

"ताली यहीं गिर गया था, उसी को लेने फिर आना पड़ा।"

फिर तो पानवाली ने ताली खोजने के बहाने से ख़ाँ बहादुर की पोशाक उठाली। और दोनों जनों ने घर के बाहर निकल और सीकड़ चढ़ा कर कुंडे में ताला जड़ दिया। उस समय बिचारे ख़ाँ बहादुर तख्त-पोश के नीचे पड़े पड़े चूहों के दांतों की पीर सह रहे थे।

उन्हें घर के पिंजरे में बंद कर के मानिकलाल ने उन की पोशाक पहिर ली। फिर उन्हीं के हथियारों को सम्हाल कर और उन्हीं के घोड़े पर चढ़ कर मुसलमानी छावनी की ओर कूच किया।

चौथा खंड।

पहिला परिच्छेद।

चंचलकुमारी की बिदाई।

सबेरे मोगल सेना लैस हुई। रूपनगर गढ़ के कोट से ले कर शमले और ज़िरहबज़ूर को पहिरे हुए डाढ़ी गलगोछेवाले हथियारबंद सवारों की कत्तार खड़ी हुई। पांच पांच सवारों की एक एक कत्तार, उस के पीछे दूसरी कत्तार, फिर तीसरी, चौथी, पांचवीं; योंही बराबर कत्तार के पीछे कत्तार खड़ी हुई। भौंरे के झुंड से घिरे हुए उन मोगल सवारों के कमल सरीखे मुंह सुहावने लगने लगे। और उन के घोड़े भी गर्दन तिर्छी करने से सुन्दर लगाम खैंचने से घबराए हुए और धीरे धीरे चलने से कुलांचे भरने लगे। घोड़ों की पांति सवार के बोझ से झूमती, मचलती और कुलांचे भरती हुई चलने के लिये तड़फड़ा रही थी।

चंचलकुमारी तड़के उठ और नहा धो कर जड़ाऊ गहनों से संवारी गई। निर्मल ने उसे गहने पहिराए और उस ने पहिरे। चंचल ने धीरज छोड़ कर रोते रोते कहा,—

"सब तो गहने पहिराए, सखी! अब सब के ऊपर से फूल के गजरे भी पहिना दो; क्योंकि मैं तो चिता पर चढ़ने न जाती हूं!"

यह सुन और अपनी आंखों के कोनों को अपने बेग से तोड़ कर निकलते हुए आंसुओं को निकलने से रोक कर निर्मल ने कहा,—

"जड़ाऊ गहने पहिरो, सखी! तुम तो उदयपुर की राजराजेश्वरी होने जाती हौ न?"

चंचल ने कहा—

"अच्छा, पहिराओ, पहिराओ; प्यारी, निर्मल! मरना ही है तो बदसूरत हो कर क्यों मरूं? मैं राजा की बेटी ठहरी, तो फिर राजकन्या ही की भांति बन ठन कर मरूंगी। सुन्दरापे के बराबर दूसरा कौन सा राज्य है? राज्य क्या बिना सुन्दरता के शोभा पाता है? इसलिये जहां तक हो सके, पहिरा दो।"

निर्मल ने गहने पहिराए, फिर वह खिले हुए पौधे को लजानेवाली चंचल की शोभा निरख कर रो उठी, पर कुछ कह न सकी। इस पर चंचल का भी कलेजा उमड़ने लगा और वह निर्मल के गले लग कर रोने लगी। फिर बोली—

"सखी निर्मल! अब तुम्हें न देखने पाऊंगी, हाय! बैरी विधाता ने क्यों ऐसा बखेड़ा खड़ा किया? देखो! नन्हा सा कंटीला पौधा भी जहां उगता है, वहीं जन्म भर बना रहता है; तो फिर मैं रूपनगर में क्यों न रहने पाई?"

निर्मल ने कहा—"प्यारी! मुझे फिर तुम देखोगी, तुम चाहे जहां रहो, मेरे तुम्हारे फिर भेंट होगी। बिना मुझे देखे तुम न मरोगी और तुम्हे देखे बिना मेरी भी मौत न आवेगी।"

चंचल—"मैं तो दिल्ली की राह में मरूंगी।"

निर्मल—"तो जरूर तुम मुझे दिल्ली ही के रास्ते में देखोगी।"

चंचल—"सो कैसे निर्मल! तुम वहां कैसे पहुंचोगी?"

इस पर निर्मल चुप रही और चंचल के गले लग कर रोने लगी।

चंचलकुमारी सिंगार पटार कर के शिवाले में गई। और वहां जा कर उस ने नित्य नेम से शिवजी की पूजा की। फिर पूजा कर के वह कहने लगी—"देवाधि देव! महादेव! मैं तो मरने जाती ही हूं, पर तुम से यह पूछती हूं कि इस तुच्छ लड़की की जान लेने में तुम्हें इतना आनन्द क्यों है? हे नाथ! मेरे जीती रहने से क्या तुम्हारी सृष्टि में कुछ उलट फेर हो जायगा? जो तुम्हारे मन में यही समाई थी, तो फिर मुझे राज-कन्या बना कर किस लिये संसार में भेजा?"

इस प्रकार महादेवजी की बिनती कर के माता के पैरों में जा कर वह गिर पड़ी। माता से मिलती बार वह बहुत ही जी छोड़ कर रोई। फिर उस ने पिता के पैरों में सिर लगाया, वहां पर भी वह बहुत ही बिलखी। पीछे पारी पारी से वह अपनी सब सहेलियों से बिदा हुई। उस समय रोहा राहट का वह कोहराम मचा कि जिस का नाम।

फिर उस ने किसी को गहने, किसी को खिलौने, किसी को रुपए अशर्फी इनाम दिए। किसी से कहा,—"रोओ मत, मैं फिर आऊंगी"

किसी से कहा—"रोती क्यों हो ? देखती नहीं कि मैं बेगम बनने जाती हूं ?" और किसी से कहा—"मत रोवो, जो रोने से दुख दूर होता तो मैं रो रो कर रूपनगर के पहाड़ डुबा देती।"

सब से विदा हो कर वह डोले पर सवार होने चली। एक हजार घोड़सवार डोले के आगे पांति बांध कर खड़े हुए थे, और एक हजार पीछे; बीच में डोली रक्खा हुआ था। वह डोला रत्नों से जड़ा हुआ और उस पर जर्दोजी गिलाफ पड़ा हुआ था। उस के चारो ओर सैंकड़ों चोबदार खड़े खड़े अपनी अपनी सुरीली ललकार से देखनेवालों के मन को हराभरा कर रहे थे।

डोले पर चंचलकुमारी के सवार होते ही कोट में शंख बजने लगे, फूलों और खील बताशों के बरसने से डोला भर गया। फिर सेनापति ने कूच करने का इशारा किया, और चट ढहे करारेवाले तालाब के पानी की भांति घोड़सवारों की कतार बह चली। लगाम को चबाती कुँलाचे भरती घोड़ों की कतारें चलने लगीं, और सवारों के हथियार झनझनाने लगे।

सवेरे की ठंढी ठंढी पवन से मतवाले हो कर कोई कोई सवार भैरवी अलापने लगे। डोले के पीछे जो सवारों का जत्था था, उस में से आगेवाले एक सवार ने यह तान उड़ाई—

"परीभात क्यों सरम भरम तैं,
ऐ! सुकुमारी प्यारी!
सरकरात जा हित तू; सोऊ
उत तरफत बनवारी॥
समुझत नाहिं सिखावन, बरबस
डारत नैनन बारी।
जानत नाहिं ? समीप पियारो
जोवत गैल तिहारी॥"

राजकुमारी के कानों में यह तान पहुंची। इसे सुन उस ने सोचा कि—"हाय! जो कहीं इस सवार की गीत सच्ची होती!" क्योंकि उस समय वह राज सिंह के ध्यान में डूबी हुई थी। पर उस बिचारी को इस बात

की कहां खबर थी कि अँगुलीकटा मानिकलाल ही मेरे डोले के पीछे पड़ा तान उड़ा रहा है। क्योंकि मानिकलाल ने बड़े बड़े तोड़ जोड़ से डोले के पीछे ही अपना घोड़ा अड़ाया था।

दूसरा परिच्छेद।

निर्मलकुमारी का अथाह जल में कूदना।

इधर निर्मलकुमारी ने बड़ा खटराग फैलाया। चंचल तो जड़ाऊ डोले पर चढ़ कर चली गई, जिस के आगे पीछे दो हज़ार मोगल सवार अल्ला अल्ला के हल्ले से रूपनगर के पहाड़ को गुंजान करते चले जाते थे। पर निर्मल की रोवाई नहीं थम्हती थी। हाय! चंचल बिना वही—केवल वही अकेली—बिल्कुलही अकेली—सैकड़ों पुरवासियों में बस वही अकेली सी हो गई। तब वह महल की सब से ऊंची छत पर चढ़ कर देखने लगी। उस ने देखा कि चौथाई कोस की लंबाई में रेंगते हुए अजगर की भांति वह घोड़सवारों की पांति पहाड़ी रास्ते में कहीं ऊपर को उठती और कहीं नीचे उतरती चली जाती है। और सूरज की किरन से सवारों के उठे हुए बर्छों की अनी चमचमाती जाती है।

देर तक खड़ी खड़ी निर्मल ने यही सब देखा की, जिस से उस की आंखें जल उठीं। तब वह आंखें बंद किए हुई छत पर से उतर आई। वह कुछ सोचविचार कर छत से नीचे उतरी थी। नीचे आ कर उस ने पहिले अपने सब गहने उतार कर कहीं छिपा दिए, जिसे किसी ने न देखा। फिर अपने बटोरे हुए धन में से कुछ रूपए अशर्फ़ियां ले कर अपनी कमर में बांधी। बस इतनी ही जमापूंजी साथ ले कर वह चुपचाप राजमहल से निकल चली और झपटती हुई उसी ओर बढ़ चली जिधर मोगलसेना गई थी।

तीसरा परिच्छेद।

समर चतुर मुबारक।

बड़े भारी अजगर (सांप) की भांति रेंगती रेंगती वह घोड़सवार सेना पहाड़ी पथ पर चल निकली। और जिस दर्रे के बगल वाले पहाड़ पर चढ़

कर मानिकलाल राजसिंह से भेंट कर आया था, उसी दर्रे में वह सेना बिल में घुसते हुए बड़े अजगर की भांति घुसी। घोड़ों की अनगिनतिन टापों की टपटप आवाज पहाड़तली में गूंजने लगी। यहां तक कि उस सुनसान पहाड़तली में घोड़सवारों के हथियारों की हलकी आवाज़ भी रोंगटे खड़े करनेवाली प्रतिध्वनि का कारन हो उठी। बीच बीच में घोड़ों की हिनहिनाहट और सवारों की चिल्लाहट भी बड़ी भयावनी जान पड़ती थी। पहाड़तली में जितने लतर पौधे थे, उन सभों के पत्ते आवाज़ की गूंजन से कांपने लगे। छोटे छोटे बनैले पशु पक्षी कीड़े मकोड़े जो उस सूनसान जगह में निडर हो कर बसेरा बनाए हुए थे, वे सब के सब जी छोड़ कर वहां से भाग चले। इस भांति पहाड़तली को उथल पुथल करती हुई उस घोड़सवार सेना की पांति उस दर्रे में घुसी। तब एकाएक एक बड़े भारी धमाके की आवाज़ हुई। जहां पर वह आवाज हुई, उस जगह के घोड़सवार थोड़ी देर तक सन्नाटे में आ कर ठिठक रहे। उन लोगों ने देखा कि पहाड़ की चोटी पर से लुढ़क कर एक बड़ा भारी पत्थर का ढोंका सवारों के आगे आ गिरा। जिस के झोंटे में आ कर एक सवार कुचल मरा और एक घायल हुआ।

पत्थर के गिरने का भेद भी विचारे सवार न समझने पाए थे, कि देखते देखते उन के ऊपर फिर पत्थर का ढोंका खिसल पड़ा। फिर एक, दो, तीन, चार; फिर धीरे धीरे दस, बीस, पचीस, तीस, चालीस, पचास; और फिर तो एकदम से सौ सौ छोटे बड़े पत्थर के ढोंके बरसने लगे। जिन से अनगिनतिन सवार और घोड़े दरकचर गए और बहुतेरे घायल हुए; और सभों ने सकरे रास्ते पर ढेर हो कर एकदम से रास्ता रोक लिया। इस हुल्लड़ में घोड़े घबड़ा कर अपने अपने सवारों को लिए हुए भागने के लिए खूब उछल कूद करने लगे, पर आगे पीछे का दोनों पथ सिपाहियों की रेलापेली से बिलकुल रुका हुआ था—यहां तक कि उस धराचौकड़ी में घोड़े के ऊपर घोड़े और सवार के ऊपर सवार चढ़ने लगे और सिपाही लोग आपस ही में तलवार चला कर रास्ता साफ़ करने लगे। सिलसिला एकदम से टूट गया और फौज में खूब ही हल्ला गुल्ला मचा।

इसी गड़बड़चौथ के समय मानिकलाल ने कहारों को ललकार कर कहा—

"कहार लोगों! होशियार हो जाओ! इसी बाएं रास्ते से पालकी ले चलो।"

जहां पर राजकुमारी का डोला था और मानिकलाल उस डोले के पीछे डटा था, ठीक उसी के आगे ही यह हुल्लड़ मचा। उस समय कहार लोग अपनी२ जान बचाने के लिये छटपटा रहे थे, क्योंकि घोड़े पीछे हट हट कर उन सभों को कुचले डालते थे। पाठकों को स्मरन होगा कि इस पहाड़ी पथ के बाएं ओर हो कर एक रुक्के का रास्ता निकल गया था। वह इतना सकरा था कि उस में एकबार एक ही सवार घुस सकता था, उसी दर्रे के पास जब फौज के बीचों बीच जाता हुआ राजकुमारी का डोला पहुंचा था, तभी यह बखेड़ा खड़ा हुआ था। क्योंकि राजसिंह ने ऐसा ही बंदोबस्त बांध रक्खा था। उन्हीं के सिखलाए पढ़ाए मानिकलाल ने जान जाने के डर से कांपते हुए कहारों को वही पथ दिखला दिया। उस की बात सुनते ही कहार लोग अपनी और राजकुमारी की जान बचाने के लिये चुटपट उस दर्रे में पालकी लिये हुए घुस पड़े।

साथ ही साथ घोड़े पर चढ़ा हुआ मानिकलाल भी उसी दर्रे में घुस गया। तब तो पासवाले सवारों ने देखा कि—"जान बचाने लायक यहां पर एक यही राह है।" यह सोच कर एक दूसरा सवार भी मानिकलाल के पीछे पीछे उसी दर्रे में घुसने लगा। ठीक उसी समय ऊपर से एक बड़ा भारी पत्थर का ढोंका लुढ़कता पुढ़कता और अपनी धड़धड़ाहट से पहाड़-तली को कँपाता हुआ आ कर उसी दर्रे के मुहाने पर अड़ गया। उस की चपेट से वह सवार, जो मानिकलाल के पीछे घुसा जाता था, घोड़े के साथ ही दरकचर गया और दर्रे का मुहाना अच्छी तरह रुक गया। फिर दूसरा कोई सवार उस दर्रे में न घुस सका, और अकेला मानिकलाल ही डोले के साथ साथ अपनी सोची हुई राह से जाने लगा।

सेनापति हसनअली खां, मनसबदार, उस समय सारे घोड़सवारों के पीछे था, और दर्रे के मुहाने पर जब सवार पहुंचे तो वह उस मुहाने

पर खड़ा हो कर उस सकरीले रास्ते से सवारों के सिलसिलेवार घुसने का बन्दोबस्त करता था। फिर सारी फौज़ के घुस जाने पर वह पीछे पीछे आता था। उस ने देखा कि एकाएक सवारों का रिसाला बड़ा गोलमाल करता हुआ पीछे हट रहा है। पर उस बखड़े का सबब वह जिस से पूछे कोई ठीक ठीक जवाब न दे। तब वह सवारों को डांट कर फिराने लगा, और असल हाल जानने के लिये आगे बढ़ा।

पर तब तक फौज रुकी नहीं। यह बात पहिले ही कही जा चुकी है कि इस पहाड़ के दाहिनी ओर वाला पहाड़ बहुत ही ऊंचा और बड़ा बीहड़ था, और उस की चोटी एक भांति से रास्ते के ऊपर ही झुल पड़ी थी, जिस से रास्ता अंधेरा हो रहा था। राजपूतों ने वहां पर अच्छी तरह खोज ढूंढ़ कर और रास्ता निकाल कर अपने गरोह में से पचास आदमियों को उस पहाड़ की चोटी पर चुपचाप बैठा दिया था। उन में एक एक आदमी दूसरे से चालीस पचास हाथ दूर बैठा था। उन सभों ने राता-राती पत्थर के ढोंकों को बटोर बटोर कर अपने अपने बैठने की जगह अटंबार लगा लिया था। इस समय वेही पचासों आदमी एक एक बारमें में पचास पचास ढोंके नीचे के सवारों पर बरसाने लगे। और एक एक बेर की मार में पचास पचास सवार वा घोड़े घायल होने वा मरने लगे। कौन पत्थर बरसा कर मार रहा है, इसे सवार लोग देख नहीं सकते थे। यदि वे लोग पत्थर बरसानेवालों को देख भी लेते, तो भी उन की कुछ कर नहीं सकते थे। क्योंकि ऊंचे और बीहड़ पहाड़ की चोटी पर बैठे हुए दुश्मनों पर क्योंकर हथियार चलाया जा सकता है? इसलिये बिचारे मोगल सवार लोग सिवा भागने के और कुछ भी उस समय नहीं करना चाहते थे। जो हजार सवार डोले के आगे थे, उन में से जो मरने और घायल होने से बचे, उन सभों ने भाग भाग कर और दर्रे के मुहाने से बाहर निकल निकल कर अपनी अपनी जान बचाई।

पचास राजपूत दहिनी ओर वाले ऊंचे पहाड़ पर बैठे बैठे पत्थर बरसाते थे—और पचास राजपूतों को साथ लिये हुए स्वयं राजसिंह बाईं ओर वाले निचले पहाड़ की चोटी पर लुके थे। वे सब अभी तक कुछ नहीं करते थे, पर अब उन लोगों के भी काम करने का समय आया। जहां पर पत्थरों

के बरसने से पूरी विपत मची हुई थी, वहां मुबारक डँटा हुआ था। उस में पहिले तो सवारों का सिलसिला ठीक कर के पहाड़तली की उस सकरीली राह से निकलने का बहुत कुछ बन्दोबस्त किया, पर जब उस ने देखा कि एक दूसरे और सकरीले रास्ते से राजकुमारी की पालकी चली गई, और केवल एक ही सिपाही, उस के साथ गया, फिर साथ ही साथ दर्वाजे की तरह एक बड़े भारी ढोंके ने उस सकरीली राह का मुहाना बन्द कर लिया; तब तो उस (मुबारक) के मन में सन्देह हुआ कि इस बखेड़े की बुनियाद और कुछ नहीं है, फ़क़त किसी लुटेरे ने राजकुमारी के लूटने के लिये यह ऊधम मचाया है। यह सोच कर उस ने अपने पासवाले सवारों को ललकार कर कहा कि,—"बहादुरों! जान जाय, वह भी कबूल, मगर डोला बेहाथ न हो। चुनांचे सौ सवार डोले के पीछे पीछे छूटो! घोड़े को छोड़ो, पांव प्यादे इस पत्थर को लांघ कर पार हो जाओ—चलो, मैं भी तुम्हारे हमराह चलता हूं।"

यह कह कर वह सब से पहिले अपने घोड़े से उछल कर मुहाना रोके हुए पत्थर के ढोंके पर जा खड़ा हुआ। और उस के ऊपर से कूद कर भीतर की ओर जा रहा। उस की देखा देखी सौ ज्वान भी उस के साथ ही साथ भीतर कूद गए।

यह सब तमाशा पहाड़ की चोटी पर से राजसिंह देखते थे। जब तक उस सकरे रास्ते में एक एक कर के मोगल सिपाही घुसते रहे, तब तक तो वे (राजसिंह) कुछ न बोले; पर जब मुबारक के पीछे पीछे सौ मोगल उस दर्रे में घुस आए, तब पचास घोड़ सवार राजपूतों के साथ राजसिंह बिजली की तरह ऊपर से मोगलों के खोपड़े पर कूद कूद कर उन्हें गाजर मूली की तरह काटने लगे। एकाएक ऊपर से मार खा कर मोगलों का सिलसिला टूट गया। उन में से बहुतेरों ने उस भयावनी लड़ाई में प्रान दिये। ऊपर से उछल उछल कर राजपूतों के घोड़े मोगल सिपाहियों के सिर पर गिरते, और उन घोड़ों के नीचे जो आते, उन का कचूंमर निकल जाता। बस उन सौ मोगलों में से केवल पांच चार मोगल बचे, जिन्हें अपने साथ ले कर मुबारक उस भयावनी दरीची में से लौट पड़ा। तब राजपूतों ने उस का पीछा न किया।

मुबारक के साथ ही साथ मोगल सवारों का सा स्वांग लिये हुए मानिकलाल भी उस दरीची से बाहर निकल आया। और बाहर होते ही वह एक मुर्दे सवार के खाली घोड़े पर चढ़ कर उस बेसिलसिलेवार मोगल सेना के भीतर गायब हो गया, पर इस बात को किसी ने ताड़ा नहीं।

जिस मुहाने से मोगल सेना उस दर्रे में घुसी थी, उसी मुहाने से मानिकलाल बाहर हुआ। उस समय जिस ने उसे देखा, उस ने यही समझा कि यह भी भागा जाता है। बस मानिकलाल लश्कर से बाहर होते ही तीर की तरह घोड़ा फेंकता हुआ रूपनगर गढ़ की ओर चला।

मुबारक ने उस पत्थर के ढोंके को फिर लांघ कर और दरीची के बाहर पहुंच कर अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि—"इस पहाड़ पर चढ़ने में कुछ भी तकलीफ़ न होगी, इस वास्ते सब बहादुर घोड़े को लिये हुए इस पर चढ़ चलो। डांकू बहुत ही ख़फ़ीफ़ हैं, उन को बात की बात में नेस्तनाबूद कर डालते हैं।" यह सुनते ही पांच सौ मोगल सवार "दीन, दीन" चिल्लाते हुए घोड़े के साथ ही साथ बाईं ओर वाले निचले पहाड़ पर चढ़ चले। उन का सिपहसालार मुबारक उन के आगे था। मोगलों के साथ दो तोपें थीं, उन में से एक खैंचखांच कर पहाड़ के ऊपर चढ़ाई गई, और दूसरी छोटी तोप को मोगलों ने खींचखांच कर और उस में सिकड़ बांध और हाथी लगा कर, जिस बड़े से पत्थर के ढोंके से वह दरीचीवाला सकरा रास्ता बन्द हो गया था, उस के ऊपर उठा कर लगा दिया।

चौथा परिच्छेद।

जयशीला चंचलकुमारी।

"दीन, दीन" करते हुए पांच सौ सवार यमराज की भांति पहाड़ पर चढ़ गए। पहाड़ नीचा था, यह पहिले ही कह आए हैं, इसलिये उस की चोटी पर पहुंचने में मोगलों को देर न लगी। पर उन लोगों ने वहां पहुंच कर देखा कि 'कहीं कोई भी नहीं है।' जिस दरीची के रहने के

भीतर सौ सवारों के साथ घुस कर मुबारक हार कर लौट आया था, अब उस ने सोचा कि सब लुटेरे—वह समझता था कि वे राजपूत ही होंगे—उसी दरीची के भीतरी मुहाने पर हैं। इसलिये उस ने सोचा कि उस दरीची का दूसरा मुहाना रोक कर उन डांकुओं को नेस्तनाबूद करना चाहिए। हसनअली एक मुहाने पर तोप लगा कर बैठा ही है। यह सोच कर मुबारक ने पहाड़ के किनारे आकर देखा कि चालीस से अधिक राजपूत नहीं हैं, जो लोहू में डूबे हुए पालकी के साथ साथ उसी राह से चले जाते हैं। उस ने समझ लिया कि ये राजपूत ज़रूर इस दरीची से निकलने की राह जानते होंगे, इसलिये इन पर नज़र रख कर धीरे धीरे इन का पीछा करने से इस दरीची के दूसरे मुहाने पर पहुंच सकूंगा, फिर तो जैसी राह से ये राजपूत पहाड़ से उतरे थे, वैसा ही दूसरी राह मिल जायगी। क्योंकि राजपूत लोग पहिले ऊपर थे, पीछे उतरे, इस के हजारों निशान दिखलाई देते हैं। यह सोचकर वह राजपूतों पर नजर गड़ाए हुए धीरे धीरे उन के पीछे जाने लगा। थोड़ी देर पीछे उस ने देखा कि पहाड़ ढालुवां आ गया और सामने ही दरीची से बाहर होने का दूसरा मुहाना है। यह देखतेही उस ने अपने साथी पांच सौ सवारों के साथ तीर की तरह घोड़े दौड़ा कर और पहाड़ के नीचे उतर कर दरीची का दूसरा मुहाना रोक लिया। राजपूत लोग दरीची के घुमाव से हो कर जाते थे, इसलिये वे पहिले मुहाने पर न पहुंच सके।

मोगलों ने मुहाना रोक कर वहां तोप लगा दी और नियराते हुए राजपूतों की हंसी उड़ाने के लिये उस की एक फ़ैर दाग दी। फिर "दीन दीन" की राक्षसी ध्वनि से वह पहाड़ गूंज उठा। वह आवाज़ सुन कर दरीची के दूसरे मुहाने पर से हसनअली ने भी अपनी तोप दागी, जिस की भयावनी ध्वनि पहाड़तली में गूंज उठी।

यह रंग देख कर राजपूत लोग कांप उठे, क्योंकि उन सभों के पास तोप न थी।

राजसिंह ने देखा कि अब किसी भांति छुटकारा नहीं हो सकता, क्योंकि उन की सेना से बीसगुनी मोगल सेना दरीची के दोनों मुहानों को रोकेहुए

हैं, तीसरा पथ कोई है नहीं, केवल यमलोक का मार्ग खुला हुआ है। उन्हों ने सोच लिया कि उसी पथ से जायंगे। तब उन्हों ने अपने वीरों को इकट्ठे कर के कहा—

"भाईलोग ! जो लोग इस समय हमारे साथ हैं, उन सभों से हम सच्चे मन से क्षमा मांगते हैं। हमारी ही मूर्खता से यह विपत आई—पहाड़ से उतर कर ही हम ने यह उजड्डपन किया। अब इस दरीची के दोनों मुहाने रुकेहुए हैं, दोनों ही मुहानों पर से तोप की घहराहट सुनाई दी है। इस में संदेह नहीं है कि दोनों ही मुहानों पर हमलोगों से बीसगुने मोगल डंटे हैं; इसलिये अब हमलोगों के बचने की आशा नहीं है। न सही, जो नहीं ही बचें तो हानि क्या है ? राजपूत होकर मरने से डरता कौन है ? सब के सब मरेंगे, साथ का एक भी राजपूत जीता न बचेगा, पर यों न मरेंगे—मोगलों को मारकाट कर मरेंगे। इसलिये जो राजपूत आज अपने मरने के पहिले दो मोगलों को न काट ले, वह राजपूत नहीं है। भाई राजपूत लोग ! सुनो, इस सकरे पथ में घोड़ा नहीं चल सकता, इसलिये सब लोग घोड़े से उतर पड़ो। आओ हमलोग तलवार खैंच झपट कर तोप के ऊपर जा गिरें; एक ही झपट्टे में तोप तो हमलोगों की ही होगी, फिर देखा जायगा कि कौन राजपूत कितने मोगलों को काट कर मरता है।"

यह सुनते ही सब राजपूत चट घोड़े से कूद और तलवार खैंच कर "महाराना जी की जय" ललकारते हुए सिमट कर खड़े हो गए। उन सभों के मुखड़े पर दृढ़ प्रतिज्ञा की चमक देखकर राजसिंह ने समझ लिया कि चाहे प्रान न बचे, पर एक राजपूत भी पीठ न दिखावेगा। तब उमंग कर उन्हों ने कहा—"प्यारे भाई ! दो दो जने पांती जोड़ कर खड़े होवो।" घोड़े पर एकही एक राजपूत की पांति उस दरीची में चल सकती थी, पर अब पैदल दो दो राजपूत पांती जोड़ कर चले, उन सभों के आगे राना थे। आज मौत की पास जान कर उन का मन खिल रहा था।

उसी समय एकाएक राजपूत सेना ने दरीची को कपानेवाली और पहाड़तली में घनघोर गूंजन फैलानेवाली जयध्वनि की, "माता जी की जय, जय ! कालीमाई की जय !"

अत्यंत हर्ष उपजानेवाले कोलाहल को सुन राजसिंह ने पीछे फिर कर देखा कि यह "जयजयकार" किस ने मनाई ? सो उन्हों ने देखा कि दोनों बगल राजपूत सेना पाती जोड़े खड़ी है, और उस के बीच में कोई बड़े बड़े नैनवाली मुसकुराती हुई देवी चली आती है। अहा! उसे देख कर राना ने सोचा कि या तो किसी देवी ने मनुष्य की मूर्त्ति धारण की होगी, या विधाता ने किसी मानवी को देवी की मूर्त्ति में बनाया होगा। राजपूत सेना ने समझा कि चित्तौर की अधिष्ठात्री राजपूत कुल की रक्षा करनेवाली भगवती इस संकट के समय राजपूतों को उबारने आप इस रणस्थल पर आ पहुंची हैं। यही सोच कर उन लोगों ने जयध्वनि की थी।

राजसिंह ने देखा कि—"है तो यह मानवी, पर साधारण मानवी नहीं है।" फिर उन्हों ने अपने साथियों से कहा—

"देखो! डोला कहां है?"

एक राजपूत पीछे से बोला—

"डोला इधर रक्खा हुआ है।"

राना ने पूछा—

"देखो! डोले में राजकुमारी हैं, या नहीं?"

पीछे से एक राजपूत ने जवाब दिया—

"डोला खाली पड़ा है। श्रीराजकुमारी जी महाराज के सामने हैं।"

तब चंचलकुमारी ने सिर नवाकर राजसिंह को प्रणाम किया। राना ने पूछा—

"राजकुमारी! तुम यहां क्यों चली आई?"

चंचल ने कहा—

"महाराज! आप को प्रणाम करने मैं आई हूं। सो प्रणाम तो कर चुकी, अब आप से एक भीख चाहती हूं। मैं बकवादिन तो हई हूं। स्त्रियों की शोभा जो लज्जा, सो तो मुझ में हई नहीं; इसलिये मुझे क्षमा कीजिए, और जो भीख मैं चाहती हूं, उस में मेरी आशा मत तोड़िएगा।"

उस ने मधुरमन्द मुसकुरा कर और हाथ जोड़ कर अधीनताई से ये बातें कहीं। राजसिंह ने कहा—

"तुम्हारे ही लिये हम इतनी दूर आए हैं, इसलिये ऐसी कौन सी

वस्तु है, जो तुम्हें नहीं दी जायगी? रूपनगर की राजकुमारी! कहो, क्या चाहती हो?"

चंचलकुमारी ने फिर हाथ जोड़े हुए कहा—

"महाराज! नाम के अनुसार मेरी समझ भी बड़ी ही चंचल है, इसी लिये मैंने आप को आने के लिये लिखा था, पर मैं अपना मन आप न समझ सकी। अब मैं मोगल बादशाह के ऐश्वर्य की बात सुन कर बहुत ही मोहित हुई हूं, सो आप आज्ञा दीजिए तो मैं दिल्ली जाऊं।"

यह सुन कर राजसिंह चकपकाए और प्रसन्न भी हुए। उन्हों ने कहा—

"तुम्हें दिल्ली जाना है तो जाना, हम नहीं रोकते; पर अभी तुम न जाने पाओगी। यदि तुरंत तुम्हें छोड़ दें तो मोगल समझेंगे कि राजपूतों ने प्राण के भय से डर कर राजकुमारी को छोड़ दिया। इसलिये पहिले युद्ध हो—फिर तुम जाना। और राजकुमारी! यह तुम मत समझना कि हम तुम्हारे मन की बात नहीं समझे हैं, इसलिये हमारे जीते जी तुम्हें दिल्ली नहीं जाना होगा। बीर लोग! आगे बढ़ो।"

तब चंचलकुमारी ने जरा मुसकुरा कर कलेजा छेदनेवाले इशारे को चला कर, दहिने हाथ की कानी अंगुली की अंगूठी को बाएं हाथ की दो अंगुलियों से घुमा कर और उसे राजसिंह को दिखला कर कहा—

"महाराज! इस अंगूठी में विष भरा हुआ है। जो आप मुझे दिल्ली न जाने देंगे तो मैं विष खालूंगी।"

यह सुन कर राजसिंह हंसे और बोले—

"राजकुमारी! तुम्हारी सूरत देखते ही मैंने यह बात समझ ली थी कि तुम स्त्री जाति में धन्य हो, पर तुम जो सोच रही हो, वह बात अनहोनी है। क्योंकि आज राजपूतों को मरना ही पड़ेगा, इसलिये जब तक हमलोग न मर मिटें, तब तक के लिये तुम बंदी हो। फिर हमलोगों के जूझ जाने पर जहां जी चाहे वहां जाना।"

यह सुन कर चंचलकुमारी हंसी—और उस ने अत्यंत प्रीति से डह डह और भक्ति से भरे हुए, एकाएक ऐसा कटाक्ष वाण राजसिंह पर चलाया कि जिस की चोट रोकने में मदनान्तक महादेव जी भी असमर्थ होते। फिर वह

मन ही मन कहने लगी "बीरचूड़ामणि ! आज से मैं तुम्हारी बिना दाम की दासी हुई, यदि दिन पा कर कभी तुम्हारी दासी न बन सकूंगी, तो मैं अपने प्रान न रक्खूंगी।" फिर राना से बोली—"महाराज ! दिल्ली के बादशाह ने जिसे अपनी बेगम बनाना चाहा है, वह किसी की भी बंदी नहीं हो सकती। लीजिए, अभी मैं मोगलसेना की ओर चली; देखूं किस की सामर्थ्य है जो मुझे रोक रक्खे ?"

यह कहती हुई सजीव देवी मूर्ति सी वह चंचलकुमारी राजसिंह के बगल से होती हुई दरीची के मुहाने की ओर चली। उस समय किस की सामर्थ्य थी जो उसे छू सकता ? इसलिये कोई उसे रोक न सका और वह हंसती, अठखाती झूमती झामती जड़ाऊ गहनों से संवारी हुई वह मूरत (चंचल) मुहाने की ओर चली गई।

अकेली वह जलती आग सरीखे, झुंझलाए हुए, हथियारबंद पांच सौ मोगलसवारों के सामने जा कर खड़ी हो गई। जहां पर वही रास्ता रोकनेवाली तोप—आदमी का बनाया हुआ वज्र—आग उगलने के लिये मुंह बाए हुए रक्खी थी, उसी के आगे रत्नों से सँवारी हुई अलोक सामान्य सुंदरी जाकर खड़ी हो गई। उसे देखते ही चकपकाई हुई मोगलसेना ने समझा कि—"इस कोह में रहनेवाली कोई परी आई है।" पर उन सभों के भ्रम को चंचलकुमारी ने मनुष्य की सी बोली बोलकर दूर कर दिया। उस ने कहा

"इस सेना का सेनापति कौन है ?"

मुबारक आप मुहाने पर डँटा हुआ राजपूतों की बाट जोह रहा था। उस ने कहा—

"यह सारी फ़ौज़ इस वक्त इसी नाचीज़ के तहत में है, आप कौन हैं ?"

चंचलकुमारी ने कहा—

"मैं एक साधारण स्त्री हूं। आप से कुछ भीख चाहती हूं, यदि अकेले में चल कर मेरी बात सुनें, तो मैं कहूं।"

मुबारक ने कहा—

"अगर ऐसा इरादा है तो इसी दरीची में पिछले पैर जरा आगे बढ़ चलिए।"

यह सुनते ही चंचलकुमारी घूम कर दरीची में कुछ दूर लौट आई–उस के पीछे पीछे मुबारक भी आया।

जहां पर बात करने से दूसरा कोई न सुन सके, ऐसी जगह आ कर चंचलकुमारी कहने लगी—

"मैं रूपनगर की राजकन्या हूं, मेरे साथ ब्याह करने की इच्छा कर के मुझे ले जाने के लिये यह सेना बादशाह ने भेजी है। क्या आप मेरी बात का विश्वास करते हैं?"

मुबारक–"इस बात का यक़ीन मुझे आप को देखते ही हो चुका है।"

चंचल—"हां, तो मैं मोगल के साथ ब्याह नहीं किया चाहती, क्योंकि मैं समझती हूं कि यदि मोगल से ब्याह करूं तो अपने धर्म से गिर जाऊंगी। पर मेरे पिता में तो इतना बल है नहीं, कि वे बादशाह की आज्ञा टाल सकें। इसीलिये उन्होंने मुझे आपलोगों के साथ किया। जब मैंने पिता से अपने बचाव की कोई सूरत न देखी तो राजसिंह के पास दूत भेजा। अब सौभाग्य से ही, या दुर्भाग्य से वे केवल पचास राजपूतों को साथ ले कर बादशाही फ़ौज का मुक़ाबला करने और मुझे उबारने आए हैं। उन लोगों की भुजा में कितना बल है, इसे तो आप लोगों ने अच्छी तरह से देख लिया होगा?"

मुबारक ने चिहुंक कर कहा–"क्या कहा आप ने! सिर्फ़ पचास राजपूतों ने इतने मोगलों को काट डाला?"

चंचल–"इस में अचरज की कौन सी बात हुई! मैंने सुना है कि हलदी घाट में भी ऐसी ही एक आध छोटी मोटी लड़ाई हुई थी। अच्छा, जो कुछ हो, सुनिए! इस समय राजसिंह आप लोगों से परास्त हुए, उन्हें हारा हुआ देख कर ही मैं आप से आप आपलोगों के पास चली आई हूं। बस मुझे दिल्ली ले चलिए, अब लड़ाई भिड़ाई का कुछ काम नहीं है।"

मुबारक ने कहा,–"अब मैंने समझा, आप अपना आराम छोड़ कर राजपूतों की जान बचाया चाहती हैं। बहरकैफ़! मगर क्या उन लोगों की भी ऐसी ही ख़्वाहिश है?

चंचल–"यह क्या कभी हो सकता है! मुझे आपलोग ले चलेंगे, तौ भी

वे लड़ने से मुंह न मोड़ेंगे। इसलिये मैं यह आप स भीख की भांति चाहती हूं कि आप मेरे साथ एक राय हो कर राजपूतों की जान बचावें।"

मुबारक,—"बेहतर, यह हो सकता है; मगर इस ठगी की सज़ा उन कंबख्तों को ज़रूर दी जायगी। मैं उन सभों को कैद कर के दिल्ली लेता चलूंगा।"

चंचल—"पर ऐसा तो कभी होही नहीं सकता। उन लोगों को आप जान ले सकते हैं, पर उन्हें कैद नहीं कर सकते। उन सभों ने मरने मारने की पूरी प्रतिज्ञा कर ली है। वे मर मिटेंगे, पर कैद में न आवेंगे।"

मुबारक—"यह मैं बखूबी समझता हूं, मगर आप तो ज़रूर दिल्ली चलेंगी न ? इस में तो कोई दरोग़ नहीं है ?"

चंचल—"हां; अभी तो आप लोगों के साथ हो लूंगी, पर इस की प्रतिज्ञा नहीं कर सकती कि दिल्ली तक पहुंचूंगी या नहीं।"

मुबारक—"यह क्यों ?"

चंचल—"आप लोग लड़भिड़ कर मरना जानते हैं, और हमलोग स्त्री जाति हैं, तो क्या हमलोग बिना लड़ाई भिड़ाई के ही मरना नहीं जानतीं ?"

मुबारक—"हमलोगों के दुश्मन हैं, इसी वजह से हमलोग कटते मरते हैं, मगर जहान में आप का कौन दुश्मन है ?

चंचल—"मैं आप ही—"

मुबारक—"हमलोगों के दुश्मनों के पास तो तरह तरह के हर्बे हैं, मगर आप के पास ?"

चंचल—"विष !"

मुबारक—"कहां है ?"

इतना कह कर वह राजकुमारी के मुंह की ओर ताकने लगा। यदि मुबारक के अलावे कोई दूसरा होता तो वह यही समझता कि इन कटीले नैनों के अलावे और कहां पर विष रह सकता है ? पर मुबारक ऐसे नीच स्वभाव का आदमी न था, वरन वह भी राजसिंह की भांति सच्चा बीर था। उस ने कहा—

"अम्मा जान ! आप खुदकुशी क्यों करती हैं ? अगर आप दिल्ली

न जाना चाहें तो हमलोगों की क्या मज़ाल जो आप को ले जा सकें। खुद बादशाह सलामत भी अगर यहां पर मौजूद रहते तो भी आप के ऊपर किसी तरह की ज्यादती न कर सकते, तो फिर हमलोगों की क्या हक़ीक़त है? आप खातिरजमा रखिए,—मगर इन राजपूतों ने बादशाही फ़ौज़ के साथ सर्कशी की है, इसे मैं मोगलफ़ौज़ का सिपहसालार हो कर क्योंकर मुआफ़ करूं?"

चंचल—"क्षमा करने का कुछ काम नहीं है, युद्ध करिए!"

उतने ही में राजपूतों को साथ लिये हुए राजसिंह वहां पर पहुंच गए, उन्हें देख कर राजकुमारी कहने लगी—

"लड़ाई कीजिए, राजपूतिनें भी मरना जानती हैं।"

मोगलसेनापति के साथ निर्लज्ज चंचलकुमारी क्या बातें कर रही है, इसी के सुनने के लिये राजसिंह उस के पास आ कर खड़े हो गए। उस समय उस ने उन की ओर हाथ फैला और हंस कर कहा—

"महाराजाधिराज! आप की कमर में जो तल्वार लटकती है, उसे पारितोषिक की भांति जरा इस दासी को दे तो दीजिए?—"

राजसिंह ने हंस कर कहा—

"समझा हम ने; तुम सचमुच भैरवी हो।" यह कह कर उन्हों ने अपनी कमर में लटकती हुई तल्वार म्यान से निकाल कर राजकुमारी के हाथ में दे दी।

यह देख कर मुबारक जरा मुसकुराया, पर राजकुमारी की बातों का उस ने कुछ जवाब न दिया; केवल राजसिंह के मुंह की ओर निहार कर कहा—

"उदयपुर के जवांमर्द लोग कब से औरतों के हाथों अपनी रखवाली कराने लगे हैं?"

यह सुनते ही राजसिंह के जलते हुए नेत्रों से आग की चिनगारी निकलने लगी। उन्हों ने कड़क कर कहा—

"जब से मोगलबादशाहों ने बिचारी अबलाओं पर अत्याचार करना आरम्भ किया है, तभी से राजपूतों की कन्याओं के बाहु में बल हुआ है।"

फिर उन्हों ने सिंह की भांति गर्दन टेढ़ी कर और अपने साथियों की ओर घूम कर कहा कि "राजपूत लोग वाक्‌युद्ध में चतुर नहीं हैं, और हमें इतना समय भी नहीं है कि इन तुच्छ मोगलों के साथ वाक्‌युद्ध में उसे गँवाया करें; इसलिये चींटियों के समान इन मोगलों को मसल डालो।"

इतनी देर तक बरसाऊँ घटा की भांति दोनों ओर की सेना सन्नाटा मारे खड़ी थी, क्योंकि अपने नायक (स्वामी) की आज्ञा बिना कोई भी लड़ने के लिये आगे नहीं बढ़ सकता था। पर अब राना की आज्ञा पाते ही "माताजी की जय" का कोलाहल करते हुए राजपूत लोग जल के प्रवाह की भांति मोगलसेना पर टूट पड़े। इधर मुबारक का इशारा पाते ही मोगल भी "अल्लाह-वो-अकबर" रटते रटते राजपूतों के वार के रोकने पर उतारू हुए; पर एकाएक दोनों ओर की सेना ठिठक रही। इस का कारण यह था कि दोनों सेनाओं के बीचोंबीच तल्वार उठाए हुई चंचलकुमारी खड़ी थी, और वहां से टसकती न थी। वह चिल्लाकर कहने लगी—

"जब तक एक ओर के लोग लड़ाई से मुंह न मोड़ेंगे, तब तक मैं यहां से जरा भी न टसकूंगी। बस पहिले मुझे काटे बिना कोई ओर वाला भी हथियार न चलाने पावेगा।"

राजसिंह ने चिढ़कर कहा—

"तुम यह बड़ा अनुचित काम कर रही हो, अपने हाथ से तुम राजपूत-कुल में क्यों कलंक लगा रही हो? लोग यही कहेंगे कि आज एक स्त्री की सहायता से राजसिंह के प्रान बचे।"

चंचल—"महाराज! आप क्यों व्यर्थ बिगड़ रहे हैं? आप को मरने से रोकता कौन है? बात यह है कि पहिले मैं मरना चाहती हूं। क्योंकि जो इस बखेड़े की जड़ है, पहिले उसी का मर जाना उचित है।"

चंचल अपनी जगह से एक अंगुल न टसकी, जिन मोगलों ने बन्दूकें उठाई थीं, उन्हों ने उसे नीची कर ली। मुबारक चंचलकुमारी के ढंग को देखकर मोहित हो गया और तब दोनों सेनाओं की ओर घूम कर उस ने कहा—

"मोगल बादशाह औरतों के साथ जंग नहीं करते, इसलिये मैं कहता हूं कि अब हमलोग इस नाजनी के आगे शिकस्त कबूल कर लड़ाई से हाथ

खैंच लौट चलें। मैं उम्मीद करता हूं कि राना राजसिंह के साथ जंग करने में फतहयाबी या नाकामयाबी का फैसला दूसरे मौके पर कर लिया जायगा और साथ ही राना साहिब से मेरी यह गुज़ारिश है कि फिर कभी जंग के मौके पर औरतों को साथ न लावें।"

मुबारक की इस दिलेरी की बातें सुनकर चंचलकुमारी उस के लिये सोच करने लगी। उस समय मुबारक उस के पास ही खड़ा था और अपने घोड़े पर सवार हुआ चाहता था। उस की ओर घूम कर चंचलकुमारी ने कहा—

"ख़ां साहब! मुझे क्यों छोड़े जाते हैं? मुझे लिवा ले जाने ही के लिये तो आपलोगों को बादशाहदेहली ने भेजा है; फिर यदि आप मुझे न ले जायंगे तो बादशाह को क्या जवाब देंगे?

मुबारक ने कहा—

"बादशाह से भी बढ़ कर एक और कोई शाहंशाह हैं, इस बात का जवाब मैं उन्हें देलूंगा।"

चंचल—"यह बात तो आप ने परलोक की कही, पर इस लोक के बादशाह की खफ़गी का खयाल भी तो आप को करना चाहिये?"

मुबारक—"मुबारकअली इस सरज़मी पर किसी का भी खौफ़ नहीं रखता। खुदा आप को खुश व खुर्रम करे, मैं अब रुख़सत होता हूं।"

इतना कह कर वह अपने घोड़े पर सवार हुआ, और अपनी फौज को लौटने का हुक्म सुनाया ही चाहता था कि अचानचक उस ने अपने पीछे हजारों बन्दूकों की आवाज सुनी। एकदम से सैकड़ों मोगल लोट गए, मुबारक ने देखा कि "यह अजीब बला कहां से नमूद हुई?"

पांचवां परिच्छेद।

हरण और अपहरण में मानिक लाल बड़ा चतुर।

मानिक लाल पहाड़ी दरीची में से निकलते ही घोड़ा दौड़ाता हुआ एकदम से रूपनगर गढ़ में जा पहुंचा। वहां के राजा के तहत में कुछ सिपाही थे, वे मुशाहरा नहीं पाते थे, बरन उन सभों ने राजा से जमीन पाई थी और उसी

को जोत बो कर अपना घरबार चलाते थे। जब राजा को काम पड़ता तब वे सब बुलाए जाते और ढाल, तलवार, लाठी, सोंटा ले कर पहुंच जाते थे। सभों के पास एक घोड़ा भी था। मोगलसेना के आने पर राजा ने उन सभों को बुला लिया था। जिस का जाहिरा मतलब तो यह था कि मोगल-सेना का आदर और रखवाली करना—और छिपा हुआ मतलब यह था कि यदि एकाएक मोगलसेना कुछ उपद्रव मचावे तो उस का रोकना। बुलाते ही वे सब राजपूत सिपाही ढाल, तलवार और घोड़े ले ले कर रूपनगर में आए, और राजा ने उन सभों को अपने शस्त्रागार में से अच्छे अच्छे हथियार दे कर उन्हें सँवारा। उन सभों ने भांति भांति की सेवकाई में लग कर मोगल-सिपाहियों के साथ हंसी दिल्लगी में कई दिन बड़े चैन से काटे। फिर पीछे जिस दिन सवेरे मोगल से अपनी छावनी उठा कर और राजकुमारी को ले कर बिदा हुई, उस दिन रूपनगरवाले सिपाहियों ने भी अपने अपने घर लौटने की आज्ञा पाई। तब उन सभों ने अपने अपने घोड़े कसे और फिर राजा के हथियार उस (राजा) को लौटा देने के लिये राजमन्दिर पर सब जमा हुए। उस समय राजा आप उन सभों को इकट्ठा कर के मीठी मीठी बातों से उन की बिदाई कर रहा था, इतने ही में अंगुलीकटा मानिक लाल पसीने में डूबा हुआ घोड़ा दौड़ाए हुए वहां जा पहुंचा।

उस का भेष मोगल सवारों ही का सा था। एक मोगल सवार को घबड़ाया हुआ गढ़ की ओर लौटता देख सब के सब चौंक उठे। राजा ने आप ही उस से घबड़ा कर पूछा—

"क्या ख़बर है?"

मानिक लाल ने लम्बी सलाम कर के कहा—

"महाराज! बड़ी भारी आफ़त आई है। पांच हज़ार लुटेरों ने राजकुमारी के डोले को घेर लिया है। जनाब हसनअली ख़ां बहादुर ने मुझे हुज़ूर की खिज़मत में भेजा है और यह अर्ज़ किया है कि मैं तो अपनी जान को हथेली पर रख कर इन लुटेरों के साथ जंग कर ही रहा हूं, मगर बग़ैर कुछ फ़ौज़ की मदद के लुटेरों पर फ़तहयाबी हासिल करना नामुमकिन है। लिहाज़ा आप से वह कुछ फ़ौज़ी मदद चाहते हैं, आगे जो इर्शाद हो।"

राजा ने घबड़ा कर कहा—"बड़े भाग की बात है कि हमारी सेना सजीसजाई लैस ही खड़ी है।' फिर उस ने अपने सिपाहियों से कहा—"तुम लोगों के घोड़े कसेकसाए तैयार ही हैं, और हथियार हाथ में हैं, बस चटपट तुम लोग घोड़े पर सवार हो कर लड़ने चलो, हम स्वयं तुम लोगों के साथ चलते हैं।"

इस पर मानिक लाल ने कहा—"अगर इस ताबेदार की बेअदबी मुआफ़ हो तो मैं यह अर्ज़ करता हूं कि फ़िलहाल मैं इतनी फौज को अपने हमराह ले कर आगे बढ़ूं, पीछे से कुछ और सिपाहियों को बटोरबटार कर हुज़ूर अपने साथ लावें तो बेहतर हो। वजह इस की यह है कि लुटेरे पांच हजार से ज्यादः हैं, चुनांचे और भी ज्यादः फौज की मदद की जरूरत है, वर्नः खैर न होगी।"

मोटी समझवाला राजा मानिक लाल की बातों में आ गया। तब हजार सिपाहियों को अपने साथ ले वह आगे बढ़ा, और राजा और सिपाहियों के बटोरबटार का उपाय करता हुआ अपने गढ़ पर ही रह गया। खिलाड़ी मानिक लाल उसी रूपनगरवाले सिपाहियों को लिये दिए युद्धक्षेत्र की ओर बढ़ा।

मार्ग में जाते जाते मानिक लाल ने एक छोटी मोटी रकम का फायदा उठाया। रास्ते के किनारे एक पेड़ की छाया में एक औरत पड़ी हुई थी, जो देखने से रोगिन मालूम देती थी। सवारों को आते देख वह उठ बैठी। उस ने खड़े होने की इच्छा की, शायद भागने के लिए, पर कमजोरी के सबब से खड़ी न हो सकी। उसे बहुत ही काहिल और दुखिया देख कर मानिकलाल अपने घोड़े से उतर पड़ा और उस के पास गया। पास जा कर उस ने देखा कि यह स्त्री बहुत ही सुन्दर है। फिर उस ने पूछा—

'तुम कौन हो? यहां पर इस तरह क्यों पड़ी हो?"

युवती स्त्री ने कहा—"आपलोग किस की फौज में हैं?"

मानिक लाल ने कहा—"मैं राना राजसिंह का चाकर हूं।"

युवती बोली—"और मैं रूपनगर की राजकुमारी की टहलुई हूं।"

मानिक—"तो फिर यहां पर इस दशा में क्यों पड़ी हो?"

युवती—" निगोड़े मुगल राजकुमारी को दिल्ली लिये जाते हैं। मैं भी उन के साथ जाया चाहती थी, पर राजकुमारी मुझे अपने साथ लेजाने में राजी न हुई और मुझे छोड़ गईं। इसी से मैं पांव घसीटती हुई ही उन के पास जाती थी –"

मानिक लाल ने कहा –"इसी से थक कर तुम राह में पड़ी थीं ?"

निर्मल कुमारी ने कहा—"बड़ी लंबी राह तय की है, अब चला नहीं जाता।"

रूप नगर से वहां तक का रास्ता, जहां पर कि निर्मल पड़ी थी, कुछ बहुत न था, पर वह तो कभी पांवप्यादे राह चली ही नहीं थी, इसलिये उस विचारी के लिये उतना ही रास्ता बहुत था।

मानिक—"तो अब क्या करोगी ?"

निर्मल—" यहीं पर मर रहूंगी, और क्या करूंगी ?"

मानिक—" छिः, छिः ! मरती क्यों हो ? रामकुमारी के पास क्यों नहीं चलतीं ?"

निर्मल –" किस तरह चलूं ? तुम नहीं देखते कि मुझ से अब चला नहीं जाता ?"

मानिक—" घोड़े पर चढ़कर चलो न !"

यह सुनकर निर्मल मुसकुराई और बोली—" ऐं ! घोड़े पर ?"

मानिक—" हां ! हां ! घोड़े पर; हर्ज क्या है ?"

निर्मल–"मैं क्या घोड़सवार हूं ?"

मानिक–" जो बन जाओ तो क्या बुराई है ?"

निर्मल—" इस बात से भी मैं नहीं हटती, पर एक बखेड़ा तो यह है कि मैं घोड़े पर चढ़ना नहीं जानती।"

मानिक—"बस इतनी ही बात के लिये तुम्हें अंटकना न पड़ेगा, आओ, मेरे घोड़े पर चढ़लो ?"

निर्मल –" तुम्हारा घोड़ा क्या कल का है, या मिट्टी का ?"

मानिक—" घबड़ाओ मत, मैं पकड़े रहूंगा।"

इतनी देर तक तो लाज छोड़ कर निर्मल मानिक के साथ चुहल कर रही थी, पर मानिक की पकड़नेवाली बात सुनकर उस ने लजा कर मुंह

फेर लिया, फिर मानिक की ओर देख और भौंवें तान कर और झिझक कर कहा—

"जाइए, आप अपना काम देखिए, और मैं इसी पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी। राजकुमारी के साथ मैं भेंट नहीं किया चाहती।"

मानिक लाल ने देखा कि यह औरत बड़ी ही सुंदर है। सो वह अपनी लालच को सम्हाल न सका और बोला—

"सुनो तो जी! तुम्हारा व्याह हुआ है?"

चुहलबाज निर्मल मानिक का ढंग देख कर हंस पड़ी और बोली—

"नहीं।"

मानिक—"अच्छा, तुम कौन जात हो?"

निर्मल—"मैं राजपूतिन हूं।"

मानिक—"मैं भी राजपूत हूं, मेरी भी घरवाली नहीं है। मेरी एक छोटी सी लड़की है उस की मां बनाने के लिये मैं एक सुंदर स्त्री खोज ही रहा था, अच्छा हुआ कि भाग्यों से तुम मिल गईं। अब बोलो तुम मेरी बेटी की मां बनोगी? मेरे साथ व्याह करोगी? यदि ऐसा विचार हो तो फिर मेरे साथ ही साथ एक ही घोड़े पर चढ़ चलने में क्या डर है?"

निर्मल—"तुम कसम खाओ?"

मानिक—"क्या कसम खाऊं?"

निर्मल—"अपनी तल्वार छू कर इस बात की कसम खाओ कि मेरे साथ जरूर व्याह करोगे।"

यह सुनते ही मानिक लाल ने तल्वार छू कर क़सम खाई कि "जो आज की लड़ाई में जीता बचा तो तुम्हारे साथ जरूर व्याह करूंगा।"

निर्मल यह सुनते ही खड़ी हो गई और मुसकुरा कर बोली—"तो चलो, घोड़े पर चढ़ूं।"

तब मानिक लाल ने बड़ी उमंग के साथ उसे घोड़े पर चढ़ा कर आप भी उस के पीछे आसन जमाया और बड़ी सावधानी से उसे पकड़े हुए घोड़ा छोड़ा।

हम समझते हैं कि यह कोर्टशिप हमारे पाठकों को अच्छी न लगी होगी,

पर हम करें तो क्या करें ? तब ऐसी कोर्टशिप को कोटि कोटि धिक्कार है कि जिस में न तो कुछ प्यार या मुहब्बत की बातें हुईं, न बहुत दिनों के याद किये हुए प्रेम की बातों के लच्छे छूटे, और न " हे प्रानप्यारे, हे कलेजा, हे दिलवर, हे प्यारी, हे जीवन प्रानअधारी " ही की रट लगी; बस, जब यह सब कुछ भी न हुआ तो ऐसी कोर्टशिप को धिक्कार है !!!

छठां परिच्छेद ।

फलभोगी राना ।

युद्धक्षेत्र के पासवाली एक निराली जगह में निर्मल को उतार कर और वहीं पर ठहरी रहने के लिये उसे समझा कर मानिक लाल एकदम से मुबारक के पीछे जा पहुंचा, जहां पर राजसिंह और मुबारक की लड़ाई होती थी।

वह, यह नहीं देख गया था कि यहां पर राजसिंह और मुबारक की मुठभेड़ होगी, पर दरीची में राजसिंह के घुसने से उस के जी में एकाएक धड़का पैदा हुआ कि कहीं मोगल लोग इस का दोनों मुहाना रोक कर राजसिंह की धज्जियां न उड़ा दें। इसीलिये वह रूपनगर कुछ सिपाहियों की कुमक लाने के लिये गया था। और इसीलिये वह पहिले ही उसी ओर रूपनगर की सेना को लिये हुए पहुंचा, जिधर मुबारक की फ़ौज़ की पीठ थी। उस ने आते ही देख लिया कि अब राजपूतों के प्रान हथेली पर नाच रहे हैं, और उन के मरने में अब बहुत देरी नहीं है। यह देखते ही उस ने मुबारक की सेना की ओर उंगली उठा कर रूपनगरवाले सिपाहियों को ललकारा कि—

" देखो, यही हरामज़ादे लुटेरे हैं, मारो—इन कंबख्तों को। "

इस पर रूपनगर के सिपाहियों में से कोई कोई बोल उठे कि—" ये तो मुसलमान हैं ! "

मानिक लाल ने झिड़क कर कहा—" क्या मुसलमान डाकू नहीं होते ? दुनियां के सारे बुरे काम क्या हिन्दुओं ही के पाले पड़े हैं ? मारो, मारो, इन बेईमानों को। "

उस की आज्ञा पाते ही रूपनगर के हजार जवानों की हजार बंदूकें एक साथ दनदना उठीं।

आवाज़ सुनते ही मुबारक ने फिर कर देखा कि न जाने कहां से हजार घोड़सवारों ने आकर अपने ऊपर पीछे से वार किया। बस, फिर क्या था ? मारे घबड़ाहट के फिर मोगलों में लड़ने का हौंसला न रहा, और जिस की जिधर सींग समाई, वह उसी ओर दुम दबा कर भाग निकला। हज़ार सिर पटकने पर भी मुबारक अपने भगेड़ू मोगल सिपाहियों को रोक न सका। तब तो राजपूत लोग "माता जी की जय" कहते हुए उन भग्गू मोगलों के पीछे लग दौड़े।

मुबारक की घबड़ाई हुई फौज तितराबितर हो पहाड़ पर चढ़ कर भागने लगी। और रूपनगर की सेना उस के पीछे लगी हुई पहाड़ पर चढ़ने लगी। मुबारक अपनी फौज को लौटाने के लिये बड़ी तेजी से लपका, पर बीच रास्ते ही में न जाने वह अपने घोड़े के साथ एकाएक कहां गायब हो गया।

उसी अवसर में मानिक लाल ने चकपकाए हुए राजसिंह के आगे बढ़-कर प्रणाम किया। राजा ने पूछा—

"यह कैसी लीला हो गई ? मानिक लाल ! हमारी समझ में तो कुछ भी नहीं समाता, कि यह कैसा इन्द्रजाल हो गया, तुम कुछ इस का भेद जानते हो ?"

इस पर मानिकलाल ने हंसकर कहा—"हां, इस उत्पात की जड़ मैं ही हूं। जब मैंने देखा कि श्रीमहाराज इस दरीची में उतर आए हैं, तो मैंने समझ लिया कि अब सत्यानाश होने में कोई कसर नहीं है। यह सोचते ही अपने स्वामी (आप) की रक्षा करने के लिये मुझे फिर एक नई जूआ-चोरी करनी पड़ी।"

यह कह कर उस ने जो कुछ ढंग रचा था, उसे थोड़े में कह सुनाया। जिसे सुन कर राना बहुत ही गद्गद हो गए और उन्हों ने उसे गले से लगा कर कहा—"मानिक लाल ! तुम सच्चे स्वामिभक्त हो। इस समय तुम ने वह काम किया है कि यदि कभी हम जीतेजागते उदयपुर पहुंच सकेंगे तो

तुम को इस सेवा का भरपूर पारितोषिक देंगे। पर तुम ने इस समय हम को एक बड़ी भारी अभिलाषा पूरी करने से रोक रक्खा; नहीं तो आज काफिर मुसल्मानों को हम यह दिखला देते कि राजपूत लोग क्योंकर मरते हैं।"

मानिक लाल ने कहा—"महाराज! गीदड़ सरीखे मोगलों को सज़ा देने के लिये आप के बहुतेरे टहलुए पड़े हैं। तो फिर इस अदने काम में आप के हाथ दुखाने का क्या काम है? अब उदयपुर का रास्ता साफ है, और राजधानी छोड़ कर पहाड़ पहाड़ घूमने का भी अब कोई काम नहीं है। अब आप श्रीराजकुमारी जी को साथ ले कर उदयपुर पधारें।"

राजसिंह ने कहा—"हमारे कई साथी अभी तक उस ओरवाले ऊंचे पहाड़ पर बैठे हैं, उन सभों को भी वहां से उतार कर साथ लेना चाहिए।"

मानिक लाल ने कहा—"मैं उन लोगों को लेता आऊंगा, आप आगे बढ़िए रास्ते में हमलोगों के साथ भेंट हो जायगी।"

इस पर राना राजी हुए और चंचलकुमारी को ले कर उदयपुर की ओर चले।

सातवां परिच्छेद।

स्नेहवती बूआ।

राना को बिदा कर के मानिक लाल रूपनगरवाली सेना के पीछे पीछे पहाड़ पर चढ़ गया। रूपनगरवाली सेना से खदेड़े हुए मोगल लोगों में से जिस का जिधर मुंह पड़ा, वह उधर ही से अपनी जान ले कर भागा। तब मानिक लाल ने रूपनगरवाले सिपाहियों को रोक कर कहा कि "बस करो, दुश्मन भाग गए, अब क्यों नाहक तकलीफ़ उठाते हो? हमारा काम हो गया, सो अब तुम लोग रूपनगर को लौट जाओ।"

उन सिपाहियों ने भी देखा कि "सच तो है, अब तो सामने कोई भी मुर्दा नहीं दीखता जिस से दो दो चोटें चलें। और उन सभों ने मानिक लाल की सारी कारसाजी को भी ताड़ लिया था, पर जो बात हो

गई, वह कैसे लौट सकती है ?-" यही विचार कर रूपनगरवाले सिपाही मरे कटे और घायल मोगलों की जमापूंजी लूटने में लग गए और ढेर की ढेर दौलत लूट कर हंसी खुशी बादशाह का जयजयकार मनाते हुए रूपनगर की ओर लौट गए। छिनभर में पहाड़तली में पूरा सन्नाटा छा गया। केवल मरे और घायल सिपाही और घोड़े पड़े रहे। यह सब देख कर ऊंचे पहाड़ पर बैठे हुए जो राजपूत पत्थर बरसाते थे, वे सब नीचे उतर आए, और कहीं किसी को न देख कर उन लोगों ने सोचा कि " बचीबचाई सेना के साथ राना उदयपुर चले गए होंगे " यही सोच कर वे सब भी राना को खोजते हुए उदयपुर की ओर बढ़े। पथ में राजसिंह के साथ उन सभों की भेंट हो गई और सब मिलजुल कर उदयपुर गए।

सब तो रास्ते में इकट्ठे हो गए, पर मानिक लाल उन सभों के साथ न मिल सका। क्योंकि वह तो निर्मल के पीछे पड़ा था, उसे इतनी कहां समाई थी कि वह अपनी नई प्रानप्यारी को अकेली जंगल पहाड़ों में छोड़ कर राना का पिछलगुआ बने। सो वह सभों को उदयपुर की राह बता कर निर्मल के पास जा पहुंचा। पहिले तो उस ने अपनी नई प्यारी को कुछ खिलाया पिलाया, फिर गांव से डोली कहार ठीक करलाया और डोली पर निर्मल को चढ़ा कर जिधर से राना गए थे, उधर से न जा कर दूसरी राह से उदयपुर की ओर चला। क्योंकि वह नहीं चाहता था कि इस गहरे माल (निर्मल) के साथ राना मुझे पकड़ें।

वह निर्मल को लिये हुए अपनी बूआ के घर जा पहुंचा। और उसे पुकार कर कहने लगा—" बुआ जी ! एक बहुरिया ढूंढ़ लाया हूं।" पर बहू का मुखड़ा देख कर बुआ जी कुछ मन ही मन कुढ़ गईं। क्योंकि उन्हों ने सोचा कि, "मानिक से जो कुछ अपनी मुठ्ठी गरम करने का मैं मन्सूबा बांध चुकी थी, उसे यह बहुरिया कब पूरा होने देगी ! " पर बिचारी बूआ करती क्या ? वह तो पहिले ही दो अशर्फ़ी नक़द ले चुकी थी, तब एक दो दिन बहू को बिना कुछ खिलाए पिलाए या रक्खे कैसे धत्ता कर सकती थी ? इसलिये वह लाचार हो कर बोली " अहा ! बड़ी सुन्दर बहू है।"

मानिक लाल ने कहा—" बूआ, अभी तक नई बहू के साथ मेरा व्याह नहीं हुआ है।"

तब तो बुआजी ने सोचा कि " तो फिर यह उढ़री हुई होगी।" सोई ढड्ढो ने सूराख पा कर कहा—" तब तो मेरे घर कैसे...."

मानिक लाल ने कहा—" डरो मत, चटपट व्याह कर दो न, बस आज ही व्याह हो जाना चाहिए।"

यह सुनते ही निर्मल ने लजा कर सिर नीचा कर लिया।

बुआ ने फिर गौं पा कर कहा—

" बेटा ! यह तो बड़ी खुशी की बात है, भला जो तेरा व्याह न कर दूंगी तो किस की करूंगी ? पर व्याह का कुछ खर्चबर्च भी तो चाहिए ?"

मानिक लाल ने कहा—" खर्चबर्च की क्या कमती है, बुआ ?"

हमारे पाठक यह बात जानते ही होंगे कि जहां युद्ध होता है, वहां पीछे लूट भी जरूर ही होती है। सो मानिक लाल भी युद्धक्षेत्र से लौटती बार मरेकटे मोगलों के जेब की तलाशी लेता हुआ कुछ न कुछ मालमता ले ही आया था। बस झन्नाटे के साथ उस ने बुआ के आगे दो चार अशर्फियां फेंक दीं। और उन पीली पीली चमाचम चकती को देखते ही बुआ जी उमंग के साथ उन्हें उठा अपने पिटारे में बन्द कर व्याह की तयारी में लगीं। व्याह की सामग्री में तो फूल, माला, चन्दन और पुरोहित जी का काम है, इसलिये इस व्याह में बुआ जी को अपने समुद्र समान पिटारे में से अशर्फी न निकालनी पड़ी। और मानिक लाल को यह बड़ी भारी लाभ हुआ कि वह शास्त्र की पद्धति के अनुसार निर्मल सी सुशील, सुन्दर, हंसोड़, सुघड़ और रसीली स्त्री का पति बना।

यहां पर इस बात के कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि थोड़े ही दिनों में मानिक लाल ने राना के सेनापतियों में सब से ऊंचा पद पाया, और अपने गुणों से सभी जगह प्रतिष्ठा भी पाई।



पांचवां खंड।

आग लगाने का उद्योग।

पहिला परिच्छेद।

शाहज़ादी के बनिस्बत भिखमंगिन अच्छी।

यह कह आए हैं कि अपनी फ़ौज को लौटाने के लिये मुबारक घोड़ा दौड़ाता हुआ, उस पहाड़तली में एकाएक गायब हो गया। उस के गायब होने का कारन यह था कि वह जिस राह से घोड़े पर चढ़ा हुआ फौज को लौटाने जाता था, उसी रास्ते पर एक कूआं था। किसी ने पहाड़ पर रहने की इच्छा से जल के सुभीते के लिये उस कुएं को खना था। पर अब चारों ओर से घास के जंगलों ने उस कूएं का मुंह ढांप दिया था। विचारा मुबारक उसे न देख कर उस पर ज्योंही घोड़े पर चढ़ा हुआ पहुंचा कि घोड़े समेत धड़ाम से उस के भीतर गिर गया। उस कूएं के भीतर पानी नहीं था, तौभी गिरने की ही चोट से घोड़ा मर गया, पर मुबारक गिरने के समय चौकन्ना हो गया था, इसलिये उस ने बहुत चोट न खाई। वह वहां पड़ा पड़ा बहुत कुछ सोचता रहा, पर किसी तरह भी कूएं से बाहर न निकल सका; तब वह यह सोच कर वहीं से बार बार चिल्लाने लगा कि शायद कोई मेरी आवाज सुन कर निकाल ले। पर लड़ाई के हल्लेगुल्ले में न तो उस की चिल्लाहट ही किसी ने सुनी और न उस ने किसी से अपने चिल्लाने का जवाब ही पाया। केवल एकवार दूर से किसी ने जवाब दिया कि "घबराओ मत; निकालते हैं। पर इस आवाज पर भी उसे कुछ भरोसा न हुआ।

लड़ाई तय होने पर रणभूमि में सन्नाटा छा गया, तब किसी ने कूएं के ऊपर से उस को आवाज़ दी—

"जीते हो?"

मुबारक ने जवाब दिया—"हां! अभी तक तो खुदा के फ़ज़्ल से जिन्दा हूं—तुम कौन हो?"

ऊपरवाले ने कहा—"मैं चाहे जो कोई होऊं, इस से तुम्हें क्या काम है? हां, यह बतलाओ कि ज्याद: चोट तो नहीं लगी है?"

मुबारक—"नहीं, बहुत ही ख़फ़ीफ़।"

ऊपरवाला—"शुक्र है, खुदा का; अच्छा मैं एक लकड़ी में दो चार कपड़े बांध कर और उसे रस्सी की तरह बखूबी मज़बूत कर के लटकाता हूं; तुम दोनों हाथ से कस कर उसे पकड़े रहना, मैं ऊपर से खैंच लेता हूं।"

मुबारक ने ताज्जुब से कहा—"एं! यह तो औरत के गले की सी आवाज मालूम देती है, तुम कौन हो?"

ऊपरवाली स्त्री थी, उस ने कहा—"क्या इस आवाज़ को अब तुम बिल्कुल नहीं पहचानते?"

मुबारक—"ज़रूर पहचानता हूं, मगर दरिया बीबी! तुम यहां क्योंकर पहुंची?"

ऊपरवाली दरिया ही थी, उस ने कहा—"फ़क़त तुम्हारे ही वास्ते यहां तक खुदा ने मुझ को पहुंचाया। अच्छा! अब मैं तुम को ऊपर खैंचती हूं, होशियार! भर जोर पकड़ना।"

यह कह कर उस ने कपड़े से जकड़ी हुई लकड़ी कूएं में लटका दी और तलवार से कूएं के ऊपर का जंगल काट कर साफ कर दिया। फिर मुबारक ने उस लकड़ी के दोनों छोर को भर जोर पकड़ लिया, तब दरिया ऊपर से उसे खैंचने लगी। बिचारी को जोर ही कितना था, जो एक खासे नौजवान मर्द को खैंच सकती? आखिर जब वह खैंचते खैंचते हार गई तो रोने लगी। तब वह एक पेड़ की लटकती हुई शाखा के ऊपर उस कपड़े की बनाई हुई रस्सी को डाल कर उस का छोर पकड़े हुए लेट गई और लेटी लेटी जी छोड़ कर रस्सी खैंचने लगी। किसी तरह से मुबारक ऊपर आया और दरिया को देख हक्काबक्का हो कर पूछने लगा—"एं! यह क्या? यह कैसा स्वांग बन कर आई हो?

दरिया ने कहा—"मैं भी एक बादशाही सवार हूं।"

मुबारक—"किस लिये सवार बनीं?"

दरिया—"फ़क़त तुम्हारे ही वास्ते।"

मुबारक—"क्योंकर ?"

दरिया—"वर्नः फिर आज तुम्हें बचाता कौन ?"

मुबारक—क्या इसी वास्ते दिल्ली से यहां तक तुम आईं और क्या इसी ग़रज़ से तुम घोड़सवार बनीं ? एं ! यह खून कैसा ? क्या तुमने कहीं ज़ख़्म खाया है ? आह ! क्यों ऐसा किया ?"

दरिया—"सिर्फ़ तुम्हारे ही वास्ते मैंने यह सब किया अगर ऐसा न करती तो तुम बचते क्योंकर ? अब बतलाओ तो सही, शाहजादी तुम को कितना प्यार करती है ?"

यह सुनते ही मुबारक का चेहरा ज़र्द हो गया, उस ने सिर झुका कर कहा—

"शाहज़ादियां प्यार करना नहीं जानतीं।"

दरिया ने कहा—"हमलोग दुखिया औरत हैं–इसी से हमलोग प्यार करना जानती हैं ; अब जरा यहां बैठकर दम ले लो। मैंने तुम्हारे वास्ते डोली कहारों का बंदोबस्त किया है, उन्हें यहीं बुला लाती हूं, उसी पर लेटे हुए चलेचलो। तुम्हें चोट लगी है, ऐसी हालत में घोड़े पर सफ़र करना मुनासिब नहीं है।"

मोगलसेना के साथ जो डोलियां थीं, उस के उठानेवाले कहार लड़ाई की उछेड़ में इधरउधर भाग गए थे। दरिया ने दूर ही से मुबारक को कुएं में गिरते देखा था, इसलिये उस ने उसी समय मुबारक के लिये भागते हुए कहारों में से कइयों को पकड़ कर दो डोलियां ठीक कर रक्खी थीं। उन्हीं कहारों को डोली के साथ जहां मुबारक बैठा हुआ सुस्ता रहा था, वहां बुला-लाई और फिर उस ने एक डोली पर चुटीले मुबारक को सवार कराया और दूसरी पर आप सवार हुई और उसे अपने साथ दिल्ली ले चली। डोली पर चढ़ती बेर मुबारक ने दरिया का मुंह चूम कर कहा था—

"दिलरुबा ! अब जबतक दम में दम बाक़ी रहेगा, तुम्हें कभी न छोड़ूंगा।"

अच्छी जगह पहुंच कर उस ने मुबारक की अच्छी तरह सेवा टहल कर के उसे अच्छा किया। उस की दौड़धूप और सेवा टहल के कारन ही इस वार मुबारक की जान बची।

दिल्ली पहुंचने पर मुबारक दरिया को अपने घर ले गया, और थोड़े दिनों तक दोनों ने बड़े चैन से अपने दिन बिताए, इस के पीछे इस प्यार का जो कुछ फल हुआ, वह बहुत ही भयानक था। सो भी वह किसी एक ही आदमी के लिये भयावना न हुआ, बरन दरिया और मुबारक, औरंगजेब और ज़ेबउन्निसा इन चारों ही के लिये। उस विचित्र रहस्य को हम आगे चल कर खोलेंगे। यहां पर चंचलकुमारी का हाल लिखना बहुत आवश्यक है।

दूसरा परिच्छेद।

राजसिंह की हार।

यह बात कह आए हैं कि राजसिंह उदयपुर आए। चंचलकुमारी के उबारने के लिये ही यह लड़ाई नाधी गई थी, इसलिये उसे भी उन्हों ने साथ लाकर अपने अंतःपुर (महल) में रक्खा। पर इस बात का निबटेरा करना उन के लिये बहुत ही कठिन हो उठा कि इसे उदयपुर रक्खें या इस के पिता के घर रूपनगर भेज दें। बस जबतक इस बात का उन्हों ने निबटेरा न कर लिया, तबतक उस से फिर भेंट न की।

इधर चंचलकुमारी राना के रंगढंग देख कर बहुत ही चकपकाई। उस ने सोचा कि "मेरे साथ व्याह करने का तो इन का इरादा नहीं मालूम देता; तो फिर जो ये मेरे साथ व्याह नहीं ही करें तो फिर मैं क्यों इन के यहां रहूं? और न रहूं तो अब जाऊं कहां?"

इधर राना जब चंचलकुमारी के बारे में कुछ भी निबटेरा न कर सके तो उस के मन के भेद को जानने के लिये एक दिन उस के पास गए, जाने के समय जो पत्र उस ने अनंत मिश्र के हाथ उन के पास भेजा था, और जिसे उन्हों ने मानिक लाल से पाया था, उस पत्र को भी वे अपने साथ लेते गए।

उन के बैठने पर चंचलकुमारी ने उन को प्रणाम किया और फिर वह संकुची हुई सिर झुकाए एक ओर खड़ी हो गई। उस की त्रैलोक्य के मोहने-

वाली सुंदरता को देखकर राना मोहित हो गए, पर तुरंत ही उस तृष्णा को छोड़ कर उन्हों ने कहा—

"राजकुमारी ! अब तुम्हारी क्या इच्छा है ? यही जानने के लिये हम तुम्हारे पास आए हैं। अब तुम अपने पिता के यहां जाना चाहती हो, या यहीं रहना ?

यह सुनते ही उस का कलेजा टूक टूक हो गया, वह इस बात का कुछ भी जवाब न दे सकी, बरन कठपुतली की भांति चुपचाप खड़ी रही।

तब राना ने उस की चिट्ठी निकाल कर उसे दिखलाई और पूछा—

"यह पत्र तुम्हारा ही लिखा हुआ है ?"

चंचल ने कहा—"जी हां।"

राना—पर इस पत्र की सारी लिखावट तो एक ही हाथ की लिखी हुई नहीं जान पड़ती, बरन दो हाथ की जान पड़ती है ? इस का कौन सा भाग तुम्हारे हाथ का लिखा हुआ है ?

चंचल—पहिला भाग मेरे हाथ का लिखा हुआ है।

राना—"तो अंत वाला भाग किसी दूसरे के हाथ का लिखा हुआ है ?

हमारे पाठकों को यह बात भूली न होगी कि उस पत्र के निचले हिस्से में ही व्याह की बात थी। चंचल ने जवाब दिया—

"हां ! यह मेरे हाथ का लिखा नहीं है।"

राना ने पूछा—"पर तुम्हारी सलाह से ही तो यह लिखा गया होगा ?"

यह प्रश्न बहुत ही कठोर था, पर इस के जवाब देने में भी चंचलकुमारी ने अपने ऊंचे स्वभाव का नमूना दिखलाया, कहा—

"महाराज ! क्षत्री राजा लोग व्याह के लिये ही राजकन्याओं को लूटलाते हैं। बिना व्याह की इच्छा से राजकन्या का लूटना घोर पाप है। तो फिर मैं आप को महापाप करने की सलाह क्योंकर देती ?"

राना—"हम तुम्हें लूट नहीं लाए हैं, बरन हम ने तुम्हारे जातिकुल की मर्यादा रखने के लिये तुम्हें उबारा है। अब तुम को रूपनगर भेज देना ही हम अपना धर्म समझते हैं।

इतनी देर तक चंचकुमारी राना से बातें करते करते स्त्रियों के प्रधान

भूषण लज्जा के बोझ से दबगई थी, पर अब ऐसी बात सुन, लाज छोड़ और सिर उठाकर उन की ओर देखती हुई बोली—

"महाराज! अपना राजधर्म आप सम्हालिए, मैं भी अपने धर्म को समझती हूं। मैं तो यह समझती हूं कि जब मैंने अपने को आप के चरनों में भेंट कर दिया तो फिर मैं धर्म के अनुसार आप की महिषी हो चुकी। आप चाहे मुझे अपनाइए, या न अपनाइए, पर मैं अपना धर्म चेतकर अब दूसरे की नहीं बन सकती। जब कि धर्म से आप मेरे पति हो चुके तो फिर मैं आप की आज्ञा भर सिर चढ़ा सकती हूं। अब यदि आप मुझे रूपनगर चली जाने की आज्ञा देंगे तो मैं वहां ज़रूर चली जाऊंगी, परंतु वहां जाने पर पिता फिर मुझे बादशाह के पास भेज देने के लिये दबाए-जायेंगे। क्योंकि मुझे रोक रखने की उन में सामर्थ्य नहीं है। जो यही आप की इच्छा थी तो रनभूमि में जब मैंने आप से कहा था कि "महाराज मैं दिल्ली जाऊंगी—तब आप ने मुझे क्यों रोका था?"

राना—उस समय अपने मान रखने के लिये हम ने तुम्हें नहीं जाने दिया था।

चंचल—तो अब जिसने आप की सरन ली है, उसे फिर दिल्ली जाने दीजिएगा?

राना—यह भी नहीं हो सकता। तो फिर तुम यहीं रहो।

चंचल—कैसे रहूं? पाहुनी बन कर? या दासी होकर? सुनिये, महाराज! रूपनगर की हठीली राजकन्या यहां पर महिषी बने बिना किसी तरह नहीं रह सकती।"

राना—तुम सरीखी संसार के मन मोहनेवाली सुंदरी जिस राजा की महिषी हो, उसे सारा जहान बड़भागी कहेगा; पर तुम इतनी अद्वितीय सुंदरी हो कि जिस कारन तुम्हें अपनी महिषी बनाते हमारा जी आगापीछा करता है; क्योंकि शास्त्र में कहा है कि रूपवती भार्या शत्रु है (१)।

---

(१) ऋणकारी पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रःशत्रुरपण्डितः॥

यह सुन चंचलकुमारी ने जरा मुसकुराकर कहा—" आप बकवादिन लड़की की ढिठाई क्षमा कीजिएगा—बतलाइए तो सही कि क्या उदयपुर की सब राजमहिषी कुरूप हैं ? "

राना ने कहा—" तुम्हारी तरह तो कोई भी सुन्दर नहीं हैं। "

चंचल ने कहा—" मैं बड़ी अधीनताई से बिनती करती हूं कि कहीं ऐसी बात अपनी रानियों के आगे मत कहिएगा । क्योंकि उदयपुर के महाप्रतापी महाराना राजसिंह के लिये भी कोई न कोई जगह डरने की जरूर ही होगी । "

इस पर राना ठठा कर हंस पड़े । इतनी देर तक तो चंचल अदब से खड़ी रही, पर अब उन के सामने डँट कर बैठ गई । क्योंकि उस ने सोचा कि—" अब ये मेरे सामने राना नहीं हैं, बरन मेरे दूलह हैं । "

उस ने राना के सामने बैठ कर कहा—" महाराज ! आप की आज्ञा पाए बिना ही मैं आप के सामने बैठ गई, इस ढिठाई को क्षमा करिएगा; क्योंकि मैं आप के आगे कुछ सीख लेने के लिये बैठी हूं । यह बात तो आप जानते ही होंगे कि चेला को गुरु के आगे बैठने का अधिकार है । हां ! अब बतलाइए, प्रभू ! कि सुन्दर स्त्री क्योंकर बैरिन होती है ? क्योंकि अभी तक यह बात मेरे मन में नहीं धँसी है । "

राना—यह बात तो सहजही में समझा दी जा सकती है। सुनो, सुन्दरी स्त्री के लिये सदा टंटा बखेड़ा मचा करता है । यही देखो ! तुम अभी तक हमारी पत्नी नहीं हुई हो, पर तुम्हारे लिये औरंगज़ेब के साथ हमारी नई लड़ाई छिड़ गई । और हमारे कुल की महारानी पद्मिनी की कहानी तो तुम ने अवश्य ही सुनी होगी ?

चंचल—पर आप के इस ऋषि वचन पर मेरी तनिक भी श्रद्धा न हुई । यदि सुन्दरी महिषी न भी हो तो क्या राजा लोग अपने बराबर वालों के झगड़े से बच सकते हैं ? और मुझ निगोड़ी के लिये आप इतनी बातें क्यों गढ़ रहे हैं ? मैं चाहे सुन्दर होऊं, चाहे कुरूप, पर अब तो जो कुछ मेरे लिये टंटा छिड़ना था, वह तो छिड़ ही गया ?

राना—केवल इतना ही नहीं, बरन इस पर एक बात यह भी कहने लायक है कि अत्यन्त सुन्दरी स्त्री पा कर पुरुष अपना सब काम

धन्धा छोड़ रात दिन उसी का मुंह निहारा करता है। बस यह बात राजा के लिये बहुत ही निन्दित है, क्योंकि इस से राज काज में बड़ी बाधा पड़ती है।

चंचल—ये सब निरी थोथी बातें हैं। क्योंकि जो राजधर्म के जाननेवाले सच्चे राजा हैं, वे हजारों रानियों से घिरे रहने पर भी राज-काज से कभी मुंह नहीं मोड़ते। तब क्या मुझ सरीखी अलहड़ लड़की के प्रेम में फंस कर महाराना राजसिंह राजकाज से मुंह मोड़ेंगे? इस बात पर कभी नहीं श्रद्धा की जा सकती।

राना—पर यह बात बिलकुल तुच्छ ही नहीं है। शास्त्र में कहा है कि बूढ़े के लिये युवती स्त्री विष के समान है *।

चंचल—आप क्या बूढे हैं?

राना—युवा भी तो नहीं हूं!

चंचल—पर मैं तो यह समझती हूं कि जिस बीर के बाहु में बल है, राजकन्याओं के आगे वही युवा है, क्योंकि निर्बल युवा को राजकन्याएं बुढ्ढों में गिनती हैं।

राना—हम कुछ सुंदर भी तो नहीं हैं?

चंचल—राजाओं की सच्ची सुंदरता यश है।

राना—पर ऐसे भी राजाओं की कमती नहीं है, जिन में रूप, बल और यश ये तीनों बातें एक साथ ही हों।

चंचल—हाय! मैं कहां तक आप के साथ सिर खाली करूं? जब कि मैंने अपने को तई आप को दे डाला तो फिर जो मैं दूसरे की बनूं तो दो-भतरी होऊंगी या नहीं? इस बात की लाज तो आप को न होगी? इस समय मैं पूरी बेहया होकर आप से उलझ रही हूं। यहां पर इस बात को आप समझ लीजिए कि दुष्मंत से त्यागी हुई शकुंतला ने भी लाचारी से लाज को धो बहाया था। मेरी भी इस समय कुछ कुछ वैसी ही दशा हो रही है। निश्चय जानिये, जो कहीं आप ने मुझे त्यागा तो मैं राज समुद्र (१.) में डूब मरूंगी।

---

* "वृद्धस्य तरुणी विषम्।"

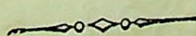
(१) राजसिंह का बनाया हुआ तालाब।

बस इस के आगे अब क्या होगा ? बिचारे राज सिंह बढ़ बोली, ढीठ, चंचल के साथ बातों की लड़ाई में हार कर बोले—

"प्यारी ! तुम्ही हमारी सच्ची महिषी होने योग्य हो। पर तुम ने केवल विपद में फंस कर मुझे पति बनाना चाहा था और अब उस विपद के दूर होने पर तुम हमारे हाथ से छुटकारा चाहती हो, या नहीं ; अथवा हमारे इस बुढ़ापे में तुम हम पर प्रेम कर सकती हो, या नहीं ; इन्हीं सब बातों का सोच विचार हमारे मन में घुमेर खा रहा था, पर आज तुम से उलझने पर यह सारा संदेह दूर हो गया। तुम्हें हम अवश्य अपनी महिषी बनावेंगे, पर एक बात के जानने तक जरा हम इस व्याह को टाल देना उचित समझते हैं। हम यह जाना चाहते हैं कि इस व्याह में तुम्हारे पिता अपनी संमति देते हैं, या नहीं; क्योंकि बिना उन की संमति के हम तुम्हारे साथ व्याह नहीं किया चाहते। इस का कारन यह है कि यद्यपि तुम्हारे पिता का छोटा सा राज्य और थोड़ी सी सेना है, पर विक्रम सोळंकी एक बीरपुरुष और अच्छे सेना- पति हैं, यह बात प्रसिद्ध है। समझ रक्खो, एक न एक दिन मोगलों के साथ हमारी गहरी छनेगी, यदि लड़ाई ठने तो विक्रम सिंह की सहायता हमारे लिये बहुत ही भली होगी। पर जो हम उन से पूछे बिना तुम्हारे साथ व्याह कर लें तो वह चिटक कर फिर कदापि हमारी सहायता न करेंगे, बरन वह हमारे घोर शत्रु और मोगलों के पूरे सहायक बन जायंगे। पर यह बात हम नहीं होने देना चाहते, इसलिये हमारी इच्छा है कि उन्हें एक पत्र लिख और उन की सम्मति ले कर तब तुम्हारे साथ व्याह करें। अब यह तो बतलाओ कि वह इस बात में राजी होंगे ?"

चंचल—राजी न होने का तो मैं कोई कारन नहीं देखती। और मैं भी यही चाहती हूं कि पिता की आसीस ले कर ही आप की चरनसेवा में अपना तन लगाऊं। मेरी भी इच्छा है, आप चिट्ठी लिख कर आदमी भेजिए।"

तब राना ने एक बिनय से भरपूर पत्र लिख कर विक्रम सोळंकी के पास दूत भेजा, उसी दूत के हाथ चंचलकुमारी ने भी माता से आसीस पाने के लिये एक चिट्ठी भेजी।



तीसरा परिच्छेद ।

आग भड़काने का प्रयोजन ।

रूपनगर के राजा का जवाब ठीक समय पर आ पहुंचा । पर वह बहुत ही भयावना उत्तर था । उन्हों ने जो राजसिंह के उत्तर में पत्र लिखा था, उस का निचोड़ यही है—

"राना राजसिंह ! आप राजपूताने में सब से प्रधान और राजपूताने के मुकुट हैं, पर अब आप राजपूत के नाम पर स्याही फेरने पर उतारू हुए हैं । आप बरजोरी हमारी लड़की को उड़ा ले गए ! और आज जो हमारी कन्या हिन्दुस्तान की बेगम होती, इस में आप ने अड़ंगा लगाया । ऐसी दशा में हम को भी अब आप के साथ बैर बांधना चाहिए । इसलिये हमारी संमति है कि आप हमारी कन्या के साथ विवाह न करें ।

"इस पर आप यों कह सकते हैं कि 'पिछले समय में तो बीर क्षत्री लोग राजकन्याओं को लूट ला कर उस के साथ विवाह करलेते थे । भीष्म, अर्जुन और स्वयं श्रीकृष्ण ने राजकन्याओं को लूटा था ।' पर राजसिंह ! आप में वैसा बल कहां है ? यदि आप के बाहु में बल होता तो आज हिन्दुस्तान के तख्त पर मुगल बैठा रहता ? तो फिर स्यार हो कर आप को सिंह की नकल न उतारनी चाहिए । हम भी राजपूत हैं, और इस बात को भली भांति जानते हैं कि मुसलमान को बेटी देने से हमारा बड़प्पन न बढ़ेगा, पर जो हम न दें तो मुगल रूपनगर के पहाड़ का एक टुकड़ा भी साबूत न रहने देगा । यदि हम अपनी रक्षा आप कर सकते होते या ऐसा समझते कि हमारी रक्षा करनेवाला कोई वीर भारतवर्ष में जीता है तो हम कदापि मुसलमान को बेटी देने की इच्छा सपने में भी न करते, बरन उस दशा में उस मुसलमान की बोटी बोटी काट डालने के लिये हमारी भुजा फड़क उठती, जो हमारी बेटी के व्याहने के लिये मुंह खोलता । परन्तु हां ! जब हम यह जान लेंगे कि आप में सचमुच क्षत्रियों की सी वीरता है, तब न होगा तो आप ही को कन्यादान करेंगे ।

"यह बात हम भी सकारते हैं कि पिछले समय में क्षत्री राजालोग राजकन्याओं को हर कर विवाह करते थे, पर आप सी चतुराई या ठगी

कोई वीर नहीं करता था। आप ने हमारे पास अपना आदमी भेज और झूठी बात बनाकर हमारी सेना ले जाकर हमारी कन्या को हरलिया, क्या पुराने समय के कन्या हरनेवाले भी ऐसा ही कुकर्म करते थे ? सुनिये ! जो हमारी सेना न पहुंचती तो आप की क्या सामर्थ्य थी कि आप हमारी कन्या को ले जाते। और आप ने इस नीचपने से हमारी कहां तक हानि की, जरा इसे विचार कर देखिये। आप की खोटाई तो हम जान गए, पर मोगलबादशाह यही समझेगा कि "जब रूपनगर की ही फौज लड़ी है तो जरूर विक्रमसोलंकी की ही साज़िश से राजकुमारी बेहाथ हो गई।" इस लिये हमें जान पड़ता है कि इस चालबाजी से चिढ़कर औरंगज़ेब पहिले तो रूपनगर को मटियामेट कर डालेगा, फिर आप को इस नटखटी का मज़ा चखावेगा। और सुनिये ? हम भी युद्ध करना जानते हैं, पर मोगल बादशाह की अनगिनतिन फ़ौज के आगे किस की सामर्थ्य है कि अगुआ बनै ? इसी लिये तो एक तरह से सारे राजपूत उस के गुलाम बन बैठे हैं। तो फिर उन बड़ों बड़ों के आगे हम किस खेत की मूली हैं ?

"अभी हमे इस बात का भरोसा नहीं है कि बादशाह से सच्चा सच्चा हाल कहने पर भी हमारा छुटकारा होगा, या नहीं; पर आप यदि बरजोरी हमारी कन्या को ब्याह लेंगे और फिर बादशाह को उस कन्या के देने का पथ बंद हो जायगा तो फिर बादशाह के हाथ से हमारे या हमारी कन्या के छुटकारा पाने का कुछ भी उपाय न रह जायगा।

"इसलिये आप हमारी कन्या के साथ विवाह मत कीजिए। यदि बरजोरी विवाह करियेगा तो आप को और हमारी कन्या को हमारा शाप खा जायगा। हम शाप देते हैं कि बरजोरी विवाह करने से हमारी कन्या विधवा हो और अपने पति (आप) के साथ चिता पर न जलने पावे, और जो उस से संतति हो वह मरमर जाय और वह जन्म भर दुखिया बनी रहे। और फिर आप की राजधानी में स्यार, कुत्ते अपनी मांद बनावें। बस—"

बिक्रम सोलंकी ने इस शाप के देने पर नीचे दो एक पंक्ति में यह लिखा था कि,—" पर हां ! यदि कभी हम आप को अपनी कन्या का

योग्य वर समझेंगे, या ऐसा समझने का कोई कारण पावेंगे तो प्रसन्नता से हम आप ही को कन्यादान करेंगे।"

चंचलकुमारी की माता ने अपनी बेटी की चिट्ठी का कुछ भी जवाब नहीं भेजा था। बिक्रम सोलंकी के इस अजूबे पत्र को राजसिंह ने चंचलकुमारी के आगे पढ़ कर सुना दिया। तब तो उस बिचारी के चारों ओर अंधेरा ही अंधेर दिखाई देने लगा।

उसे देर तक चुपकी और बिचार में डूबी हुई देख कर राना ने पूछा—

"कहो, अब क्या करना चाहती हौ? ऐसी दशा में व्याह करना उचित है, या नहीं?"

इस पर चंचलकुमारी ने अपनी आंख के एक बून्द—बस एक ही बून्द—आंसू पोछ कर कहा—

"बाप के इस शाप को सिर ओढ़ कर कौन लड़की व्याह करने का साहस करेगी?"

राना—तो यदि बाप के घर लौट जाना चाहो तो भेज दें।

चंचल—लाचारी से ऐसा ही करना पड़ेगा, पर मेरे लिये तो बाप के घर जाना और दिल्ली जाना, दोनों ही बराबर है। तो फिर इस की अपेक्षा विष खा लेना क्या बुरा होगा?

राना—अब हमारी एक सलाह लो, प्यारी! तुम हमारी योग्य महिषी हौ, इसलिये हम तुम को अपने भरसक नहीं त्याग सकते; पर तुम्हारे पिता से आशीर्वाद लिये बिना तुम से व्याह भी नहीं कर सकते। पर उस शुभ आशीर्वाद का भरोसा हम एकदम से छोड़ न बैठेंगे। सच मानो, मोगलों के साथ गहरी लड़ाई हुआ ही चाहती है। हमारे तो एक मात्र श्री एकलिंगजी (१) ही सहायक हैं। बस इस लड़ाई में हम या तो मरेंगे, या मोगलों को हरा छोड़ेंगे।

चंचल—मुझे पूरा विश्वास हो रहा है कि आप से मोगल जरूर ही हारेंगे।

---

(१) उदयपुर के महाराणाओं के कुल देवता।

राना--परन्तु, प्यारी ! यह बात बहुत ही कठिन या अनहोनी है। और जो कहीं हमारे मन के चीते हो जायं तो हम अवश्य तुम्हारे पिता से शुभ आशीर्बाद ले लेंगे।

चंचल--"अच्छा, फिर तबतक मैं ..."

राना --तबतक तुम हमारे अंतःपुर में रहो। राजमहिषी जनों की भांति तुम्हारा भी महल अलग ठीक कर दिया जायगा, महिषियों की भांति तुम्हारे लिये भी दास दासियों का भरपूर प्रबंध हो जायगा। और हम इस बात को फैला देंगे कि थोड़े ही दिनों में शास्त्रानुसार तुम हमारी महिषी बन जाओगी। बस हमारी इस चाल से सभी तुम को महिषियों की भांति मानने लगेंगे और "महारानी' कहकर पुकारेंगे। केवल जबतक शास्त्ररीति से हम तुम्हें न अपनावेंगे, तबतक तुम से भेंट न करेंगे। कहो, ये बातें तुम्हें रुचती हैं, या नहीं ?"

इस पर चंचल कुमारी ने अच्छी तरह सोच विचारकर देखा कि "ऐसी दशा में इस से अच्छी बात और क्या हो सकती है ?" निदान लाचारी से वह इस बात पर राजी हुई। फिर राना ने भी जैसी प्रतिज्ञा की थी, उस के लिये वैसा ही पूरा पूरा प्रबंध कर दिया।

चौथा परिच्छेद।

आग भड़काने का और भी प्रयोजन।

मानिक लाल से निर्मलकुमारी ने सुना कि चंचलकुमारी राजमहिषी हुई। पर राना के साथ उस का कब व्याह हुआ, या अभी तक व्याह हुआ ही नहीं है, इन बातों का जवाब मानिक लाल निर्मल को न दे सका, क्योंकि वह बिचारा इस भेद को नहीं जानता था। तब निर्मल आप ही चंचल से मिलने आई।

बहुत दिनों पीछे निर्मल को देख कर चंचलकुमारी फूली अंगों नहीं समाती थी। उस दिन उस ने निर्मल को अपने पास से टसकने न दिया और अकेले में उसे ले जा कर रूपनगर से बिदा होने पर आज तक जो

कुछ हुआ था, उसे भली भांति दोनों ने एक दूसरी से कह सुनाया। निर्मल के सुख की बात सुन कर चंचल बहुत ही खुश हुई-और सब से बढ़ कर तो उस की खुशी का यह कारण था कि उसे जैसी निर्मल प्यारी थी, राना को वैसा ही मानिक भी प्यारा था। बस इस से बढ़ कर निर्मल के लिये और कौन सा सुख हो सकता था कि मानिक लाल ने राना से बहुत कुछ इनाम पाया, उस की बहुत सी थैलियां रुपये अशर्फियों से भर गईं। इस के अलावे उस ने राना की कृपा से सेना में सब सेनापतियों से ऊंचा आसन पाया, और राज सन्मान से बड़ी प्रतिष्ठा पाई। अब निर्मल की खूब ऊंची अटारी, अनगिनतिन दौलत, बहुत से दास दासी और इन सभों के अलावे मानिक लाल उस का जरखरीद गुलाम! बस इस से बढ़ कर निर्मल और कौन सा सुख चाहती थी?

पर दूसरी ओर वह चंचलकुमारी के दुःख की बात सुन कर बहुत ही दुखी हुई। और फिर उस ने तमक कर चंचल के पिता, माता, राजसिंह और खुद चंचल को भी बहुतेरी खोटी खरी सुनाई। उस ने कहा कि "सखी! ऐसी दशा है, तो तुम्हें महारानी न पुकारूंगी। और मैं इस बात की प्रतिज्ञा करती हूं कि राना से जब मेरा सामना होगा तो उन्हें ऐसी ऐसी सुनाऊंगी कि वह भी याद करेंगे।"

चंचल ने कहा—"अच्छा, इन बातों को अभी रहने दो। देखो, मेरे पास कोई भी मेरी जान पहिचानवाली नहीं है, ऐसी दशा में मेरे रहे यहां न रहा जाएगा। और जब कि भगवान ने मुझे तुम से मिला दिया है तो अब मैं तुम्हें न छोड़ूंगी। तुम्हें मेरे पास ही रहना पड़ेगा।"

इतना सुनते ही पहिले तो निर्मल को ऐसा जान पड़ा कि जैसे कलेजे पर पहाड़ घहरा पड़ा हो, क्योंकि अभी दो ही दिन हुए होंगे कि उस ने रंगीला दुलहा पाया है-नया नया प्रेम, नया नया चाव, नया नया सुख, नई नई बातें-इन सभों को छोड़ कर क्या चंचल के पास रहने को उस का जी चाहता था? इसलिये वह एकाएक तो चंचल के पास रहने पर राजी न हुई—और न उस ने झूठमूठ कुछ बात ही बनाई, पर असल बात भी वह खोल कर न कह सकी, बस वह उस समय केवल इतना ही बोली कि—"इस बात का जवाब मैं कल दूंगी।"

इसपर चंचल की आंखों में जरा आंसू भर आए और उसने मनही मन यों कहा कि,—"हाय ! निर्मल ने भी मुझे छोड़ दिया ? हे भगवान ! परन्तु तुम मुझे मत त्यागना।" फिर वह जरा मुसकुराई और बोली—"क्यों सखी निर्मल ! एक दिन वह था कि तुम मेरे लिये रूपनगर से पावंप्यादे चलकर बन में मरने को पड़ी रहीं, और एक दिन आज है कि अब तुम नया दुलहा पाकर मेरे पास रहना नहीं चाहतीं ?"

यह सुन कर निर्मल ने सिर नींचा कर लिया; उस ने अपने को बहुत धिक्कारा और फिर कहा—"मैं उस बेला आऊंगी, सोचो तो सही, जिसे अपना स्वामी बनाया है, उस से जरा पूछ तो लेना चाहिए ! तिस पर एक नन्ही सी बच्ची मेरे गले मढ़ी गई है, इस का भी तो कुछ न कुछ बंदोवस्त करना पड़ेगा।"

चंचल—न हो, लड़की को यहीं ले आओ।

निर्मल—नहीं, उस घिनघिन, पिनपिन का यहां कुछ काम नहीं है। एक मुहंबोली बूआ है, उसी को बुलाकर घर में रख आऊंगी।

यह सब सलाह होने पर वह बिदा हुई। और घर जा कर उस ने सारा हाल मानिकलाल से कह सुनाया। वह भी अपनी रसीली नई बहू को छिन भर भी नहीं छोड़ना चाहता था, उसे नई बहू को अपनी आंखों की ओट करते बड़ा दुख जान पड़ा, पर वह बहुत ही प्रभुभक्त था, इसलिये चंचलकुमारी की बात न टाल सका उस ने निर्मल को जाने की संमति दी और बुआ जी ने आकर घर और लड़की सम्हाला।

जाते समय मानिक ने निर्मल को गले लगाकर इतना जरूर कहा था कि—"प्यारी ! दया कर अठवारे में एक दिन तो छिनभर के लिये आ कर मुझे अपनी प्यारी प्यारी सूरत दिखला जाया करना।"

इस के जवाब में उसे चुटकी काट कर निर्मल बिदा हुई।

—०—

पाचवां परिच्छेद।

वह कौन सा प्रयोजन है ?

निर्मल डोले पर चढ़कर दास दासियों को साथ ले राना के महलों की ओर चली। रास्ते में एक बड़ा चौक पड़ता था, वहां पर एक घर के दर्वाजे पर बड़ी भीड़ डँटी थी। निर्मल के डोले पर बहुमूल्य गिलाफ़ पड़ा हुआ था, पर भीड़ की रेलापेली की आहट पा कर यह जानने के लिये कि 'यह कैसा हल्लागुल्ला है' उस ने जरा सा डोले का पर्दा हटाकर देखा, और एक दासी को इशारे से अपने पास बुलाकर पूछा कि,—

"यह कैसी भीड़भाड़ है ?"

इस पर दासी ने जवाब दिया कि "एक बड़ा नामी ज्योतिषी इस घर में आकर ठहरा है, उसी के पास हज़ारों आदमी रोज अपने अपने भाग्य का हाल जानने आया करते हैं। बस जो लोग ज्योतिषी से कुछ पूछने पाछने आए हैं, उन्हीं ने यह भीड़ कर रक्खी है।"

दासी ने और भी कहा कि,—

"यह ज्योतिषी सब तरह के प्रश्न का पूरा पूरा उत्तर देता है और इस ने जिसे जो कह दिया, वह ठीक ठीक उतरा।"

तब निर्मल ने दासी से कहा कि "साथ के सिपाहियों से कह कि भीड़ को हटा दें। मैं भीतर जा कर ज्योतिषी जी से कुछ पूछूंगी। पर सब नौकरों को समझा दे कि मेरा पता किसी को न बतलावें।"

फिर तो सिपाहियों के बल्लम की धमक से भीड़ काई की तरह फटगई और निर्मल का डोला ज्योतिषी के घर के दर्वाजे के भीतर चला गया। भीतर जो लोग प्रश्न पूछने आए थे, वे सब जब चले गए तब निर्मल डोले में से उतर कर ज्योतिषी के सामने जा बैठी और कुछ भेंट आगे धर कर प्रणाम किया। उसे देख कर ज्योतिषी ने कहा,—

"बेटी ! तुम क्या पूछना चाहती हो ?"

निर्मल ने कहा—"मैं जो कुछ पूछती हूं, उसे भलीभांति सोच विचार कर मुझे जवाब दीजिएगा।"

ज्योतिषी—अच्छा, प्रश्न करो।

निर्मल ने कहा—"मेरी एक प्यारी सखी हैं।"

यह सुनकर ज्योतिषी ने पट्टी पर कुछ लिख लिया, फिर कहा,—"अच्छा, फिर?"

निर्मल बोली—"अभी वह क्वारी हैं।"

ज्योतिषी ने इस बात को लिख लिया और फिर पूछा,—"हां, फिर"?

निर्मल—उन का व्याह कब होगा?

इस बात को भी ज्योतिषी ने लिख लिया; फिर वह पट्टी पर खड़िया से अंक भरने लगा। फिर उस ने लग्नसारणी देखी, पञ्चाङ्ग देखा; निर्मल से बहुतेरी बातें पूछीं, पट्टी पर बहुतेरा अंक लिखा और मिटाया; बहुत से पोथीपत्रे उलट डाले; और अंत में निर्मल की ओर देख कर सिर हिलाया।

निर्मल ने घबड़ा कर पूछा,—

"क्या, व्याह न होगा?"

ज्योतिषी—शास्त्र का विचार करने से तो एक प्रकार यही बात जान पड़ती है।

निर्मल—'एक प्रकार' से आप का क्या मतलब है?

ज्योतिषी—यही कि यदि ससागरा पृथ्वीपति की महिषी आकर कभी तुम्हारी सखी की टहल करे तब उस का विवाह होगा, नहीं तो न होगा।

"यह बात अनहोनी है" यह कह कर और कुछ भेंट दे कर निर्मल विदा हुई।

छठाँ परिच्छेद।

आग भड़काने का वृत्तान्त।

चंचलकुमारी के हरण से भारतवर्ष में वह आग भड़की थी कि जिस से या तो मोगलों की बादशाहत बिलाय जाती, या सारा राजपूताना भस्म हो जाता; पर केवल महाराणा राजसिंह की अपार दया के कारण ही यहां तक

नौबत न पहुंचने पाई। उस अचरज से भरी घटना के ओर छोर लिखने की उपन्यास में कोई आवश्यकता नहीं है। पर बिना कुछ कहे भी इस उपन्यास की कहानी अधूरी रह जायगी।

रूपनगर की राजकुमारी के लूट की खबर दिल्ली जा पहुंची, जिस के कारण वहां पर बहुत ही हल्लागुल्ला मच गया। क्योंकि जालिम बादशाह ने इस खबर से आग हो कर अपनी फौज के सिपाहसालारों में से किसी को काम से अलग किया, किसी को कैद किया और किसी किसी को कटवा डाला।

पर जो सचमुच या असली कसूरवार थे अर्थात् चंचलकुमारी और राज सिंह, उन दोनों का वह कुछ भी उस समय न कर सका, क्योंकि उन दोनों को उतनी जल्दी सज़ा नहीं दी जा सकती थी। इस का कारण यह था कि यद्यपि मेवाड़ एक छोटा सा राज्य था, पर वह जगह बहुत ही कठिन थी। उस देश के चारो ओर बहुत ही बीहर पहाड़ों की चारदीवारी खिंची हुई थी; उस पर यह भी तो बड़ी कठिनाई थी कि सभी राजपूत वीर और राजासिंह हिन्दुओं में वीरचूड़ामणि थे। ऐसी आवस्था में राजपूत लोग कहां तक क्या क्या कर गुजरते हैं, इस बात को रानाप्रताप सिंह अकबर को अच्छी तरह सिखला गए थे। यहां तक कि जो अकबर अपने को दीन दुनियां का बादशाह समझता था; उसी ने प्रताप सिंह से वह मुंह की खाई थी कि कुछ दिनों तक किट्टे मुंह हो कर गोशेनशीनी अख़्त्यार की थी।

पर औरंगज़ेब किसी पर क्रोध कर के फिर उस गुस्से को पचानेवाला न था। उस ने तो सब तरह से हिन्दुओं का सत्यानाश ही करने को जन्म लिया था, इसलिये हिन्दुओं की गुस्ताकी को भला वह कब बर्दाश्त कर सकता था? तिस पर एक ओर से तो हिन्दू मरहटा उस बिचारे का बारम्बार बेइज्जती कर रहा था, अब दूसरी ओर से राजपूतों ने भी उस की हुर्मत बिगाड़ने के लिये सिर उठाया! पर न तो उस ने मरहटों का ही कुछ कर लिया और न राजपूतों ही का कुछ कर सकता था, इसलिये चोटीले सांप की तरह वह 'फंफों' कर के सिर पटकने लगा।

तब उस ने सोचा कि बिना ज़हर के उगले काम न चलेगा। बस एक

राजसिंह के अपराध पर उस दुष्ट ने सारी हिन्दूजाति को ही पीसने का पक्का इरादा कर लिया।

जिस तरह हमलोग इस समय इन्कमटैक्स को असह्य समझते हैं, उसी तरह इस से बहुत ही असह्य एक टैक्स मुसलमानी अमलदारी में जारी था। वह इतना असह्य इसलिये हो उठा था कि वह टैक्स केवल हिंदुओं ही से लिया जाता था और मुसलमान उस टैक्स से बाज़ रक्खे गए थे। उस सत्यनाशी टैक्स का नाम था, 'ज़िज़िया।' राजनीति के पूरे पण्डित अकबर ने उस टैक्स की बुराई को समझ कर उसे मौक़ूफ़ कर दिया था, तभी से वह बंद था, पर हिन्दुओं के घोर बैरी औरंज़ेब ने फिर उस दुखदाई टैक्स को जारी कर के हिंदुओं को बहुत ही कष्ट पहुंचाना प्रारंभ किया।

औरंगज़ेब ने ज़िज़िया के जारी करने का हुक्म तो बहुत पहिले से ही दे रक्खा था, पर राजसिंह से मुंहकी खा कर उस ने ज़िज़िया के लिये हिन्दुओं को इतना सताना आरंभ किया कि हिन्दू लोग मारे जुल्म के मरने किनारे पहुंच गए।

लाख लाख हिन्दुओं ने उस ज़ालिम के आगे नाक रगड़ी, पर उस अज़ीब पुतले ने तो दया या रहम का सबक़ ही नहीं पढ़ा था। प्रति शुक्रवार को जब वह जुमा मस्जिद में नमाज़ पढ़ने जाता तो लाख लाख हिन्दू इकट्ठे हो कर उस के आगे रोते कलपते और दुहाई मचाते, तब वह दुनियां का बादशाह दूसरे हिरण्यकशिपु की भांति आज्ञा देता कि "इस हिन्दुओं की सारी भीड़भाड़ को हाथियों से कुचलवा डालो।" हाय! पल भर में लाखों हिन्दू हाथियों के पैरों तले दरकचर गए! तब उन लोगों ने ज़िज़िया के बन्द करने के लिये दुहाई देना छोड़ दिया।

औरंगज़ेब की हुकूमत में भारतवर्ष ने ज़िज़िया दिया, ब्रह्मपुत्र से ले कर सिन्धु तक हिन्दुओं की देवमूर्त्तियां चूर चूर की गई, बहुत पुराने पुराने आकाश से बातें करनेवाले देव मन्दिर तोड़ फोड़ कर मटियामेट कर दिए गए, और उन की जगह पर मुसलमानों की मसाज़िदें बनाई गईं; काशी के विश्वेश्वर का मन्दिर ढाह दिया गया, श्रीवृन्दावन के केशवदेवजी का मन्दिर रसातल में मिलाया गया, और हाय! बंगाल में जो कुछ बंगालियों की

कारीगरी का बेजोड़ नमूना, और कीर्त्ति थी, वह सदा के लिये लोप हो गई।

राजसिंह से थपेड़ खा कर अब औरंगज़ेब ने आज्ञा दी कि राजपूताने के राजपूत लोग भी ज़िज़िया दें। पर वे लोग तो उस जालिम की रैयत थे नहीं, पर हिन्दू समझ कर उन लोगों पर भी यह हुक्म जारी किया गया। पहिले तो राजपूतों ने ज़िज़िया का देना न सकारा, पर बिचारे करते तो क्या करते? उस समय एक उदयपुर को छोड़ कर और सारा राजपूताना बिना मांझी की नाव की तरह डगमगा रहा था। बिचारे जयपुर के जयसिंह जिन का वाहुबल मोगल बादशाहत का एक बड़ा भारी सहारा था, वह उस समय मर चुके थे; विश्वासघातक बन्धु हत्यारे इसी चाण्डाल औरंगजेब की चाल-बाजी से ज़हर खिला कर बिचारे जयसिंह की जान ली गई थी, और उन का युवा पुत्र दिल्ली में कैद था, फिर कौन था, जो जयपुर को इस ज़ुल्म से बचाता, इसी कारन से जयपुर ने ज़िज़िया दिया।

योधपुर के यशोवन्त सिंह भी परलोक सिधार चुके थे। इस समय उन की रानी उनके बदले में राज चलाती थीं। अहा! स्त्री होकर भी उसने बादशाही मोलाजिमों को मार भगाया, तब औरंजेब उस से लड़ने पर उतारू हुआ। यह सुनकर बिचारी लड़ने की धमकी से डर गई। इतने पर भी उस हिन्दू रानी ने ज़िज़िया तो न दिया, वरन उस के एवज में अपने राज्य का कुछ थोड़ा सा हिस्सा उस दुष्ट के हवाले कर अपने सिर से बला टाली।

राजसिंह ने ज़िज़िया नहीं दिया, औरंगज़ेब के हज़ार सिर पटकने पर भी नहीं ही दिया। ज़िज़िया के बारे में उन्हों ने औरंगज़ेब को एक पत्र लिखा था। राजपूताने के इतिहास जाननेंवालों ने उसी पत्र के बारे में यों लिखा है:—

"महाराणा ने क्षत्रिय जाति की ओर से, जिस के कि वे अधिपति थे, पत्र द्वारा अपनी पूरी पूरी अनिच्छा प्रगट की थी, वह पत्र ऐसे ओजस्वी शब्दों में लिखा गया था, जिन (शब्दों) से राना के अपरिसीम प्रताप और गौरव की पूरी प्रभा निकल रही थी। और वह पत्र अपने नम्रता पूरित आशय से उस मर्मभेदी फिटकार को भली भांति झलक था जो कि अपरिसीम उपकार के कारण कोमलता में परिणत किया गया था।

और साथ ही वह पत्र ईश्वर की ईश्वरता और राना की वीरता मिली हुई असीम करुणाद्रता को इस भांति झलकाता था कि वैसा पत्र आज तक, और न आज के पहिले और न अब, न तो इसी देश में और न सारे संसार के किसी दूसरे ही देश वा समय में किसी सच्चे वीर की लेखनी से लिखा गया होगा। *

बस, राना का वही पत्र औरंगज़ेब की क्रोध रूपी आग में घी का काम कर गया। और राना पर झुंझला कर उस दुष्ट ने उन पर हुक्म जारी किया कि—"ज़िज़िया तो देनी ही पड़ेगी, अलावे इस के अपनी अमलदारी में गावकुशी भी बिला रोक टोक होने देनी होगी और बुतख़ाने सारे ढाह देने पड़ेंगे।" उस के इस तरह के परवाने पर थूक कर राजसिंह लड़ाई की तैयारी करने लगे।

औरंगज़ेब भी जंग की तैयारी करने लगा। उस ने इस चढ़ाई के लिये इतना भयावना जलूस बटोरा था कि जितना आज के पहिले कभी नहीं बटोरा था। वह शायद चीन या फ़ारस के बादशाह पर चढ़ाई करने के समय भी इतनी फ़ौज़ न जमा करता, जितनी कि एक छोटे से मेवाड़ राज्य के राना से लड़ने के लिये इकट्ठी की थी। जैसे आधे एशिया के बादशाह शेर (Xerxes) ने एक अदने ग्रीक राज्य को जीतने के लिये तैयारियां की थीं, वैसे ही आज सत्रहवीं शताब्दी के शेर [औरंगज़ेब] ने एक छोटे से राज्य के राजा राना राजसिंह को हराने के लिये पूरा पूरा जलूस जमा किया था। ये दोनों घटनाएं आपस में बराबर हैं, और इन दोनों के जोड़ की कोई तीसरी घटना अभी तक संसार में नहीं हुई है। पर हाय! हमलोग

---

* "The Rana remonstrated by letter, in the name of the nation of which he was the head, in a style of such uncompromising dignity, such lofty yet temperate resolve, so much of soul-stirring rebuke mingled, with a bcoundless and tolerating beenvolence, such elevating excess of the divinity with such pure philanthropy, that it may challenge competition with any epistolary production of any age, clan or condition."

Todd's Rajasthan—Vol. I. page 380.

ग्रीक देश के इतिहास को तो रट डालते हैं, और राजसिंह के इतिहास का नाम तक भी नहीं जानते; आजकल की नई शिक्षा का यही तो फल है।

छठां खण्ड।

आग सुलगाना।

पहिला परिच्छेद।

अरणिकाष्ठ—उर्वशी।

राजसिंह ने जो कलेजे को टुकड़े टुकड़े करनेवाला पत्र औरंगज़ेब को लिखा था, उस पत्र के भेजने के समय से हम इस आग भड़कानेवाले खंड को प्रारम्भ करते हैं। जब राजसिंह ने उस पत्र को लिख कर पूरा किया, तब इस बात की उलझन ने उन्हें बेचैन कर दिया कि "इस पत्र को औरंगज़ेब के पास ले कौन जाय?" क्योंकि यद्यपि राजनीति में दूत के बध करने की कड़ी मनाही की गई है, पर तौभी पाप करने में न हिचकनेवाले औरंगज़ेब ने बहुतेरे दूतों के प्रान ले डाले थे, यह बात सभी कोई जानते थे। इसीलिये राजसिंह वैसे दूत को भेजना चाहते थे कि जो औरंगज़ेब के हाथों चतुराई से अपना प्रान भी बचा लावे और काम भी कर आवे। पर यह बात बहुत ही कठिन थी, क्योंकि उन्हें ऐसा कोई भी नहीं दिखलाई देता था कि जो इतना चतुर हो कि अपनी जान को जोखों में डाल कर भी बेलाग बचालावे। और जब तक ऐसा धूर्त्त आदमी उन्हें न मिला तब तक उन्हों ने किसी के हाथ पत्र भेजा भी नहीं। तब मानिकलाल ने आकर बिनती की कि "श्री महाराज! मुझे इस काम के लिये भेजें।" इस बात पर पहिले तो वे रुके पर पीछे उसी को इस काम के लायक समझ कर उन्हों ने उस की बात मान ली।

इस समाचार को सुन चंचलकुमारी ने निर्मल को अपने पास बुला कर कहा—

"तुम भी अपने दूलह के साथ क्यों नहीं चली जाती?—"

निर्मल चकपका कर बोली—कहां जाऊं? दिल्ली? क्यों?

चंचल—एक बेर जरा बादशाह के रंग महल की हवा खा आओ।

निर्मल—पर, मैंने तो सुना है कि वह जगह नरक से भी गई बीती है।

चंचल—क्या नरक में तुम को कभी न जाना पड़ेगा? तुम बिचारे गरीब मानिकलाल पर इतना जुल्म करती हौ, जिस से भला कभी भी तुम्हारा नरक से निस्तार हो सकता है?

निर्मल—तो फिर मेरे मुखड़े पर लट्टू हो कर उस ने मुझे ब्याहा क्यों?

चंचल—मानो, उसी ने तो जब तुम मरने किनारे पेड़ के नीचे पड़ी पड़ी भिनकती थीं, तो जा कर नाक रगड़ी थी?

निर्मल—और नहीं तो क्या मैं दही दही करती उस के पास गई थी? भला मैं उस भुतहे की बोरिया बसना ढोती हुई दिल्ली में जा कर क्या करूंगी? भाड़ झोकूंगी?

चंचल—जरा उदयपुरी बेगम साहिबा को मेरी न्योते की चिट्ठी दे आतीं?

निर्मल—किस बात का न्योता?

चंचल—मेरी चिलम भरने का।

निर्मल—अच्छी याद दिलाई, मैं तो एक बात भूल ही गई थी। वह यह है कि जब तक कोई बेगमेजहां (पृथ्वीश्वरी) तुम्हारी टहलनी न बनेगी, तब तक तुम्हें भी भूत का बोझ ढोना नसीब न होगा।

चंचल—दूर हो, पापिन! मैं ही इस समय भूत का बोझा हो रही हूं; बस, या तो बादशाह की बेगम मेरी लौंडी बनेगी, या मैं विष खा कर अपने प्रान दे दूंगी। ज्योतिषी ने भी ऐसा ही फल कहा था न?

निर्मल—तो क्या चीठी के न्योते से ही बेगम चली आवेगी?

चंचल-नहीं ; मैं चाहती हूं कि जिस में भरपूर टंटा मचे। मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूं कि लड़ाई छिड़ते ही महाराना की जीत होगी, और फिर बेगम मेरी बांदी होगी। और दूसरा मतलब मेरा यह है कि जो तुम दिल्ली जाओगी तो सब बेगमों को चीन्ह आओगी।

निर्मल-पर यह काम मैं क्योंकर कर सकूंगी, इस का भी तो कोई उपाय बतलाओ ?

चंचल-सुनो, मैं बतलाती हूं। यह बात तो तुम्हें याद ही होगी कि योधपुरी बेगम का पंजा अभी तक मेरे पास रक्खा है। बस वह पंजा तुम लेती जाओ। उस पंजे की बदौलत तुम बेखटके रंग महल में जा सकोगी। और उसी पंजे ही की मदद से तुम योधपुरी बेगम से भी मिल सकोगी। उन से भेंट होने पर सारा हाल उन से कह सुनाना और उदयपुरी को जो मैंने चिट्ठी लिखी है, इसे भी उन को दिखलाना। वही इस चिट्ठी को किसी न किसी तरह उदयपुरी के पास तक पहुंचा देंगी। बस इतना ध्यान रखना कि जहां पर तुम्हारी समझ कुछ काम न दे, वहां अपने दूलह से थोड़ी सी समझ उधार ले लेना।

निर्मल-वाह जी ! मेरे ऐसी औरत के बदौलत ही उस की गिरस्ती चलती है !

यह कह कर हंसती हुई निर्मल चिट्ठी ले कर चंचल से बिदा हुई और अपने पति के साथ दिल्ली जाने की तैयारी करने लगी।

दूसरा परिच्छेद।

अरणिकाष्ठ—पुरुरवा।

पर तैयारी का भारी बोझ मानिकलाल ही के उपर था, जिस का एक नमूना उस ने एक दिन निर्मलकुमारी को दिखलाया था। निर्मल ने अचरज से देखा कि मानिक की कटी अंगुली की जगह पर एक नई अंगुली निकल आई है। उस ने पूछा कि "यह अंगुली कहां से निकल पड़ी ?"

मानिकलाल ने कहा-"नई बनवाई है।"

निर्मल—किस की ?

मानिक—हाथीदांत की। इस में सारे कल कब्ज़े बेमालूम लगे हैं, और ऊपर से बकरे की पतली झिल्ली चढ़ाई गई है, जिस से यह मेरे शरीर के चमड़े के रंग में मिलगई। केवल इतनाहीं नहीं, बरन जब मैं चाहूं, तब इसे खोल कर अलग कर सकता हूं।

निर्मल—पर इस के बनवाने से क्या लाभ होगा ?

मानिक—लाभ की बात दिल्ली में जान पड़ेगी। वहां पर मुझे भेस बदल कर रहना पड़ेगा। पर अंगुलीकट्टा आदमी कैसे छिपे या दूसरा भेस बना सकता है ? इसलिये इन दोनों बातों से मेरा काम भलीबिध चलेगा अर्थात् कभी अंगुली तैयार और कभी गायब।

इस पर निर्मल ठठाकर हंसी। फिर मानिकलाल ने एक कबूतर को पिंजरे में रखकर साथ लिया। वह कबूतर अच्छी तरह सिखलाया हुआ और दूत के काम में बड़ा चतुर था। जो लोग आजकल के योरोपीय युद्ध में "Carrier-Pigeon" के गुन जानते हैं, वेही लोग इस बात को समझ सकेंगे। पहिले भारतवर्ष में इस जाति के सिखलाए हुए कबूतरों का बर्त्ताव भलीभांति चलता था। फिर मानिकलाल ने उस कबूतर का सारा गुन निर्मलकुमारी को समझा दिया।

उस समय में यह रीति थी कि दिल्ली के बादशाह के पास जो राजे-महाराजे अपना दूत भेजते, वे उस के साथ कुछ नज़र या तोहफ़ा भी भेजते थे। यहां तक कि इङ्गलैंड और पुर्तगाल आदि योरोप के बादशाह भी दिल्ली के बादशाह को तोहफ़ा भेजते थे। इसी रीति के अनुसार राजसिंह ने भी कुछ नज़र मानिकलाल के साथ कर दी। पर यह तो अनबन के लिये दूत भेजा गया था, इसलिये ज्यादः तोहफ़ा उन्हों ने भेजा।

उस तोहफ़े की और और चीज़ों में संगमर्मर की बनी और नगीनों से जड़ी हुई कई चीज़ें थीं। मानिकलाल ने तोहफ़े की चीज़ों को एक एक खास छकड़े पर लाद लिया।

जानेवाले दिन राना का आज्ञापत्र और बादशाह के लिये चिट्ठी ले, निर्मलकुमारी के साथ, दास दासी, आदमी जन, हाथी, घोड़े, ऊंट, बैल,

खच्चर, इक्के, डोले, रिसाले आदि संग लेकर बड़े जलूस के साथ मानिकलाल ने दिल्ली की ओर कूच किया। वहां पहुंचने में बहुत दिन लगे और जब दिल्ली कई कोस बाकी रह गई, तब वहीं पर उस ने तंबू खड़ा किया और निर्मलकुमारी आदि सभों को उसी जगह छोड़ केवल एक विश्वासी आदमी को अपने साथ ले वह दिल्ली चला। और उस ने बादशाह के तोहफ़े को, जो कि पत्थर के बने हुए थे, अपने साथ लिया। और अपनी नकली अंगुली खोल कर निर्मलकुमारी के पास रखता गया। जाती बार इस ने कहा "कल आऊंगा।"

निर्मल ने पूछा—"यह बात क्या है?"

इस पर उस ने एक पत्थर के बर्त्तन को हाथ में उठा कर और उस पर एक तरह का निशान बनाकर निर्मल को दिखलाया और फिर कहा—"याद रखना इन सब बर्त्तनों पर ऐसा ही छोटा छोटा बेमालूम निशान बना दिया गया है।"

निर्मल—क्यों?

मानिक—दिल्ली में मेरे तुम्हारे छोड़ा छोड़ी ज़रूर होगी। इस के बाद जो कहीं बादशाह की पकड़धकड़ में पड़कर मैं तुम्हारी और तुम मेरी खोज-खबर न पाओ तो तुम किसी को पत्थर के बर्त्तन खरीदने बाज़ार में भेज देना। बस, जिस दुकान की जिन्सों में ऐसा निशान देखो, उसी दुकान पर मुझे खोज लेना।

यों सलाह कर के वह अपना विश्वासी आदमी और पत्थर के बर्त्तनों का बोझा लिये हुए दिल्ली में घुसा। वहां जा कर उस ने एक घर भाड़े पर लिया, और पत्थर की दुकान खोल और उस पर अपने साथी को बैठा कर शहर बाहर अपने तंबू में लौट आया।

फिर सारी फौज़ रिसाले और निर्मलकुमारी को लिये दिये जाहिरा तौर से दिल्ली में पहुंचा। और वहां पर भली भांति से छावनी डाल कर पादशाह के पास अपने आने की खबर भेजी।



तीसरा परिच्छेद।

आग इकट्ठा करना।

तीसरे पहर औरंगज़ेब दर्बार ख़ास में आकर बैठा, तब मानिकलाल वहां हाज़िर हुआ। दिल्ली के बादशाह के आम-वो-ख़ास दर्बार का हाल बहुतेरी पुस्तकों में लिखा गया है, इसलिये यहां पर उस के बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मानिकलाल ने पहिले, सीढ़ियों पर चढ़ कर एक बेर कूर्निश की, तब खड़ा हुआ। फिर तो एक पैर बढ़ाता और कूर्निश करता, फिर खड़ा होता; यों ही तीनबार कूर्निश कर वह 'तख़्त ताऊस' के पास पहुंचा। फिर उस ने लंबी सलाम कर के राज सिंह का दिया हुआ मामूली तोहफ़ा बादशाह के आगे रख दिया। पहिले औरंगज़ेब उस नाचीज़ और मामूली नज़र को ही देख कर जल उठा, पर कुछ बोला नहीं। उन तोहफ़ों में दो तल्वारें थीं, उन में एक तो म्यान के भीतर थी, और दूसरी नंगी। औरंगज़ेब ने केवल नंगी तल्वार ले कर बाक़ी सारी नज़र वापस कर दी।

फिर मानिकलाल ने उस के आगे राज सिंह का पत्र रख दिया। पर जब वह पत्र पढ़ा गया और उस का मतलब औरंगज़ेब ने समझा तो मारे क्रोध के वह थरथर कांपने और चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा देखने लगा। पर उस में एक ऐसा गुन था कि वह अपने क्रोध को अपने मन में ही छिपाए रहता, एकाएक दूसरों पर प्रगट नहीं होने देता था। बस, उस ने क्रोध को भीतर ही दबा कर मानिकलाल की ख़ूब ख़ातिरदारी की और बातचीत करनी शुरू की। फिर मानिक को बहुत बढ़ियां मकान में उतारने के लिये बख़्शी को आज्ञा दी। और दूसरे दिन राना के पत्र का जवाब देने का वादा कर के उसे रुख़्सत किया।

उसी समय दर्बार बर्ख़ास्त किया गया। और दर्बार से उठते ही उस ज़ालिम औरंगज़ेब ने चुपचाप मानिक के मार डालने की गुपचुप आज्ञा दे दी। क़त्ल का हुक्म तो हुआ, पर जो लोग मानिक को मार डालने के लिये तैनात किये गए थे, उन लोगों को हजार सिर पटकने पर भी मानिक

का पता न लगा। और जिन लोगों पर मानिक की खातिरी का बोझ डाला गया था, उन लोगों ने भी हजार खोजने पर भी उसे न पाया। दिल्ली के हर गली कूचे में सूई डोरे की तरह उस की खोज ढूंढ़ हुई पर किसी तरह भी वह हाथ न आया। क्योंकि वह इस बात को खूब जानता था कि जालिम औरंगज़ेब ज़रूर ही मुझे मार डालने का बंदोबस्त करेगा, यह समझ कर वह तभी चंपत हुआ था, जब कि बादशाह ने उस के कत्ल का हुक्म भी जल्लादों को न दिया था।

यहां पर यह तो लोग बिना कहे ही समझ लेंगे कि जब उस की इतनी खोज ढूंढ़ दिल्ली में मची हुई थी, उस समय वह भेस बदले हुए अपने पत्थर के बर्त्तनों की दूकान पर बैठा हुआ मौज मार रहा था। फिर जब कि बादशाही अहल्कारों ने उसे न पाया तो उस की छावनी में जिसे जिसे पाया, सभी को बांध कर कोतवाल के पास पहुंचाया। उन सभों के साथ निर्मलकुमारी भी पकड़ कर कोतवाल के आगे पेश की गई थी।

कोतवाल ने उन पकड़ेहुए आदमियों में से किसी से भी मानिकलाल की कुछ टोह न पाई। डर दिखलाने और मारपीट से भी कुछ नतीजा न निकला। क्योंकि वे बिचारे मानिक की चालाकी का कुछ भी भेद नहीं जानते थे, तो फिर बतलाते क्या?

फिर कोतवाल ने निर्मलकुमारी से पूछ पाछ करनी शुरू की। इतनी देर तक वह पर्देनशीन औरत समझकर अलग रक्खी गई थी, पर अब कोतवाल ने उसे सामने बुलाकर पूछना शुरू किया और वह बराबर पटापट्ट जवाब देने लगी।

कोतवाल—"तुम उस एलची को जानती हो?"

निर्मल—"नहीं; मैं राना के एलची को नहीं चीन्हती।"

कोतवाल—"उस का नाम है, मानिकलाल सिंह।"

निर्मल—"मुझे नहीं खबर है कि मानिकलाल सिंह किस बसर का नाम है।"

कोतवाल—"तुम क्या राना के एलची के साथ उदयपुर से नहीं आई हो?"

निर्मल—मैंने कभी ख्वाब में भी उदयपुर नहीं देखा है।

कोतवाल—तो फिर तुम हो कौन ?

निर्मल—मैं, जनाब योधपुर बेगम साहिबा की हिन्दू बांदी हूं।

कोतवाल-यह बात सरासर झूठ है, क्योंकि जनाब योधपुरी बेगम साहिबा की बांदियां महल के बाहर नहीं निकलतीं।

निर्मल—आप का फ़र्माना बजा है, मैं भी पेश्तर कभी महल से बाहर नहीं हुई थी, मगर इस मर्तबः हिन्दू एलची के आने की खबर सुन कर जनाब बेगम साहिबा ने मुझे उस के तम्बू में जाने की इजाज़त दी थी।

कोतवाल—क्यों, किस गरज़ से ?

निर्मल—सिरी किशुन जी के चरनाइमिरित के वास्ते। क्योंकि सभी राजपूत उस चीज़ को हरवक्त अपने पास रखते हैं।

कोतवाल—इस बात पर यक़ीन कामिल नहीं किया जा सकता, वजह इस की यह है कि एक तो तुम तनहा हो, दूसरे तुम महल के बाहर आने क्योंकर पाईं ?

निर्मल—इस की मदद से।

यह कह कर निर्मलकुमारी ने योधपुरी बेगम के पंजे को अपने आंचल में से खोल कर कोतवाल को दिखलाया जिसे देखते ही उस ने उठ कर उस पंजे को तीन सलाम की और फिर निर्मल से कहा—

"आप अब शौक़ से जाइए। बराहे मेहरबानी मेरी खता मुआफ़ कीजिएगा। अब आप शौक़ से जहां चाहें, जायं, आप को कोई नहीं रोक सकता, अगर इर्शाद हो तो दावेदार खुद आप को महल की पहिली ड्योढ़ी तक पहुंचा दे।"

निर्मल ने मुसकुरा कर कहा—"जी, इस की कोई ज़रूरत नहीं है; मगर जनाब कोतवाल साहब ! आप मेरे साथ क्यों तकलीफ करते हैं ? अगर ऐसा ही आप का इरादा हो तो किसी हबशीगुलाम को मेरे साथ कर दें, वह मुझे महल की ड्योढ़ी तक पहुंचा दे। गो कि इस की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है, मगर लाचारी तो यह है कि एक तो आज के पहिले मैं कभी महल के बाहर न हुई, दूसरे आज आप की धर पकड़ में फंस कर मैं ऐसी घबरा गई हूं कि अभी तक मेरा कलेजा बांसों उछल रहा है, लिहाजा आप

मेहरबानी कर के एक जानकार आदमी मेरे हमराह कर दें कि वह मुझे महल तक पहुंचा दे।"

यह सुनते ही कोतवाल ने बड़े तपाक के साथ कहा—"बहुत खूब," और फिर एक हबशी को नंगी तलवार दे और अच्छी तरह समझा बुझाकर निर्मल को बादशाही महल की ड्योढ़ी तक पहुंचा देने का हुक्म दिया। बस फिर क्या था? बात की बात में निर्मल ने महल की पहिली ड्योढ़ी तक पहुंच कर कोतवाल के खोजे को बिदा कर दिया। यदि वह सात जनम लेती तौभी बादशाही महल में न घुसने पाती, पर बादशाह की असल बेगम का पंजा दखे कर किसी खोजे, सिपाही, या पहरेवाले ने उसे न रोका। और वह (निर्मल) चालाकी से बात बना कर पूछती पूछती याधे-पुरी बेगम के महल तक जा पहुंची। फिर बेगम के पास जा कर उस ने पालागन किया और उन का पंजा उन के हाथ धरा उस पंजे को देखते ही बेगम साहिबा होशियार हो गई, और निर्मल को अकेले में ले जा कर पूछ पाछ करने लगीं। उन्हों ने पूछा—

"तुम ने यह पंजा कहां पाया?"

निर्मलकुमारी ने कहा—"मैं सारी कहानी ओर से ले कर कह सुनाती हूं, तब आप सब बातें समझ जायंगी।"

यह कह कर पहिले तो उस ने अपना पता बताया। फिर देवी का रूपनगर जाना कह सुनाया। उस ने वहां जा कर बेगम की ओर से जो कुछ चंचल से कहा था, वह बातें कहीं, पंजा देने की बात सुनाई, और फिर चंचल और अपने (निर्मल) के ऊपर जो कुछ बीती थी, उस का ब्योरा कहा। फिर उस ने अपने दूलह मानिकलाल का हाल कहा। और उस के साथ जो वह चंचलकुमारी का पत्र उदयपुरी बेगम के पास पहुंचाने आई थी, यह बात भी कही। फिर दिल्ली में आने पर वह जैसी आफ़त में फंसी थी, उस का हाल कहा। और जिस तरह कोतवाल को उल्लू बना कर साफ निकल आई थी, यह भी कह डाला। इस के बाद जिस जिस ढंग से महल का पता लगाती और पहरेवाले को ठगती वह महल में पहुंची थी, सो भी सुनाया। और सब कुछ कह चुकने पर उस ने चंचलकुमारी की

उस चिट्ठी को बेगम साहब के हाथ में रक्खा, जो उदयपुरी बेगम के वास्ते लाई थी। और फिर वह अखीर में बोली—

"यह चिट्ठी किस ढब से उदयपुरी बेगम के पास तक पहुंचाई जाय, इस का उपाय आप बतलाइये। क्योंकि इसी लिये आप के पास मैं आई हूं।"

बेगम साहिबा ने कहा—"उस के लिये एक ढंग रचना पड़ेगा। उस में ज़ेबउन्निसा बेगम के हुक्म की ज़रूरत है। पर उस हुक्मनामे को अभी लेने में फ़साद खड़ा होगा। इस समय चुपकी हो रहो और जब रात को वह पापिन शराब के नशे में चूर हो जायगी, तब इस का उपाय मैं कर दूंगी। अभी तुम मेरी हिन्दू बांदियों में मिल रहो। किसी तरह का खटका जी में मत लाना, मैं अभी तक पक्की और पूरी हिन्दू बनी हुई हूं, मेरी सब बांदियां हिन्दू हैं, उन के हाथ के अन्न जल खाने पीने में कोई हर्ज नहीं है।"

इस पर निर्मलकुमारी राजी हुई तब बेगम साहिबा ने उस के खाने पीने के इंतजाम करने की अपनी हिन्दू लौंड़ियों को हुक्म दिया और यह भी कहा कि इस की सेवा टहल में जरा भी कसर न हो।

—०—

चौथा परिच्छेद।

समिध संग्रह—उदयपुरी।

जब रात बहुत जा चुकी, तब योधपुरी बेगम ने निर्मल को बहुत कुछ भेदवाली बातें समझा बुझाकर उसे एक तातारी पहरेवाली को साथ दे कर ज़ेबउन्निसा के पास भेज दिया। जब वह ज़ेबउन्निसा के ऐशमहल के भीतर पहुंची तो उस का दिल अतर, फूल और तम्बाकू की खुशबू से बाग बाग हो गया। भांति भांति के रत्नों से सजीले महल, सेज, बिस्तरे, और घर के साज देख कर वह भौचक सी निहारती ही रह गई। और सब से बढ़ कर तो वह तब अचरज के समुद्र में लहरें मारने लगी, जब कि उस ने उसऐशमहल

की सब अनोखी चीज़ों से बढ़ कर ज़ेबउन्निसा की सजावट देखी । उस समय वह (ज़ेबउन्निसा) अनोखे रतन और खुशबूदार, फूलों से नख से सिख तक सँवारी हुई चन्द्रमा की चटक चाँदनी को अपनी चकाचौंध से फीकी बना रही थी। और अपनी नज़ाकत और आरास्तगी से वह घोर पापिन भी स्वर्ग की अप्सराओं सी जान पड़ती थी। उस की ऐसी चमक दमक, ख़ूबसूरती, नज़ाकत और आरास्तगी देख कर निर्मल भौंचक सी हो दर्वाज़े ही पर ठिठक रही।

पर उस समय तो उस परी की रतनार आँखें शराब के नशे में झूम रही थीं, मुखड़े पर सुर्खी दौड़ रही थी, दिल हवाई घोड़े पर सरपट दौड़ रहा था और अंगूरी शराब का पूरा अमल उस पर ग़ालिब था।

जब निर्मलकुमारी उस के सामने जाकर खड़ी हुई तब उस ने लड़खड़ाती हुई जीभ हिलाकर पूछा—

"तू कौन है ?"

निर्मलकुमारी ने जवाब दिया—हुज़ूर ! मैं उदयपुर की महारानी की दूती हूं।

ज़ेब०-मोगल बादशाह के तख्त ताऊस को ले जाने के वास्ते तू आई है ?

निर्मल—जी नहीं; मैं महारानी जी की चिट्ठी लेकर आई हूं।

ज़ेब०-खत का क्या होगा ? क्या उसे जलाकर रोशनाई बनाई जायगी ?

निर्मल—जी नहीं; इस चिट्ठी को मैं जनाब उदयपुरी बेग़मसाहिबा की खिजमत में पेश किया चाहती हूं।

ज़ेब०—वह अभी तक ज़िंदः है, या मरगई ?

निर्मल—मैं तो समझती हूं कि अभीतक वह जीती होगी।

ज़ेब—हर्गिज़ नहीं; वह कभी की जहन्नुमरसीदः होचुकी । कोई हाज़िर है ? इस एलचिन को उदयपुरी बेग़म के पास पहुंचा दे।

ज़ेबउन्निसा के इस वाहीतवाही बकने का असल मतलब तो यह था कि "कोई इस बांदी को जहन्नुम में पहुंचा दे।" पर तातारी पहरेवाली ने उस का यह मतलब न समझा, बल्कि उस ने उस बात का सीधा मतलब समझ कर निर्मलकुमारी को उदयपुरी बेग़म के पास पहुंचा दिया।

वहां पहुंच कर निर्मल ने देखा कि उदयपुरी बेग़म की नशीली आंखें

दप दप कर रही हैं, हंसी का फव्वारा छूट रहा है और दिल खुशी के मारे बागबाग हो रहा है। यह देख कर उस ने बेगम को खूब झुक कर एक लंबी सलाम की। तब उदयपुरी ने पूछा—

"आप कौन हैं ?"

निर्मल ने जवाब दिया—"जनाब ! मैं उदयपुर की महारानी जी की दूती हूं और उन की चिट्ठी ले कर आप की खिज़मत में हाज़िर हुई हूं"।

उदयपुरी—नहीं, नहीं ! तुम मुल्कफ़ारस के बादशाह हो, चुनांचे मोगल बादशाह के कब्ज़े से मुझे निकाल ले जाने वास्ते यहां तशरीफ़ लाए हो।

यह सुन और अपनी हंसी को भरजोर रोककर निर्मलकुमारी ने चंचलकुमारी की चिट्ठी उदयपुरी के हाथ में पकड़ा दी। उसे लेकर और उस के पढ़ने की नकल काछ कर वह कहने लगी—

"वह क्या लिखता है ? यही कि 'अय ! नाज़नी ! दिलरुबा, मेरी ! तुम्हारी बेनज़ीर खूबसूरती और बेहद दौलत की शोहरत सुन कर मैं निहायत बेताब और दिवाना हो गया हूं, चुनांचे तुम जल्द कदमरंजा फर्माकर मेरे दिल की आरज़ू पूरी करो'। अच्छा ! मेरे आशिक से कहना कि वह बेकरार न हो, मैं बहुत जल्द उस की दिली आरज़ू पूरी करूंगी। और बेशक तुम्हारे ही हमराह चलूंगी। आप ज़रा एक लहज़े ठहर जाइए—मैं ज़रा शराब पी लूं, तब रवाना होऊंगी। हां ! हज़ूर भी तो जरा इस लज़ीज़ शराब को नोश फ़र्माएं, तबीयत फड़क उठेगी, हौसला दूना हो जायगा, और ऐशो इशरत का दर्या जोश मारने लगेगा। निहायत ही उमृदा शराब है, इसे फिरंगी के एलची ने मुझे नज़र किया है। ऐसी लज़ीज़ शराब आप के मुल्क में हर्गिज़ नसीब न होगी।"

यह कह कर उदयपुरी ने शराब का प्याला मुंह से लगाया, उसी औसर में निर्मलकुमारी वहां से खसक कर योधपुरी बेगम के पास जा पहुंची और उन के पूछने पर दोनों जगह जो कुछ हुआ था उसे सुना गई। उसे सुन और हंस कर बेगम साहिबा ने कहा—

"कल वह चिट्ठी ठिकाने से पहुंच कर बड़ा भारी गुल खिलावेगी, इस लिये तुम अभी इसी समय यहां से निकल भागो। नहीं तो न जाने कल

कौन सी आफ़त आवे। मैं तुम्हारे साथ एक जँचे हुए खोजे को कर देती हूं, वह तुम्हें महल के बाहर निकाल कर बखेटके तुम्हारे पति की छावनी में पहुंचा आवेगा। वहां पर यदि तुम अपने पति या अपने साथवालों को पाओ तो उन सभों को लियेदिये आते ही दिल्ली के बाहर खसक देना, और यदि तुम्हारी छावनी उखड़ गई हो और तुम अपने साथियों में से किसी को न देखो तो इसी खोज़े के साथ दिल्ली से बाहर निकल जाना। मैं समझती हूं कि तुम्हारे पति यदि दिल्ली में न होंगे तो इस के बाहर कहीं न कहीं जरूरही तुम्हारे लिये लुके छिपे तुम्हारी बाट जोहते होंगे। पर जो रास्ते में भी उन से तुम्हारी भेंट न हो तो घबराना मत, यह खोजा उदयपुर तक साथ जा कर तुम को पहुंचा आवेगा। तुम्हारे पास खर्चबर्च न होगा, वह सब मैं देती हूं, पर खबरदार, ऐसी कोई बात न कर बैठना, जिस से मैं पकड़ी जाऊं।"

निर्मल ने कहा—"हज़रत बेगम साहिबा! इस बात से आप बेखौफ़ रहें, जान जाय, सो भी कबूल, पर आप पर किसी तरह की आंच न आने दूंगी; क्योंकि मैं भी राजपूतिन हूं इसलिये अपने भलाई करनेवाले के साथ बुराई करना नहीं जानती।"

तब योधपुरी बेगम ने बनासी नाम के अपने एक विश्वासी खोज़े को बुला कर सब तरह से ऊंचनीच समझा दिया और फिर पूछा—"बतला! इसी वक़्त तू जा सकता है न?"

बनासी ने कहा—"क्यों नहीं जा सकता, हुज़ूर! मगर बेगम ज़ेबउन्निसा का एक दस्तख़ती परवाना जरूर मिलना चाहिए, बग़ैर उस के इतने बड़े जोख़ों के काम में कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं होती।"

इस पर योधपुरी ने कहा—"अच्छा, चलाजा, और जैसा परवाना तू चाहता हो, वैसा लिखवा ला; फिर मैं बेगम ज़ेबउन्निसा का दस्तख़त करवा दूंगी।"

यह सुन कर खोजा बात की बात में किसी मुन्शी से अपने मतलब का एक परवाना लिखवा लाया; तब बेगम योधपुरी ने अपनी उसी तातारी बांदी के हाथ में उस परवाने को दे कर कहा—"जा, इस पर बेगम साहिबा का दस्तख़त तो करवा ला।"

उस ने पूछा—"अगर वह पूछेंगी कि 'यह किस बात का पर्वाना है' तो क्या जवाब दूंगी ?"

योधपुरी ने कहा—"जवाब दीजो कि 'मेरे कत्ल का पर्वाना है,' पर होशियार कलम दावात यहीं से लेती जा, और इस पर उन की मोहर छापना मत भूलियो।"

यह सुन वह तातारी पहरेवाली कलम दावात और पर्वाना लिये हुई ज़ेबउन्निसा के ऐशमहल में जा पहुंची, और उस के आगे परवाना रख कर खड़ी रही। वह (ज़ेबउन्निसा) अभी तक उसी तरह नशे के गोते में गड़ा-गप्प थी, उसी झोंक में उस ने पूछा—

"यह किस बात का पर्वाना है ?"

तातारी पहरेवाली ने कहा—"हुजूर ! यह मेरे कत्ल का पर्वाना है।"

ज़ेब०—क्या चोरी की है ?

पहरेवाली—हज़रत उदयपुरी बेगम साहिबा की पेशवाज़।

ज़ेब०—खूब किया—कत्ल के बाद पहिर लीजियो।

यह कह कर उस ने परवाने पर सही कर दी और पहरेवाली ने उस पर पंजा (मोहर) छाप कर योधपुरी के हाथों ला धरा। और बनासी उस पर्वाने और निर्मल को ले कर योधपुरी के महल से बाहर हुआ।

पर एकाएक उस के चेहरे पर मुर्दनी छा गई और महल के फाटक के पास पहुंचते ही वह मारे डर के बदहवास हो गया, वह वहीं ठिठक रहा और निर्मल से बोला—

"कयामत, कयामत ! बला नमूद हुई ! भागो ! भागो !" यह कहता हुआ वह सांस रोक कर एक ओर भाग गया।



पांचवां परिच्छेद।

समिध संग्रह—स्वयं यमराज।

पर निर्मल की समझ में यह बात न आई कि 'यह मुआ क्यों भागने के लिये चिल्ला उठा!' उस ने चारों ओर आंख उठा कर देखा, पर भागने का कोई कारन उसे न दिखलाई दिया। केवल इतना ही उस ने देखा कि रंगमहल के सदर फाटक पर एक सफ़ेद डाढ़ीवाला बुड्ढा खड़ा है। उस बुड्ढे को देख कर उस ने सोचा कि 'क्या यह बुड्ढा भूतप्रेत है, जिसे देख कर खोजा भाग गया?' पर वह तो भूत प्रेत से डरनेवाली स्त्री न थी, इसलिये वह भागी तो नहीं, पर कुछ आगा पीछा करने लगी। इतने ही में वह लम्बी डाढ़ीवाला बुड्ढा आकर उस के पास खड़ा हो गया, और उसे भरपूर सिर से पैर तक निहार कर पूछ बैठा—

"तुम कौन हो?"

निर्मल ने कहा—चाहे मैं कोई होऊं, फिर तुम्हें मतलब?

पर उस की बात अनसुनी कर बुड्ढे ने फिर पूछा—"तुम कहां जाती थीं?"

निर्मल—बाहिर।

बुड्ढा—क्यों?

निर्मल—कुछ काम है।

बुड्ढा—यह मुझे मालूम है कि बिला वजह कोई कुछ नहीं करता, लिहाजा वह कौन सा काम है, जिस के खातिर तुम बाहर जाना चाहती हो?

निर्मल—इसे मैं नहीं बतलाना चाहती।

बुड्ढा—तुम्हारे हमराह दूसरा कौन सख़्श था?

निर्मल—यह भी मैं न बताऊंगी।

बुड्ढा—तुम हिन्दू की लड़की जान पड़ती हो, ख़ैर, तुम्हारी जात क्या है?

निर्मल—राजपूत।

बुड्ढा—तुम क्या योधपुरी बेगम के पास रहती हौ ?

इस बात की तो निर्मल ने पूरी प्रतिज्ञा की थी कि 'किसी के आगे योधपुरी बेगम का नाम न लूंगी' क्योंकि वह इस बात को खूब जानती थी कि 'उन का नाम प्रगट करने से उन पर जरूर आफ़त आवेगी।' इसलिये उस ने कहा—"मैं यहां नहीं रहती, बस आज ही आई थी।"

बुड्ढे ने पूछा—"कहां से आई हौ ?"

यह सुन निर्मल ने सोचा कि 'झूठ क्यों बोलूं ? यह मुआ मेरा करेगा क्या ? तो फिर किस के डर से राजपूत की लड़की हो कर मैं झूठ बोलूं ?' यह सोच कर उस ने कहा—

"मैं उदयपुर से आई हूं।"

तब उस बुड्ढे ने फिर पूछा—"किस गरज़ से आइ हौ ?"

निर्मल ने मन में कहा कि 'यह कम्बख्त मेरा कौन है, जो मैं इस के इतने सवालों का जवाब दूं ?' यह सोच कर कहा—

"आप को इतना परिचय देने से क्या लाभ है ? इसलिये इतनी पूछ-पाछ न कर के यदि आप मुझे महल के फाटक से बाहर पहुंचा दें तो मैं आप का बड़ा गुन मानूंगी।"

इस पर बुड्ढे ने जवाब दिया—

"अपने सवालों का अगर खातिरखाह जवाब तुम से पाऊंगा तो बेशक तुम्हें फाटक के बाहर पहुंचा दूंगा।"

निर्मल ने कहा—"पर जब तक मैं यह न जान लूं कि 'आप हैं कौन ?' तब तक सब बातें आप को न बतलाऊंगी।"

बुड्ढे ने कहा—"मैं आलमगीर बादशाह हूं।"

तब तो निर्मल को उस तस्वीर की याद आई, जो एक दिन (पहले) चंचलकुमारी के पैर तले चुर्रमुर्र हो गई थी। उस समय उस ने दांतोंतले जीभ दबाकर आप ही आप कहा कि—"हां, है तो वही।"

फिर उस ने तुरंत जमीन चूम कर बादशाह को लंबी सलाम की और हाथ जोड़कर कहा—

"हजूर ! गुस्ताखी माफ हो, मैंने जहांपनाह को पहिचाना न था। अब क्या हुक्म होता है, सो फर्माइए।"

बादशाह ने कहा—"तुम यहां किस के पास आई थीं ?"

निर्मल—हज़रत बादशाहे बेगम उदयपुरी साहिबा की खिज़मत में।

बादशाह—किस ग़रज से? उदयपुर से उदयपुरी के पास? क्यों?

निर्मल—उन को एक चिट्ठी देनी थी।

बादशाह-किस का खत था?

निर्मल-महाराना राजसिंह की महारानी का।

बादशाह-देखें! वह खत कहां है?

निर्मल-उसे मैं हज़रत बेगम साहिबा के हजूर में पेश कर चुकी।

यह सुन कर तो बादशाह बहुत ही चकपकाया, फिर बोला—"अच्छा हमारे साथ आओ।"

फिर तो निर्मल को साथ लिये हुए वह उदयपुरी के महल में पहुंचा। और निर्मल को महल के दर्वाजे पर ठहरा कर तातारी पहरेवाली से उस ने कहा कि, "खबरदार! यह औरत भागने न पावे।" और फिर उस ने उदयपुरी की ख्वाबगाह में जा कर देखा कि वह गहरी नींद में बेखबर पड़ी हुई खुर्राटे ले रही है। और उस के बिछावन पर वह चिट्ठी पड़ी हुई है। चट उस चिट्ठी को उठा कर औरंगज़ेब ने पढ़ा। उस समय की रीति के अनुसार वह फ़ारसी ही में लिखी हुई थी।

चिट्ठी पढ़ते ही बर्सात की सन्ध्या समयवाली मेघमाला की भांति लाल पीला हो कर वह बाहर आया और निर्मल से बोला—

"तू किस तरह इस महल के भीतर घुस सकी?"

निर्मल ने हाथ जोड़ कर कहा-" लौंडी का कसूर माफ कीजिएगा, मैं इस सवाल का जवाब नहीं दे सकती।"

यह सुनते ही औरंगजेब के ताज्जुब का हद न रहा, उस ने कहा-"क्या तेरी इतनी बड़ी हौसला हो गया कि मैं दीनदुनियां का बादशाह हूं, सो मेरे ही सवाल का जवाब तू न देगी? एं?"

निर्मल ने हाथ जोड़े हुए कहा—" बेशक, दुनियां हुजूर की बेशक है, मगर मेरी जीभ तो मेरी ही है, इसलिये जिस बात को मैं न कहना चाहूं, उसे दीनदुनियां के बादशाह किसी तरह भी नहीं कहला सकते।"

औरंगज़ेब—चाहे हम न कहला सकें, मगर जिस जबान की तू इतनी

तारीफ़ कर रही है, उसे अभी इस तातारी पहरेवाली से कटवा कर कुत्ते को खिला सकते हैं।

निर्मल—जो मर्जी, दिल्ली के बादशाह की! पर ऐसा करने में जिस खबर की आप तलाश कर रहे हैं, उस के जाहिर करनेवाली राह हमेशे के लिये बन्द हो जायगी।

औरंगज़ेब—इसी गरज से तो अभी तक तेरी जबान नहीं तराशी गई। अब तेरे वास्ते यह हुक्म दिया जाता है कि आग दहका कर और तुझे कपड़े में लपेट कर आहिस्तः आहिस्तः तातारिनें जलावेंगी, तब आग की जलन से तू जरूर हमारे सवाल का जवाब देगी।

इसे सुनकर निर्मल हंस पड़ी और बोली—"खातिरजमा रखिए! हिन्दू की लड़कियां आग में जल मरने से नहीं डरतीं। क्या हिन्दुस्तान के बादशाह ने यह बात नहीं सुनी है कि हिन्दू की लड़कियां हंसती हंसती अपने पति के साथ लहकती हुई चिता पर बैठ कर जल जाती हैं? इसलिये आप मुझे जैसे मारने का डर दिखलाते हैं, उस से मैं जरा नहीं डरती। क्योंकि मेरी मां, मौसी, नानी, दादी आदि बराबर से योहीं अपने अपने पति के साथ चिता पर जल चुकी हैं। और मैं भी परमेश्वर से यह चाहती हूं कि उस की दया से एक दिन अपने पति के साथ जलती चिता पर भसम हो जाऊं।"

यह सुन कर बादशाह ने आप ही आप कहा—"वाह वाह! वाह वाह!!" फिर निर्मल से कहा—"खैर, इन बातों पर पीछे गौर किया जायगा, बिलफ़ैल तुम इसी महल की एक कोठरी में कैद की जाती हो। और सुनो! जब तुम भूख प्यास की तकलीफ से तड़पने लगोगी, और तुम को दाना पानी कुछ भी न मिलेगा, और जब तुम्हें यह बात बखूबी मालूम हो जायगी कि अब जान निकला चाहती है, तब तुम भीतर से किवाड़ी भरकाना, उसी वक्त पहरेवाली दर्वाजा खोल कर तुम्हें हमारे पास ले आवेगी। बस उस वक्त जब तुम हमारे सवाल का जवाब दे लोगी, तब दाना पानी पाओगी।"

निर्मल ने मुसकुरा कर कहा—"शाहंशाह! आप का किधर खयाल है? क्या आप ने यह बात कभी सुनी ही नहीं है कि हिन्दू औरतें ब्रत उपवास किया करती हैं? और उस उपास में एक, दो, तीन, चार, पांच, छः सात सात दिन तक एक बूंद पानी तक मुंह में नहीं डालतीं? क्या आप ने यह

भी नहीं सुना है कि देवता पर धन्ना देने के लिये लोग अठवाड़ों, बिसवाड़ों बरन महीनों उपास कर डालते हैं ? और क्या यह भी आप ने नहीं सुना है कि कभी कभी हिन्दूलोग जानबूझ कर उपास करते करते अपने प्रान दे डालते हैं। इसलिये, जहांपनाह ! यह लौंड़ी भी उपास कर जान दे देने में कमजोर नहीं है। अगर दिल चाहे तो मुझे भूखी प्यासी रखकर मरतेदम तक मेरी इम्तेहान ले लीजिए।"

तब तो औरंगज़ेब ने खूब समझ लिया कि 'इस हठीली औरत को धमकाने से कुछ भी फायदा न होगा और इस के मार डालने से भी क्या हासिल है ? मगर इस के जिस्म पर कड़ी कड़ी तकलीफ़ पहुंचाने से क्या नतीजा निकलेगा, यह भी नहीं खयाल में आता,' यह सब सोच विचार कर उस ने कहा—

"अच्छा, तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ न देंगे, और तुम को मालामाल कर के रुख़सत कर देंगे, लिहाज़ा अब तुम हम को सारा हाल सही सही बतला दो।"

निर्मल ने कहा—"सुनिए, हुजूर ! राजपूतिनें जिस तरह मौत को तुच्छ समझती हैं, उसी तरह धनदौलत को भी किसी गिनती में नहीं समझतीं। मैं एक अदनी औरत हूं, इसलिये आप अपने बड़प्पन का खयाल कर के मुझे योंहीं बिदा कीजिए।"

औरंगज़ेब—सुन, री ! हठीली औरत ! दुनियां में क्या ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जिसे दिल्ली का बादशाह न दे सकता हो ? चुनांचे हम से मांगने लायक तुम्हारे दिल में किसी चीज़ की भी ख्वाहिश नहीं है ?

निर्मल—हां है; केवल हंसी खुशी मुझे बिदा कर देना।

बादशाह—बस, फ़क़त यही चीज़ अभी नहीं मिल सकती। इस के अलावे और क्या इस दुनियां में ऐसी कोई भी चीज़ नहीं है, जिसे तुम चाहती हो, या जिस से डरती हो ?

निर्मल—बेशक, एक चीज़ मैं चाहती हूं, पर वह रतन दिल्ली के बादशाह के भंडार में हई नहीं ?

बादशाह—वह कौन सा ज़वाहिर है ?

निर्मल—सुनिए, मैं हिन्दू हूं, हमलोग संसार में केवल धर्म ही को

चाहतीं और एक धर्म ही से डरती भी हैं। पर वह धर्म दिल्ली के बादशाह के खजाने में कहां है ? एक तो आप मुसलमान हैं, दूसरे दौलत के घंमड में मतवाले; फिर आप की क्या ताकत है कि मेरी चाही हुई चीज़ (धर्म) आप न दे सकें, या उसे मेरे पास से छीन सकें।

दिल्ली का शाहंशाह औरंगज़ेब निर्मल का ढीठपन और चतुराई देख अपना क्रोध दूर कर अचरज में डूब रहा था, पर निर्मल की इस जलती बात को सुन कर फिर वह लहक उठा; उस ने कहा—

"दुरुस्त! दुरुस्त! यह बात तो मैं भूल ही गया था" यों कह कर उस ने एक तातारी को हुक्म दिया कि—"जा, फ़ौरन बावर्चीखाने से गाय का गोश्त ला कर और दो चार जनी इस टिर्रिन को पटक कर इस के मुंह में ठूंस दो।"

इस बात को सुन कर भी हठीली निर्मल न डरी, वरन बोल उठी—"आप लोगों की इस हिकमत को भी मैं खूब जानती हूं। आप लोगों ने फ़क़त इसी हिकमत के सहारे ही इस सोने सरीखे हिन्दुस्तान को गटक लिया है। मुझ से यह बात भी नहीं छिपी है कि अक्सर मुसलमानों ने गौवों के झुंड आगे कर के लड़ाई लड़ कर हिन्दुओं को हराया है; नहीं तो राजपूतों के बाहुबल के आगे मुसलमानों की ताकत ऐसी ही है, जैसे समुद्र के आगे गौ के खुर डूबने लायक गढ़ा। सुनिए, इस समय मुझे एक बात और आप को समझा देनी पड़ी। क्या आप को यह नहीं मालूम है कि राजपूतिनें बिना अपने पास जहर रक्खे एक पैर भी आगे नहीं बढ़तीं ? मेरे पास ऐसा तेज़ ज़हर है कि आप की लौंड़ियों के गोमांस ले कर इस घर में आने के बाद भी जो मैं इस जहर को मुंह में डालूं तो फिर जीतेजी मेरे मुंह में वह सत्यानाशी चीज़ कोई नहीं डाल सकेगा। जहांपनाह! आप अपने बड़े भाई दाराशिकोह को कत्ल कर उस की दोनों जोरुओं को लेने गए थे, पर क्या उन दोनों ही को आप ने पाया ? बदज़ात क्रिरिस्तानी तो आप के साथ बेशक आई, यह मैं भी जानती हूं; पर राजपूतिन आप के मुंह पर सात पैजार मार स्वर्ग को चली गई; क्या यह बात आप को भूली होगी ? बस, याद रखिए, मैं भी अभी आप के मुंह पर सात झाड़ू मार कर स्वर्ग सिधार जाऊंगी।"

निर्मल की ऐसी लगती हुई बातें सुन कर तो बादशाह के होश उड़ गए

और क्यों कर न उड़ते ? जो दीनदुनियां का बादशाह कहलाता था, सारे संसार में जिस का रोबदाब फैला हुआ था, जो सारे हिन्दुस्तान को रुलानेवाला रावण था, वही आज एक तुच्छ और असहाय औरत से इतना बेइज़्ज़त हुआ और हारा। उस ने दिल से अपनी हार कबूल की, और आप ही आप कहा—"यह औरत गौहरे बेबहा है, इसे तहसनहस न करना चाहिए। हम इसे अपनी मुट्ठी में कर लेंगे।" फिर उस ने बड़ी मिठास के साथ निर्मल से कहा—"तुम्हारा नाम क्या है, दिलरुबा ?"

निर्मलकुमारी ने हंस कर कहा—"यह क्या, जहांपनाह ! क्या अभीतक राजपूतिनों को बेगम बनानेकी आरज़ू पूरी नहीं हुई है ? अगर अभीतक ऐसी आरज़ू आप के तहेदिल में हो तो उसे खोद बहाइए; क्योंकि मेरी शादी हो चुकी है और मेरा [हिन्दू] शौहर जीता है।"

बादशाह—खैर, इस अम्र को अभी मौकूफ़ रक्खो, और बिलफ़ैल तुम कुछ दिनों हमारे इसी रंगमहल में रहो। हमारे इस हुक्म को शायद तुम रद न करोगी !

निर्मल—आप क्यों मुझे नाहक रोकते हैं ?

बादशाह—अगर अभी तुम अपने वतन को लौट जाओगी तो हमारी बहुत ही बदगोई करोगी; लिहाज़ा, जिस में तुम मेरी तारीफ़ करो, अब से वैसा ही सलूक हम तुम्हारे साथ करेंगे। और जब तुम्हारे दिल से हमारी ओर का बुरा खयाल रफा हो जायगा, तब तुम्हें खुशी से जाने की इजाज़त देंगे।

निर्मल—लाचार हूं, अगर आप न जाने देंगे तो मेरी क्या मजाल है कि मैं जा सकूं ! मगर जो आप मेरी कई शर्तों को मंजूर करें तो मैं कुछ दिनों तक यहां रह सकती हूं।

बादशाह—कौन कौन सी शर्तें ?

निर्मल—हिन्दू के हाथ के अलावे और मैं किसी का छुआ हुआ अन्नजल अपने काम में न लाऊंगी।

बादशाह—इस बात को हम खुशी से कबूल करते हैं।

निर्मल—और मैं किसी राजपूतिन बेगम के पास रहूंगी।

बादशाह—यह भी हम को मंजूर है।

निर्मल—और कभी कोई मुमलमान या मुसलमानिन मुझे न छूवे।

बादशाह—ऐसा ही होगा; हम तुम्हें योधपुरी बेगम के पास रख दूंगे।

फिर तो उस ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, जो कुछ कहा था, वैसा ही बंदोबस्त निर्मलकुमारी के लिये कर दिया।

छठां परिच्छेद।

फिर भी समिध संग्रह के लिये।

दूसरे दिन औरंगज़ेब ने ज़ेबउन्निसा और निर्मलकुमारी को अपने साथ ले कर रंगमहल के भीतर खूब छानबीन की कि 'किस ने इस औरत को महल के अंदर घुसने दिया है?' उस ने महल के सारे खोजा, तातारिन, और बांदियों को बुला कर पूछा। जिन लोगों ने निर्मल को महल में आने दिया था, उन सभों ने उसे पहिचान तो लिया, पर किसे अपनी जान भारी पड़ी थी कि ऐसी गुस्ताखी का काम कर के उसे सकारता? निदान सब के सब कानों पर हाथ रख गए कि 'हमलोग कुछ नहीं जानते कि क्योंकर यह महल के अंदर घुस आई। और हजार सिर पटकने पर भी औरंगज़ेब और ज़ेबउन्निसा में से किसी ने भी निर्मल के घुसने का पता न पाया।

तब उन दोनों अर्थात् औरंगज़ेब और ज़ेबउन्निसा ने सारे महल के अहलकारों और बांदियों को यह आज्ञा दी कि "खैर, इस के घुस आने से तो इतनी बुराई नहीं हुई पर अब बिना हमारे हुक्म के यह महल के बाहर न जाने पावे। मगर कोई भी इस को किसी तरह की तकलीफ़ न दे और इस की बेइज्जती करने का कसूद न करे, बल्कि सभों को इस की इतनी ही ताज़ीम और इज्जत करनी चाहिए, जितनी कि यहां पर बेगमों की की जाती है। और खबरदार! कोई मुसलमान खोजा या बांदियां इसे हर्गिज़ न छूवें! यह योधपुरी बेगम के पास रहेगी और उन की हिन्दू लौंड़ियों के हाथ का खाना या पानी अपने मसरफ़ में लाएगी।"

यह सुनते ही सभों ने झुक कर निर्मलकुमरी को सलाम किया, और ज़ेबउन्निसा बड़ी खातिरी के साथ उसे अपने ऐशमहल में लिवा ले गई। वहां

पर उस ने निर्मल को अपने बराबर बैठा कर उस के साथ बहुत सी इधर उधर की बातें कीं। पर हज़ार चालाकी की चाल चलने पर भी वह निर्मल के पेट से असल बात का भेद कुछ भी न निकाल सकी।

उसी दिन तीसरे पहर के समय एक तातारी पहरेवाली ने आकर योधपुरी को यह खबर दी कि "एक सौदागर पत्थर की जिन्स बेंचने किले के अन्दर आया है। उन जिन्सों में से कई चीज़ें उस ने महल के अन्दर भी भेज दी हैं। मगर चीज़ें अच्छी नहीं हैं, किसी बेगम ने भी उन चीज़ों को पसन्द न किया। क्या हुज़ूर उन में से कुछ लेंगी ?"

धूर्त्तराज मानिक लाल ने चुन चुन कर भद्दी और बेकाम की चीज़ें महल के अन्दर भेजी थीं। क्योंकि उस की यही तो इच्छा थी कि जिस में कोई बेगम मेरी भेजी चीज़ें न खरीदें। जब पहरेवाली ने यह खबर सुनाई थी, उस समय निर्मलकुमारी योधपुरी के पास ही बैठी थी। उस ने बेगम की ओर एक भेद से भरे हुए इशारे को कर के कहा—"मंगवाइए, हुज़ूर! मैं लूंगी।"

कल रात को निर्मल की बादशाह के साथ जो कुछ बात चीत हुई थी, उस का पूरा पूरा हाल वह योधपुरी को सुना चुकी थी। जिसे सुन कर उन्हों ने निर्मल की बड़ी बड़ाई की और असीस भी दी। बेगम साहब उस की बहुत ही खातिरदारी करती थीं। सो इस समय उन्हों ने उस के इशारे का मतलब समझ कर पत्थर की जिन्स लाने के लिए हुक्म दिया।

उस पहरेवाली के जाने पर निर्मल ने थोड़े ही में योधपुरी को मानिक लाल की चिन्हानीवाली हिकमत का भेद समझा दिया। तब उन्हों ने कहा—"तो तुम झटपट अपने पति के लिये एक चिट्ठी लिख डालो, तबतक मैं पत्थर की जिन्स को पसन्द करती हूं क्योंकि इसी अच्छे मौके के जरिए उन के पास तुम अपना हालचाल लिख भेजो।"

निर्मल चिट्ठी लिखने निराले कमरे के अन्दर जाना ही चाहती थी इतने ही में तातारिने पत्थर के बर्त्तन योधपुरी के आगे ला रक्खे। और वह उन सभों को झूठमूठ उलटपुलट कर देखने लगीं।

निर्मल ने देख लिया कि सभी बर्त्तनों पर मानिक लाल की बतलाई हुई निशानी बनी है, यह देखते ही वह चिठ्ठी लिखने चली गई, और जब तक उस ने चिठ्ठी पूरी न कर ली, तब तक बेगम साहिबा उन बर्त्तनों को पसन्द करती रहीं। उन पथरीली जिन्सों में रत्नों से जड़ा हुआ संगमर्मर का एक कामदार डब्बा था। उस में ताला लगाने के लिये एक सोने की जंज़ीर और कुलाबा लगा हुआ था। निर्मल की चिठ्ठी पूरी होने पर योध-पुरी ने सब बांदियों की आंख बचा कर चुपचाप उस डब्बे के अन्दर उस चिठ्ठी को रख कर ताला लगा दिया। फिर बेगम साहिबा ने सब चीज़ों को तो पसन्द कर के रख लिया और उस डब्बे को नापसन्द कह कर फेर दिया। पर उस डब्बे के फेरने के समय उन्हों ने जानबूझ कर उस की ताली अपने पास रख ली।

बहुरूपिया सौदागर मानिक लाल ने जब देखा कि सब चीज़ तो महल में रह गई केवल डब्बा ही फिरता किया गया, उस पर भी तुर्रा यह कि ताली इस की महल ही में मौज मारने को रह गई; तब उस ने ताड़ लिया कि हमारा निशाना ठीक जगह जा कर लगा होगा।

फिर वह अपनी बिकी हुई चीज़ों के कौड़ी कौड़ी दाम सहेज कर उस डब्बे को लिये हुए दूकान पर पहुंचा। वहां जा कर अकेले में जब उस ने उस डब्बे का ताला खोला तो उस के भीतर निर्मलकुमारी का पत्र पाया।

उस चिठ्ठी में जो कुछ लिखा गया था, उसे विस्तार से जानने की पाठकों को कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उस चिठ्ठी की मोटी बात तो पाठक जान ही चुके हैं। और उस का ओर छोर आगे चल कर मालूम ही हो जायगा। पत्र को पा कर और निर्मल की ओर से निश्चिन्त हो कर मानिक लाल उदयपुर जाने की तैयारी करने लगा। पर उसी दिन एकाएक दूकान का टाट उलट देने से शायद कोई किसी तरह का सन्देह करे, इस-लिये उस ने निश्चय किया कि थोड़े दिन और ठहर जाना चाहिए।

सातवां परिच्छेद।

समिधसंग्रह—ज़ेबउन्निसा।

अब ज़रा निर्मलकुमारी को छोड़ कर मोगल वीर मुबारक की खबर लेनी चाहिए। यह बात कह आए हैं कि जो लोग रूपनगर से भाग कर लौट आए थे, उन में से किसी को औरंगज़ेब ने नौकरी से बर्तरफ़ किया, और किसी को सज़ा दी। पर मुबारक का इन दो बातों में से कुछ भी न हुआ। बरन औरंगज़ेब ने सभी के मुंह उस की वीरता की बड़ाई सुन कर उसे बहाल रक्खा।

ज़ेबउन्निसा ने भी अपने यार (मुबारक) की बड़ाई सुनी, आर मन में सोचा कि 'मेरा प्यारा आप ही मेरे सामने आकर अपनी सारी कहानी कह सुनावेगा।' पर मुबारक उस के पास गया ही नहीं।

क्योंकि वह दरिया को अपने घर ले आया था, उस के लिये कई खोजे और बांदियों को रख दिया था, उस के वास्ते बढ़ियां बढ़ियां लिबास पोशाक बनवाई थीं, और जहां तक बनपड़ा, उस के लिये गहने भी गढ़वाए थे, और अपनी ब्याही और पाकदामन जोरू के साथ गृहस्थी का सुख लूट रहा था।

जब वह आप से न आया, तब ज़ेबउन्निसा नें अपने विश्वासी खोजा असीरुद्दीन को भेज कर उसे बुलवाया; तब भी वह न आया। तब तो ज़ेबउन्निसा को बड़ा गुस्सा आया, उस ने आप ही आप कहा—"एं! इतना बड़ा उस का दिमाग़! ऐसी गुस्ताख़ी! मैं मेहरबानी कर के उसे याद फ़र्माती हूं और वह गुलाम मग़रूर हाज़िर नहीं होता! ऐसी शोख़ी!"।

निदान कई दिन तक तो वह अपने गुस्से में आप ही तावपेंच खाती रही, फिर उस ने मन में कहा—"मैं क्यों उस बदज़ात के वास्ते इतना सदमा सहूं? मुझे उस की ग़रज़ क्या है? क्या मेरे लिये दुनियां में दिल लगाने लायक बसर नापैद है? मेरे आगे सभी बराबर हैं। " पर, हाय! वह बिचारी तबतक यह बात नहीं जानती थी कि बादशाहज़ादी से भी गलती हो सकती है—क्योंकि ईश्वर ने शाहज़ादी और लौंड़ी को एक ही

सांचे में ढाला है—और धन, दौलत और तख़्तेताऊस आदि तो अपने कर्म का भोग भर है, इस के अलावे और कोई भेद नहीं।

पर सब के लिये सब बराबर नहीं होता, ज़ेबउन्निसा को भी सब समान नहीं हुआ। कुछ दिन तक तो वह गुस्से में जलती रही, पर जब गुस्सा धीरे धीरे जाता रहा, तब मुबारक के लिये तड़पने लगी। फिर क्या था? मान खो कर शाहज़ादी और नायिका इन दोनों ही के मान को खो कर फिर उस ने मुबारक को बुलवाया। इस पर उस ने यह जवाब भेजा कि—"हुज़ूर के खिज़मत में मेरी बहुत बहुत तस्लीमात अर्ज़ है! और यह गुज़ारिश है कि मेरे आगे इस दुनियां में शाहज़ादी के बनिस्बत दूसरी कोई बेशकीमत चीज़ नहीं है; और अगर कुछ है तो फ़क़त "खुदा" और "दीन!" लिहाज़ा अबतक जो हुआ सो हुआ, मगर अब फिर मुझ से गुनहगारी का काम न होगा, चुनांचे अब मैं महल के अन्दर न आऊंगा। मैंने अपनी निकाह की हुई जोरू दरिया को घर में रख लिया है।"

उस का ऐसा जवाब सुनते ही ज़ेबउन्निसा मारे गुस्से के फूल कर मशक बन गई और उस ने मुबारक और दरिया की जान ले लेने की क़सम खाई। यही तो बादशाही दस्तूर है!!!

महल में निर्मलकुमारी के रहने के समय ज़ेबउन्निसा को मुबारक से अपना बदला चुकाने का अच्छा मौका मिला। क्योंकि निर्मलकुमारी धीरे धीरे बादशाह के आगे क़द्र की चीज़ हो उठी। उस में कामदेव की कोई कारसाज़ी न थी, बरन जो कुछ शरारत थी, सो शैतान की। औरंगज़ेब हर रोज़ फ़ुर्सत के वक्त—ऐशोआराम के वक्त "रूपनगरवाली नाज़नी" (निर्मलकुमारी) को अपने पास बुला कर बातचीत किया करता। उस के बातचीत का असल मतलब यही था कि जिस में राजसिंह के राज-काज का भीतरी भेद मालूम हो जाय। तौभी वह धूर्त्त औरंगजेब इस ढंग से बातें करता कि एकाएक कोई उसका भीतरी मतलब न समझ सकता कि 'यह लड़ाई के मौके पर अपने काम में लानेवाली खबरों की टोह ले रहा है।' पर इस धूर्त्तता में भूलनेवाली असामी निर्मल न थी, वह बादशाह की सारी ओस्तादी समझती और बादशाह के मतलबवाले सारे सवालों का बिलकुल झूठा जवाब देती।

इसलिये औरंगज़ेब उस की बातों से खुश न होता। तब उसने मन ही मन यह मनसूबा बांधा कि—"मैं दर्यायेफ़ौज़ में मेवाड़ को डुबा दूंगा' इस में ज़रा भी शक नहीं है; और इस से राजसिंह की रियासत ग़ारत हो जायगी। पर इतने ही से मेरा तुरवा न बढ़ेगा। क्योंकि उस की रूपनगरवाली रानी को बिला छीन लाए मेरा दबदबा कायम न रहेगा। मगर ऐसी भी उम्मीद नहीं है कि राजसिंह की रियासत पाने के साथ ही मैं उस की उस रानी को भी दस्तयाब कर सकूंगा। वजह इस की यह है कि राजपूतिने बातबात में चिता पर जल मरतीं, और बातबात में ज़हर खा लेती हैं। चुनांचे मैं समझता हूं कि मेरे हाथ आने के पेश्तर ही वह शैतान की बच्ची अपनी जान दे डालेगी। मगर जो मैं इस बांदी [निर्मल] को अपनी मुट्ठी में कर सकूं, और इसे अपने ऊपर मायल कर सकूं तो यक़ीन है कि इस के ज़रिये रूपनगरवाली को फुसला कर ला सकूंगा। तो क्या यह एक अदनी बांदी मेरे क़ब्ज़े में न आवेगी ? क्या दिल्ली का बादशाह हो कर मैं एक नाचीज़ बांदी के दिल को अपनी मुट्ठी में न कर सकूंगा ? अगर न कर सकूं तो फिर मेरे वास्ते बादशाही करना ही नामुनासिब है।"

इस के बाद बादशाह का इशारा पाकर ज़ेबउन्निसा ने निर्मलकुमारी को जड़ाऊ गहनों से अच्छी तरह सँवारा। उस के लिये बेगमों की भांति लिबास पोशाक तैयार कराई गई। यहां तक कि जो वह कहती, उसी वक्त उस का हुक्म तामील किया जाता और जो वह चाहती, उसी वक्त उस चीज़ को पाती, केवल महल से बाहिर नहीं जाने पाती थी।

इन सब बातों पर योधपुरी बेग़म के साथ निर्मल की खूब छनती। एक दिन हंस कर उस ने योधपुरी से कहा—

"सोने का पिंजरा, सोने की चिड़िया,
सोने की जंजीर पैर में है;
सोने का चना, सोने का दाना,
मट्टी क्यों सिर्फ़ खैर में है ?"

इस पर योधपुरी ने पूछा—"तो तू इन चीज़ों को लेती क्यों है ?"

निर्मल ने कहा—"उदयपुर जाकर लोगों को दिखलाऊंगी कि मोगल-बादशाह को ठग कर यह सब लाई हूं।"

ज़ेबउन्निसा औरंगज़ेब का दहिना हाथ थी। सो वह बादशाह का इशारा पाकर निर्मल के पीछे लग पड़ी। बस, असल काम, अर्थात् उदयपुर का भीतरी भेद जानना तो शाहज़ादी के हाथ रहा, और बादशाह ने केवल मीठी मीठी बातों के रस लूटने का काम अपने हाथ रक्खा। वह निर्मल के साथ दिल्लगी मज़ाक करता, पर उस हंसीठट्ठे में भी थोड़ा सा बादशाही तौरतरीका घुसा हुआ था। उस के चुहल पर निर्मल क्रोध न करती, वरन भरपूर जवाब देती; पर उस जवाब में भी नाज़नीपन के साथ ही साथ रूपनगर के पहाड़ की कड़ाई भी कुछ न कुछ जरूर ही रहती थी। पर आजकल के अंग्रेज़ी मिजाज़वालों की तबीयत के साथ उन बातों का मेल न होगा, इसलिये यहां पर उस बादशाही तबीयतदारी की बानगी नहीं दिखलाई गई।

ज़ेबउन्निसा के आगे जिन बातों के कहने में निर्मलकुमारी को वज्र न था, वह तो उस ने कह सुनाई। और और बातों में रूपनगरवाली लड़ाई क्योंकर हुई थी, यह बात भी निकली थी। पर निर्मल ने लड़ाई का पहिला हिस्सा तो देखा ही न था पर चंचलकुमारी के मुंह उस ने सारी कहानी सुनी थी। बस जो कुछ उस ने सुना था, बिना संकोच ज्यों का त्यों ज़ेबउन्निसा को सुना दिया। मुबारक ने जो मोगलसेना को पुकार कर चंचलकुमारी से हारमान मैदान छोड़ चले जाने के लिये कहा था, यह भी कहा, चंचलकुमारी जो राजपूतों के प्रान बचाने के लिये आप दिल्ली आना चाहती थी, यह भी कहा, उस के जहर खा कर दिल्ली के रास्ते में जान दे देने की बात भी कही, और यह भी कहा कि मुबारक उसे न लाया।

यह सुन कर ज़ेबउन्निसा ने मन ही मन कहा कि—"मुबारक साहब! बस इसी हथियार से तुम्हारे तन से सर अलग कराऊंगी।" फिर मौके के साथ औरंगज़ेब से उस लड़ाई का सारा क़िस्सा कह सुनाया।

जिसे सुन कर उस ने कहा—

"अगर उस हरामज़ादे ने ऐसी नमकहरामी की है तो उसे आज ही जहन्नुमरसीदः करता हूं।"

पर उस (औरंगज़ेब) ने ज़ेबउन्निसा का भीतरी मतलब न समझा हो, यह बात नहीं है; क्योंकि वह ज़ेबउन्निसा की बदचलनी की बात बराबर

सुना करता था। कितने लोग ऐसे हैं कि जिन के बखान के समय यहां-वाले यों कहा करते हैं कि—"ये लोग कुत्ते को तो मार डालते हैं, पर रसोई की हांड़ी नहीं फेंकते।" बस मोगल बादशाह भी वैसे ही लोगों में थे। वे लोग जब अपनी बहिन बेटियों की बदचलनी की खबर पाते तो उन बहिन बेटियों से तो कुछ न कहते, पर जो अभागा उन औरतों से आशनाई रखता, उस का पूरा पूरा पता पाते ही किसी न किसी छल बल से उसे मार डालते। औरंगज़ेब बहुत दिनों से मुबारक पर ज़ेबउन्निसा के साथ फंसे रहने का शक करता था, पर अभी तक उस ने इस बात का पूरा पूरा पता नहीं पाया था। अब अपनी बेटी की बातों से उसे पूरा यकीन हो गया और उस ने मन ही मन यों समझ लिया कि—"शायद यार से चखाचखी हुई है, तभी शाहज़ादी उस चेरी को, जिस ने कि इस के दिल पर अपना दांत गड़ाया है, पीस डालना चाहती है।" बस, इस बात पर वह तुरत राज़ी हो गया। पर एक बार निर्मल के मुंह से उन सब बातों के सुनने के लिये उस ने निर्मल को अपने पास बुलाया। भीतरी बात तो वह बिचारी कुछ जानती ही न थी, इसलिये जो कुछ उस ने ज़ेबउन्निसा के आगे कहा था, वही सब बादशाह के आगे भी कहा।

फिर औरंगज़ेब ने मौका देख और बख्शी को बुला कर मुबारक के वास्ते हुक्म सुनाया। बख्शी ने शाहीहुक्म पाते ही अपने आठ दस आदमियों को भेज कर मुबारक को पकड़ बुलाया। वह हंसता हुआ बख्शी के पास पहुंचा और वहां पहुंच कर क्या देखता है कि बख्शी के सामने दो लोहे के पिंजरे रक्खे हुए हैं और उन दोनों के भीतर एक एक जहरीले सांप फों फों कर रहे हैं।

आजकल जो अभागा राजदंड पा कर अपना प्रान देता है, उसे फांसी पड़ना पड़ता है, क्योंकि आजकल अपराधी के प्रान लेने की दूसरी रीति नहीं है; पर मोगलों की हुकूमत के समय जान लेने के बहुतेरे तरीके जारी थे। उन में से कभी किसी का सिर काटा जाता, कभी कोई फांसी पर लटकाया जाता, कभी कोई हाथी के पैरतले कुचलवाया जाता और कभी कोई जहरीले सांप से कटवाया जा कर अपनी जान देता। और जिन लोगों की जान बहुत छिपा लुका कर ली जाती, उन्हें ज़हर दिया जाता था।

मुबारक ने मुसकुराते हुए बख़्शी के पास पहुंच और दोनों बगल में रक्खे हुए जहरीले सांपों के दोनों पिंजरे देख कर पहिले ही की तरह हंस कर कहा—

" क्या मुझे कूच करना पड़ेगा ? "

इस पर बख़्शी ने उदासी के साथ कहा—

" बादशाह का हुक्म ! "

फिर मुबारक ने पूछा—" ऐसा हुक्म क्यों हुआ, इस बात का सूराख़ कुछ आप ने पाया है ? "

बख़्शी—जी नहीं; क्या आप इस के बारे में कुछ भी नहीं जानते ?

मुबारक—हां ! कुछ कुछ जानता हूं, फ़क़त अंदाज़ा अंदाज़ी; खैर ! तो फिर देर करने से क्या हासिल ?

बख़्शी—कुछ भी नहीं ।

तब मुबारक ने जूता उतार कर एक पिंजरे के ऊपर पांव रक्खा और सांप ने फों फों करते हुए लपक कर पिंजरे के छेद के भीतर से उस के पैर में काट लिया ।

जहर की लहर से तलमला कर मुबारक ने जरा मुंह बनाया और बख़्शी से कहा—

" सुनिए साहब ! अगर कोई पूछे कि " मुबारक क्यों मारा गया ? " तो बराहे मेहरबानी कहियेगा कि " शाहज़ादी आलम् ज़ेबउन्निसा बेगम साहिबा की मरज़ी । "

यह सुनते ही डर के मारे कांप कर और गिड़गिड़ा कर बख़्शी ने कहा—" चुप चुप ! दूसरे पिंजरे पर पांव रखिए । "

यदि एक सांप में जहर न हो ? इसलिये दो सांपों से उन अभागों को कटवाया जाता था, जिन के प्रान लेने की इच्छा होती । उस समय ऐसी ही रीति थी । यह बात मुबारक भी जानता था । बस, चट उस ने दूसरे पिंजरे पर भी पैर रक्खा और दूसरे भयावने सांप ने भी उसे काट कर अपना तेज़ जहर उस के शरीर में पहुंचा दिया ।

तब वह जहर की लहर से तलमला कर और स्याह हो कर जमीन में दोजानू बैठ गया और हाथ जोड़ कर यों कहने लगा—

"अल्ला हो अकबर! या खोदा! अगर मैं ने कभी भी तुझ से रहम पाने लायक कोई काम किया हो तो इस वक्त तू मुझ पर करम कर।"

इसी तरह परमेश्वर का ध्यान करते करते, तेज़ जहर में हलर खाता हुआ, मोगल वीर मुबारकअली मुर्दा हो गया।

आठवां परिच्छेद।

सब सामान।

रंगमहल के अंदर सभी खबरें पहुंचा करती और ज़ेबउन्निसा सभी को सुनती थी क्योंकि वह नायब बादशाह थी कि नहीं! सो मुबारक के मारे जाने की खबर भी उस के पास आ पहुंची।

उस ने सोच रक्खा था कि—"अपने यार के मारे जाने की खबर सुन कर मैं खुश होऊंगी" पर इस खबर के सुनते ही उस ने देखा कि—"यह तो बिलकुल उलटी बात हुई।" खबर सुनते ही उस की आंखों में आंसू भर आए, अरे! जिस सूखी मट्टी में से कभी पानी नहीं निकला था, उसी में से नदी नाले निकल पड़े। उस ने देखा कि गालों से लुढ़क लुढ़क कर आंसुओं की धारा बह चली। फिर उस ने देखा कि चिल्ला चिल्ला कर रोने पीटने को दिल चाहता है। तब वह अपने ऐशमहल का दर्वाज़ा बंद कर हाथीदांत के जड़ाऊ पलंग पर पड़ी पड़ी रोने लगी।

ऐं! यह क्या शाहजादी? ज़वाहिरात से जड़े हाथीदांत के पलंग पर सोने पर भी तुम्हारी आंखों का पानी नहीं रुकता? पर जो कहीं तुम महल के बाहर निकल दिल्ली की शहरतली के टूटेफूटे झोंपड़ों में देखतीं तो तुम्हें दिखलाई देता कि कितने लोग टूटी चटाई पर लोटे हुए कैसे हंस रहे हैं। और तुमरारी तरह कोई भी नहीं रोते।

पहिले तो उसे ऐसा जान पड़ा कि—"हाय! मैं ने अपने आराम को आप मिट्टी किया।" फिर धीरे धीरे उसे यह जान पड़ा कि—"सब बराबर नहीं है।" शाहजादियां भी मुहब्बत करती हैं, जान कर हो, या बिना जाने, पर औरत का चोला पा कर इस चुड़ैल मुहब्बत को दिल में जगह

देनी ही पड़ती है। यही सब सोचती हुई ज़ेबउन्निसा ने अपने से आप पूछा—"मैं उसे इतना चाहती थी, तो यही बात पहिले मुझे क्यों न मालूम हुई ?" पर इस बात का कोई जवाब देनेवाला वहां न था, नहीं तो वह यों जवाब देता कि—"बीबी ! दौलत के गरूर में तुम इतनी अंधी हो रही थीं, खूबसूरती के घमंड में तुम इतनी चकना चूर थीं, और ऐयाशी की लौंड़ी बन कर तुम इतनी गाफिल हो रही थीं कि असल मुहब्बत की लज्जत को तुम ने जरा भी न जाना।" इसी वास्ते तुम को मुनासिब सजा दी गई—और अब ऐसा होना चाहिए कि तुम्हारी इस हालत पर कोई भी रहम न करे।"

उस से कोई भी यह कहनेवाला न था, पर आप ही आप ये सब बातें धीरे धीरे उस के मन में उठने लगीं। इस के साथ ही साथ यह भी उसे मालूम हुआ कि दुनियां में गुनाह भी कोई चीज़ है। यदि है तो यह गुनाह ही का काम हुआ है। यह सोचते ही उसे इस बात के डर ने आ चांपा कि गुनाह का इनाम अगर सजा हो तब ? अगर मेरे गुनाहों की सजा देनेवाला भी कोई हो तब ? तो मुझे शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा समझ कर क्या वह माफ़ करेगा ? यह ग़ैरमुमकिन है। यही सब सोच समझ कर उस के दिल में धड़कन पैदा हुई।

दुख, शोक और भय से बुरी दशा को पहुंची हुई ज़ेबउन्निसा ने अपने महल का दर्वाज़ा खोल कर अपने विश्वासी खोजा असीरुद्दीन को बुलाया और उस के आने पर पूछा—

"सांप के ज़हर से अगर इन्सान मरे तो फिर उस के जिलाने की क्या कोई हिकमत है ?"

असीरुद्दीन ने कहा—मरने पर फिर क्या चारा चल सकता है ?

ज़ेबउन्निसा—क्या कभी यह बात नहीं तू ने सुनी है कि सांप के काटे हुए भी जिलाए गए हैं !

असीरुद्दीन—हातिम मौला ने ऐसी ही एक हिकमत की थी, ऐसी बात मैं ने सुनी है। पर अपनी आंखों से देखी नहीं है।

यह सुनते ही ज़ेबउन्निसा ने एक लम्बी सांस ले कर कहा—"तू हातिम मौला को पहचानता है।"

असीरुद्दीन—जी हां, बखूबी।

ज़ेबुन्निसा—वह कहां पर रहता है?

असीरुद्दीन—दिल्ली ही में।

ज़ेबुन्निसा—उस का घर जानता है?

असीरुद्दीन—"जी हां, मालूम है।"

ज़ेबुन्निसा—अभी उस के घर जा सकता है?

असीरुद्दीन—हुजूर के हुक्म की देर है।

ज़ेबुन्निसा—आज मुबारक अली (इतना कहते कहते उस का गला कांपा) सांप के काटने से मेरा है। यह बात तुझे मालूम है?

असीरुद्दीन—जी हां, मैं ने सुना है।

ज़ेबुन्निसा—कहां पर उसे मिट्टी दी गई है?

असीरुद्दीन—उस गोर को तो मैं ने नहीं देखा है, मगर जिस कब्रिस्तान में उसे गोर दी जानेवाली थी, उसे मैं बखूबी जानता हूं। फिर वहां जाने पर नई ग़ोर का पता फ़ौरन लग जायगा।

ज़ेबुन्निसा—सुन, मैं तुझे दो सौ अशर्फ़ियां देती हूं, उन में से सौ अशर्फ़ी तो हातिम मौला को देना, और सौ अशर्फ़ी तू खुद लेना। मुबारक अली की क़ब्र खोद और उस में से सन्दूक़ बाहर निकाल कर दवादारू कर के उन्हें बचाइयो अगर खुदा के फ़ज़ल से वह जी जायं तो उन्हें मेरे पास ले आइयो। बस अभी जा।

अशर्फ़ी ले कर खोजा असीरुद्दीन उसी दम रुख़सत हुआ।



नवां परिच्छेद।

औषध संग्रह—दरिया।

फिर एक बेर रंगमहल में पत्थर की जिन्स बेंच कर मानिक लाल ने निर्मलकुमारी की खोज खबर की। इस वार भी वह पत्थरवाला डब्बा ताला बन्द किया हुआ महल में लाया गया था। उस का ताला खोल कर निर्मल ने उस के भीतर से उसी कबूतर को पाया। उसे निर्मल ने अपने पास रक्खा, और पहिले ही की भांति चिट्ठी लिख कर अपनी खबर भेजी। उस ने उस चिट्ठी में यह लिखा था कि—"सब चैनचान है, अब तुम जाओ। यह बात पहिले ही लिख चुकी हूं कि मैं बादशाह के साथ आऊंगी।"

यह चिट्ठी पाते ही मानिक लाल ने दुकान दौरी उठा कर उदयपुर की यात्रा की। सबेरा होने में अभी थोड़ी देर थी, दिल्ली के अनेक दर्वाज़े थे, पर जिस में कोई पीछे कुछ सन्देह न करे, इसलिये मानिक लाल अजमेर दर्वाज़े की ओर न जा कर दूसरे दर्वाज़े की ओर चला। रास्ते में एक कब्रिस्तान पड़ता था। और एक कब्र के पास दो जने खड़े थे। पर मानिक लाल और उस के साथियों को देखते ही वे दोनों आदमी भाग गए। तब मानिक लाल अपने घोड़े से उतर कर उस कब्र के पास जा कर देखने लगा। उस ने देखा कि कब्र की मिट्टी खोद कर एक मुर्दा बाहर निकाला गया है। तब तो उस ने उस मुर्दे को तड़के के झिलमिलाते हुए उंजाले में अच्छी तरह से देखा। फिर कुछ सोच विचार कर उस मुर्दे को अपने घोड़े पर रख और उसे अच्छी तरह से बांध और कपड़े से ढंप कर आगे कदम बढ़ाया।

वह दिल्ली दर्वाज़े से बाहर हुआ। उस के कुछ दूर आगे बढ़ने पर सूरज निकला। तब उस ने मुर्दे को घोड़े से नीचे उतारा और जंगल में छायादार जगह में ले जा कर रक्खा। फिर अपने पिटारे में से एक औषधि की गोली निकाल किसी पत्तों के रस में घोंटा। फिर मुर्दे के शरीर में जगह जगह छुरी से चीर कर उसी छेद में उस गोली के रस को भर दिया। और जीभ औ आंख में भी उसी का लेप कर दिया। घंटे भर पीछे फिर इसी तरह किया। इसी भांति तीन बार दवा लगाने से उस मुर्दे के

सांस चलने लगी। चौथी वार के लगाने से उस ने आंखें खोल दीं और उसे होश हो आया और पांचवीं वार दवा लगाने से वह उठ बैठा और बोला।

मानिक लाल ने पहिले ही से दूध का बन्दोबस्त कर रक्खा था। वही मुबारक को पिलाया। और दूध पीने से उस के शरीर में कुछ बल आया तब सब बातें उस के ध्यान में आईं। उस ने मानिक लाल से पूछा—

क़िस ने मुझे बचाया? आप ने?

मानिक लाल ने कहा— हां!

मुबारक ने कहा—क्यों बचाया? आप को मैं ने पहचान लिया। आप के साथ मैं रूपनगर की पहाड़तली में लड़ा था। और आप ने मुझे हराया था।

मानिक-मैं ने भी आप को चीन्हा। आप ही ने महाराना को हराया, खैर अब यह कहिए कि आप की यह हालत क्योंकर हुई?

मुबारक—वह बात अभी कहने लायक नहीं है। उसे फिर कहूंगा। हां यह बतलाइए कि आप कहां जाते हैं? उदयपुर?

मानिक-हां।

मुबारक—तो क्या आप मुझे अपने साथ ले जा सकते हैं? क्योंकि दिल्ली का रास्ता मेरे वास्ते बन्द है, इस बात को शायद आप भी समझते होंगे। मैं बादशाही सजायाफ्ता हूं।

मानिक-तो कोई चिन्ता नहीं, मैं आप को अपने साथ ले जा सकता हूं, पर आप अभी चलने लायक नहीं हैं।

मुबारक-शाम तक मैं शायद सफ़र लायक हो जाऊं! तब तक आप ठहर सकते हैं?

मानिक—हां ठहर सकते हैं।

फिर उस ने और दूध पीया। गांव से मानिक लाल एक टट्टू खरीद लाया, उसी पर मुबारक को चढ़ा कर उदयपुर चला।

फिर जाते जाते अपना टट्टू मानिक के घोड़े के पास सटा कर मुबारक ने धीरे धीरे ज़ेबउन्निसा की सारी कहानी कह सुनाई। यह सुन कर उस ने

समझा कि उस ज़ेबउन्निसा ही की गुस्से की आग में मुबारक जल भुन कर राख हुआ था।

इधर असीरुद्दीन ने लौट कर ज़ेबउन्निसा से यों कहा कि "वह किसी तरह बच न सका।" उस समय इतर से तर बतर रुमाल वह अपनी आंखों पर रक्खे हुई थी, पर जब उस ने असीरुद्दीन से ऐसी खबर सुनी तो पत्थर के फर्श पर गिर कर लोटती हुई एक गरीब दुखिया औरत की भांति अपनी सिर पीटने लगी।

जो दुख किसी के आगे प्रगट करने लायक नहीं है, उस के सहने में बहुत ही कष्ट होता है। बस शाहज़ादी को भी वैसे ही दुख ने धर चांपा। उस ने सोचा "अगर मैं शाहज़ादी न हो कर किसी कंगाल की लड़की होती तो!"

इतने ही में उस के ऐशमहल के दर्वाज़े पर बड़ा शोरगुल मचा। बात यह थी कि कोई उस ऐशमहल के भीतर घुसने के लिये ज़िद करता था। पर पहरेवाली उसे भीतर घुसने नहीं देती थी। उस समय ज़ेबउन्निसा ने दरिया के गले की आवाज़ सुनी। पहरेवाली उसे किसी तरह न रोक सकी और वह पहरेवाली को ढकेल कर ज़ेबउन्निसा के महल में घुस पड़ी। उस समय उस के हाथ में नंगी तलवार थी। उसे उस ने ज़ेबउन्निसा के काट डालने के लिये उठाई। पर तुरन्त हाथ से तलवार फेंक कर वह उस के आगे नाचने लगी। और बोली—"बहुत अच्छा हुआ—आंखों में आंसू तो आए!" यह कह कर दरिया ठठा कर हंसने लगी। तब ज़ेबउन्निसा ने पहरेवाली को पुकार कर उस के पकड़ने का हुक्म दिया। पर पहरेवाली उसे पकड़ न सकी—क्योंकि वह सांस रोक कर वहां से भागी। पहरेवाली भी उस के पीछे पीछे दौड़ी और जा कर उस ने दरिया की ओढ़नी का छोड़ पकड़ा। पर वह ओढ़नी छोड़ नंगी ही भाग चली, क्योंकि उस समय वह घोर पागल हो रही थी। इस का कारन यह था कि उस ने भी मुबारक के मरने की खबर सुनी थी।

सातवां खंड।

आग भड़की।

पहिला परिच्छेद।

दूसरा Xerxes—दूसरा Platxa.

राजसिंह के राज्य को मटियामेट करने के लिये औरंगज़ेब को कूच करने में जो देर हुई उस का यही कारण है कि उस ने उस लड़ाई के लिये फौज जमा करने में बड़ा भयानक उद्योग किया था। उस ने दुर्योधन और युधिष्ठिर की भांति ब्रह्मपुत्र से लेकर वाह्लीक तक की, काश्मीर से लेकर केरल और पांड्य देश तक की जितनी सेना, जहां पर थीं, सभों को इस महासंग्राम के लिये बुला भेजा था। दक्खिन की बड़ी भारी फ़ौज को, गोलकुंडा, विजयपुर और मरहठे आदि के साथ लड़ाई में बज्राघात में द्वितीय वृत्रासुर की भांति जिस की पीठ पीढ़ी हो चुकी थी, उसे अपने साथ लेकर औरंगज़ेब के बड़े लड़के शाहआलम ने दक्खिन से उदयपुर को वहा देने के लिये कूच किया। औरंगज़ेब का दूसरा लड़का आज़मशाह बंगाले का हाकिम था। वह भी पूर्वीयभारत की सारी फौज अपने साथ लेकर मेवाड़ की पर्वतमाला के द्वार पर जा डटा। और तीसरे लड़के अकबरशाह ने पच्छिम मुल्तान से काबुल, पंजाब, कश्मीर आदि के सिपाहों को लिये हुए आकर अपने दोनों भाइयों के सेनासागर में अपनी सेना का सोता भी मिला दिया। बस इस प्रकार से मेवाड़ को दक्खिन, पूरब और पच्छिम से तो शाहज़ादों ने घेर लिया और उत्तर ओर से स्वयं शाहंशाह, दिल्ली से अनगिनित विजयिनी सेना लेकर पृथ्वी पर से उदयपुर का नामनिशान मिटा देने के लिये चल कर मेवाड़ के द्वार जा पहुंचा। सागर के बीच में ऊंचा सिर किए हुए पहाड़ की चोटी की भांति, उस निःसीम मोगलों के सेनारूपी सागर के बीचोबीच उदयपुर अपनी शोभा दिखलाने लगा।

असंख्यसांपों से घिर जाने पर गरुड़ जितना अपने बैरियों से डर सकता हो, राजसिंह भी इस सागर के समान मोगलसेना से अपने को घिरा हुआ देख कर उतने ही भयभीत हुए। भारतवर्ष में इस प्रकार का सेनाओं का जमघट कुरुक्षेत्र के पीछे फिर कभी हुआ था, या नहीं, यह बात नहीं कही जा सकती; क्योंकि जितनी सेना की चीन फ्रांस या रूस के जीतने के लिये भी आवश्यकता नहीं होती, एक अदने उदयपुर के जीतने के लिये औरंगज़ेब उतनी सेना को राजपूताने में ले आया था। केवल एक वार ऐसी घटना इस भूमंडल पर हुई थी; जब कि फारस इस पृथ्वी पर बहुत बड़े राज्यों में गिना जाता था, तब उस का बादशाह शेर (Herxes) पचास लाख सिपाह साथ लेकर ग्रीक सरीखे एक अदने से देश को जीतने के लिये गया था। पर थार्मलिपि से Leonidas सालामिस से Themistocles और प्लातिया से Pausanias ने उस के गर्व को धूल में मिला कर उसे मार भगाया। और स्यार कुत्ते की तरह मार खाकर वह (शेर) भाग आया था। बस ठीक वैसी ही घटना इस भूमंडल पर दूसरी बार औरंगज़ेब के द्वारा हुई। कई लाख फौज़ अपने साथ लेकर हिन्दुस्तान का शाहंशाह शेर की अपेक्षा भी बड़ा ही प्रतापशाली बादशाह राजपूताने के एक छोटे से भूमिखंड को जीतने के लिये गया था; पर इस के बाद राजसिंह ने उस की कैसी पहुनई की, यह बात आगे चल कर कहते हैं।

पश्चिमी शिक्षा की चकाचौंध से चौंधियाए हुए कोई कोई लोग ऐसा कहते हैं कि "युद्धविद्या योरोपीय विद्या है। एशियाखंड में या भारतवर्ष में इस का पसार कभी किसी समय में भी नहीं हुआ था। जिन इतिहास पुराणों में कहे हुए आर्यलोगों के बल, पुरुषार्थ की इतनी कीर्ति गाई गई और सुनने में आती है, उन लोगों का सारा कौशल केवल तीरंदाज़ी या लठैती ही तक था। प्राचीन इतिहास लेखक ब्राह्मण लोग इस मर्म को जानते ही न थे कि युद्धविद्या किस चिड़िया का नाम है। बस, चाहे इसी से, या प्राचीन समय में भारतवर्ष में यह विद्या नहीं, इस कारण से, रामचन्द्र अर्जुन आदि वीरों में सेनापति के से कोई लक्षण नहीं पाये जाते। इस के बहुत दिन पीछे अशोक, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, शकादित्य, शिलादित्य आदि किसी में भी सेनापति के लक्षण नहीं मिलते। और जिन्हों ने अंत

में इस भारतवर्ष को जीता था, उन में भी अर्थात् मुहम्मदकासिम, महमूद-गज़नवी, शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन, बाबर, तैमूर, नादिर, शेर आदि में से भी किसी में सेनापति सरीखे लक्षण नहीं थे। मालूम होता है कि मुसलमान इतिहास लेखक भी युद्धविद्या की गंध को नहीं जानते थे। पर अकबर के समय से इस सेनापतित्व का कुछ कुछ आभास पाया जाता है। अकबर, शिवाजी, अहमद आबदाली, हैदरअली, हरी सिंह आदि में सेनापति के से लक्षण, रणचातुरी के लक्षण देखे जाते हैं।" पर इस समय इस झगड़े से कुछ काम नहीं है, चाहे युद्धविद्या कहीं की या कहीं से आई गई हो, अथवा यहांवाले सेनापतित्व के लक्षण से भूषित रहे हों, या न रहे हों, पर इस बात को हम मुक्तकंठ से जोर देकर कह सकते हैं कि भारतवर्ष के इतिहास में जितने रणपंडितों की कहानियां गाई गई हैं, उन में से राजसिंह किसी से भी रण-चातुरी में कम न थे। बरन हम तो यों कहेंगे कि योरोप में भी राजसिंह सरीखे रणपंडित थोड़े ही जन्मे हैं। अहा! देखिए तो सही कि मुट्ठी भर सेना की सहायता से इतने बड़े भारी काम का अंजाम सिवा राजसिंह के ओलंदाज वीर मूकाख्य विलियम के बाद पृथ्वी में और किसी ने भी नहीं किया।

राजसिंह के उस अद्भुत सेनापतित्व के परिचय देने का यह स्थान नहीं है, इसलिये आगे की घटना को हम संक्षेप ही में लिखा चाहते हैं।

चार टुकड़ों में बंटी हुई औरंज़ेब की महती सेना से मेवाड़ के चारो ओर से घिर जाने पर रणपंडित व्यक्ति को जो कुछ करना चाहिए था, राज सिंह ने पहिले ही से वह काम कर रक्खा था। अर्थात् पर्वतमाला के बाहर राज्य का जो हिस्सा समतल था, उसे छोड़, पहाड़ के ऊपर चढ़कर उन्हों ने अपनी छावनी डाली थी। उन्हों ने अपनी सेना के तीन हिस्से कर डाले थे जिन में से उन्हों ने एक हिस्से को अपने बड़े पुत्र जयसिंह की अधीनता में कर के पहाड़ की चोटी पर स्थापित किया, दूसरे हिस्से को अपने दूसरे पुत्र भीमसिंह के आधीन कर के पश्चिम ओर मोरचा बांधा, तथा एक ओर का पथ इस लिये खुला रहने दिया कि इस ओर से राजपूत लोग आकर सहायता पहुंचावेंगे। और स्वयं आप [राना] तीसरे हिस्से को लिये हुए पूरब की ओर नयननायक दर्रे में डंट कर बादशाही फौज़ की बाट जोहने लगे थे।

आज़मशाह अपनी फौज को लिये जिस ओर पहुंचा था, वहां पर तो पर्वतमाला ने उस की गति को रोका ; क्योंकि उस पहाड़ पर चढ़ना कठिन ही नहीं वरन एक प्रकार से असंभव भी था और ऊपर से राजपूत लोग गोले और पत्थर के ढोंके बरसा रहे थे। जैसे रसोईघर के द्वार के बन्द होने पर कुत्ता जिस तरह किवाड़ी भड़भड़ाता, पर उस घर के भीतर घुस नहीं सकता ; आजम की भी उस समय ठीक वैसी ही दशा थी कि वह पहाड़ी मुहाने पर टक्करें मारता, पर घुस नहीं सकता था।

औरंगज़ेब के साथ अजमेर में अकबर मिल गया। फिर बाप बेटे दोनों वहां तक साथ ही साथ आए, जहां पर पर्वतमाला के तीन मुहाने तीन ओर को चले गए थे। वे तीनों मुहाने 'गिरिसंकट' कहलाते हैं। उन में एक का नाम 'दुवारी', दूसरे का नाम 'देलवारा' और तीसरे का नाम वही पहिले कहा हुआ 'नयन' है। दुवारी में पहुंचने पर औरंगज़ेब ने अकबर को उसी पथ (दुवारी) से आगे बढ़ने की आज्ञा दी और आप उदयसागर नामक प्रसिद्ध सरोवर के तीर छावनी डाल कर सफ़र की थकावट दूर करने लगा।

शाहज़ादा अकबर पहाड़ी रास्ते से उदयपुर में घुसने के लिये चल खड़ा हुआ। उसे उदयपुर में घुसने से किसी ने न रोका। क्योंकि राज-भवन, बाग बगीचे, सरोवर आदि सभी स्थान सूनसान हो रहे थे। उस ने चारों ओर घूम घूम कर नगर को छान डाला, पर एक मट्टी का पुतला भी उसे न दिखलाई पड़ा। सारे नगर को सूनसान देख कर उस ने वहां पर अपनी छावनी डाली और मन में सोचा कि 'मेरी फौज के डर से यहां के लोग भाग गए हैं'। फिर तो मोगलसेना में गुलछर्रे उड़ने लगे। कोई शराब कबाब में, कोई गाने बजाने में, कोई चौसर गंजीफे में और कोई नमाज़ पढ़ने में लग पड़े। ठीक उसी समय, सूते मुसाफ़िर के ऊपर जैसे शेर गिरता है, कुमार जयसिंह शाहज़ादे अकबर की फ़ौज़ के ऊपर टूटपड़े। उस क्षत्रिय वीर केशरी के उस झपट्टे में सारे मोगल गाजर, मूली की तरह काटे गए और उन में से थोड़े से ही लोग अपने मोगलभाइयों को गोर देने के लिये जीते बचगये। पचास हज़ार मोगलों में से कुछ थोड़े से लोग जीते बचे थे। यह ऐसी गहरी मार थी कि जिस की चोट को बर्दाश्त न कर के शाहज़ादे अक-

बर बचेबचाए मोगलों के साथ प्रान ले कर गुजरात की ओर भाग गया।

माज़मशाह, जिस का दूसरा नाम शाहआलम था, दक्खिन से फौज लिये हुए अहमदाबाद से होता हुआ पर्वतमाला की पच्छिमघाटी पर पहुंचा। वह घाटी 'गणराव' नामक पहाड़ीपथ के नाम से प्रसिद्ध है। उस ने उसी राह से चल कर कांकरौली के समीप सरोवर और राजभवन के निकट पहुंच कर देखा कि अब आगे जाने की राह नहीं है। और वह रास्ता बनाकर भी आगे नहीं बढ़ सकता था, क्योंकि वह यों सोचता था कि "अगर मैं राह बना कर आगे बढ़ूंगा, तो राजपूत लोग मेरे पीछे छोड़ी हुई राह को बंद कर देंगे और फिर रसद आने का रास्ता बन्द हो जायगा। तब तो फिर बिलामौत ही मरना पड़ेगा।" उस का यह सोचना बहुत ही ठीक था और जो सचमुच सेनापति होने लायक हैं, वे इस बात को भली भांति जानते हैं कि केवल हाथ से मारने से लड़ाई नहीं होती, बरन लड़ाई तभी होती है, जब बैरी को भूखों मारे। जो लोग सच्चे सेनापति हैं, वे जानते हैं कि "अपने पेट चलानेवाले रास्ते को खुला रख कर, तब बैरी पर हाथ चलाना चाहिये" सिक्ख लोग आज दिन भी रो रो कर यों कहते हैं कि "सिक्खसेनापतियों ने सिक्ख-सेना की रसद बंद कर दी, इसी से सिक्ख हार गए।" सरचार्ल्सनेपियर ने एक बार कहा था कि "बंगाली लोग लड़ना नहीं जानते, ऐसा सोच कर उन बिचारों से घृणा न करो क्योंकि वे एक दिन में सारे खाने-पीने के सरंजाम छिपा सकते हैं।" निदान शाहज़ादा शाहआलम भी लड़ाई लड़ना जानता था, इस लिये वह आगे न बढ़ा।

राजसिंह ने इस अनोखे ढंग से अपनी सेना के पड़ाव डाले थे (यही तो सेनापति का प्रधान या पहिला काम है) कि जिस के कारण बंगाले और दक्खिन की बादशाही फौज, बर्सात में सिकुड़े हुए बन्दरों की भांति केवल सन्नाटा मारे पड़ी रही और मुलतान की फौज नेस्तनाबूद हो कर, आंधी के आगे धूल की तरह न जाने कहां की कहां बिला गई। अब बाकी बचे हैं खुद बादशाह दीन दुनियां के शाहंशाह आलमगीर! देखें! इन की क्या दुर्दशा होती है।



दूसरा परिच्छेद।

आंखों की आग भी शायद भड़की थी।

शाहज़ादे अकबर शाह को आगे भेज कर खुद बादशाह ने उदयसागर के तीर अपनी फौज की छावनी डाली थी। पश्चिमदेशीय एक यात्री ने मोगलबादशाहों की राजधानी दिल्ली नगरी को देख कर कहा था कि "दिल्ली एक बड़ा भारी शिविर ही (Camp) है।" यदि इस [illegible] को उलट दें तो यों कहा जा सकता है कि "मोगल बादशाहों का शिवि[illegible] एक दिल्ली नगरी था।" क्योंकि दिल्ली नगरी में जैसे चौक थे, वैसे ही बड़े बड़े चौक बना कर तम्बू खड़े किये जाते थे। बस इसी प्रकार अनगिनत चौकों की कत्तार से एक वस्त्रनिर्मित महानगरी बन जाती थी। सब तम्बुओं के बीचोंबीच बादशाह के तम्बू का चौक रहता था। दिल्ली में जैसे अद्वितीय महलों में बादशाह रहता, वैसे ही अनोखे कपड़े के महलों में भी लड़ाई के समय रहता था। वैसे ही दरवार वैसे ही आम खास, वैसे ही गुसलखाने और वैसे ही रंगमहल तम्बू के बनाए जाते थे। वे सब बादशाही तम्बू केवल वस्त्र ही के नहीं बनते थे, बरन उस के बहुतेरे साज सरंजाम लोहे पीतल के बनाए जाते थे और उस में दो दो तीन तीन मंजिलें भी रहती थीं। सामने दिल्ली के क़िले के फाटक सरीखा बड़ा फाटक रहता था। बादशाही तम्बू की चार दीवारी, जो कि रेशमी कपड़ों की बनी हुई होती थी पाव कोस के घेरे में खैंची जाती थी। और जैसे क़िले की चार दीवारी में जगह जगह बुर्ज गुंबज आदि बने रहते हैं, वैसे ही उस कपड़ेवाली चार दीवारी में भी बने रहते थे। पीतल के खम्भों के सहारे वह चार दीवारी खड़ी की जाती थी। सब तम्बुओं के बाहरी भाग सफेद और लाल कपड़े से बनाए जाते थे और भीतर की सारी दीवार तसवीरों से लदी रहती थी। तसवीरें वैसी ही रहती थीं, जिन्हें आजकल लोग तसवीर कहते हैं, अर्थात् कांच के भीतर चित्र। दर्बारवाले तम्बू के भीतर ज़र्दोज़ी का चन्दोवा तना रहता और उस के नीचे बेशकीमत मखमली गलीचे के ऊपर बादशाही तख्त रहता, जिस के चारों ओर तातार देशवाली हथियारबन्द औरतों का पहरा रहता था।

बादशाही महलों के घेरे के बाहर अमीर, उमरा लोगों के तम्बू रहते थे और उन का घेरा कई कोस की जमीन में फैला रहता था। उन में कोई तम्बू की अटारी लाल, कोई पीली, कोई सफेद, कोई सब्ज, कोई नीली और कोई रंग बिरंगी रहती थी। और सभी अटारियों के कोने के कलश सूरज की किरनों के पड़ने से चमचमाया करते थे। सब तम्बुओं के बाहर चारों ओर दिल्ली के चौक की तरह विचित्र बाजारें लगती थीं और उन बाजारों का सिलसिला लगातार दूर तक फैला रहता था। बस इसी प्रकार बादशाह के पहुंचने से उदयसागर के तीर ऐसी महानगरी बनाई गई, जिसे देख लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा।

बादशाह जब किसी पर चढ़ाई कर दिल्ली से कूच करता तो उस के महलों में रहने वाली सभी औरतें उस के साथ चलती थीं। सभी बेगमें बादशाह के साथ चलती थीं, सो इस वार भी सब साथ हुईं। योधपुरी, उदयपुरी, ज़ेबउन्निसा वगैरह सभी बादशाह के हमराह थीं और योधपुरी के साथ निर्मलकुमारी भी चल पड़ी थी। दिल्ली के रंगमहल के अंदर जिस तरह सब बेगमों के महल अलग अलग थे, वैसे ही तंबू के रंगमहल के अंदर भी सब के महल अलग २ बने हुए थे।

ऐसे अजूब शिविर में एक दिन रात के समय योधपुरी के महल में आ कर औरंगज़ेब दिलबहलाव की बातें कर रहा था। निर्मलकुमारी भी उस समय वहां पर मौजूद थी।

औरंगज़ेब निर्मलकुमारी को 'इमलीबेगम' कह कर पुकारता था। पहिले वह निर्मल को 'निमली बेगम' कहता था, पर इस जुमले की तकलीफ भोग कर अब उस ने 'इमलीबेगम' कहना प्रारंभ किया था। उस ने निर्मल से कहा—

"इमलीबेगम! सच कहो; तुम हमारी हो, या राजपूतों की?"

यह सुन उस ने हाथ जोड़ कर कहा—

"हुजूर! आप दीनदुनियां के बादशाह हैं; जब कि आप दीनदुनियां का फैसला करते हैं तो इस बात का भी फैसला हुजूर ही कर डालें।"

औरंगज़ेब—हमारे फैसले से तो यह साबित होता है कि तुम राजपूत

की लड़की हो, राजपूत तुम्हारा शौहर है, और राजपूतिन महारानी की तुम सहेली भी हो, लिहाज़ा तुम राजपूत ही की तरफ़दार होगी।"

निर्मल—जहां पनाह! हुज़ूर का यह इंसाफ ठीक नहीं हुआ। क्योंकि मैं राजपूत की लड़की तो बेशक हूं, मगर हज़रत योधपुरी बेगम साहिबा भी तो राजपूतिन हैं और आप की दादी, परदादी भी तो वही (राजपूतिनें) थीं; तो अब बतलाइये कि वे सब मोगल बादशाह की तरफदार या मददगार थीं, या नहीं?

औरंगज़ेब—वे सब मोगल बादशाह की बेगम थीं, मगर तुम तो राजपूत की जोरू हो।

निर्मल—(हंस कर) मैं शाहंशाह आलमगीर बादशाह की इमली बेगम हूं।

औरंगज़ेब—तुम रूपनगरवाली की सहेली हो।

निर्मल—हज़रत योधपुरी बेग़म साहिबा की भी सहेली ही हूं।

औरंगज़ेब—तो फिर तुम हमारी हो?

निर्मल—हजूर जैसा समझें।

औरंगज़ेब—अच्छा, हम तुम को एक काम सौंपा चाहते हैं। उस काम में हमारी भलाई और राजसिंह की नुकसानी है। चुनांचे ऐसे काम में हम तुम्हें लगाया चाहते हैं तुम उस को कर सकोगी?

निर्मल—बिना जानेबूझे, कि वह कौन सा काम है, मैं क्योंकर हामी भरूं! पर इतना सोच लीजिये कि मैं देवता ब्राह्मण की किसी तरह की भी हानि नहीं करूंगी।

औरंगज़ेब—हम तुम को वैसे कामों के करने के वास्ते नहीं कहते। सुनो, हम उदयपुर को जरूर दखल करेंगे—क्योंकि राजसिंह की अमलदारी लेलेने के बारे में हम को कोई शक नहीं है; पर राजमहल के दखल करने पर रूपनगरवाली को दस्तयाब कर सकेंगे या नहीं, इस बारे में शुबहा है। चुनांचे तुम उसी अम्र में हमारी मदद करो।

निर्मल—मैं आप के सामने गंगा, यमुना की कसम खाती हूं कि अगर आप उदयपुर के राजमहल को दखल करेंगे तो मैं जरूर चंचलकुमारी को लाकर आप के हाथ सौंप दूंगी।

औरंगज़ेब—हम तुम्हारी बातों का यक़ीन करते हैं, वजह इस की यह है और तुम भी इस बात को बखूबी जानती हो, जो हमारेसाथ धोखेबाजी का काम करताहै। उसको टूक टूक कर हम स्यार कुत्तों को खिला देतेहैं।

निर्मल—मगर, हज़रत! मुझे भी उसी तरह खिला सकते हैं, या नहीं, इस बात का फैसला तो पहिले ही हो गया है। पर फिर भी मैं कसम खा कर पक्का वादा करती हूं कि मैं आप को धोखा न दूंगी। मगर मुझे इस बात का पूरा शक है कि आप के उदयपुर के दखल करने पर मैं चंचलकुमारी को जीती पाऊंगी, या नहीं। क्योंकि राजपूत महारानियों की यह रीत है कि दुश्मनों के हाथ पड़ने के पहिले ही वे चिता पर जल कर राख हो जाती हैं। बस उसे भी मैं जीती न पाऊंगी, इसी खयाल से मैं ने आप की बात को सकारा है; नहीं तो मेरे हाथों उस की किसी तरह की भी बुराई नहीं हो सकती।"

औरंगज़ेब—इस में बुराई किस बात की है? वह तो बादशाह [हमारी] की बेगम होगी।"

इस बात का जवाब निर्मल दिया ही चाहती थी कि ठीक उसी समय खोजे ने आ कर अर्ज़ की कि "पेशकार दर्बार में हाज़िर है और एक बहुत ज़रूरी अर्ज़ी हुज़ूर के खिदमत में पेश किया चाहता है। हज़रत शाहज़ादा अकबर शाह के बारे की खबर है।"

यह सुनते ही घबराया हुआ औरंगज़ेब तुरन्त दर्बार में गया। उस के सामने पेशकार ने अर्ज़ी पेश की। औरंगज़ेब ने सुना कि, "अकबर की पचास हज़ार फौज काटी मारी जा कर गारत हो गई और उस में के बचे बचाए सिपाही किधर भागे, इस बात का पता नहीं है।

यह सुनते ही औरंगज़ेब ने उसी समय डेरा डंडा उठा कर कूच करने का हुक्म दिया।

अकबर के हारने की खबर तुरन्त ही रंगमहल में भी पहुंची थी, जिसे सुन निर्मलकुमारी ने पेशवाज़ पहिर और महल का दर्वाज़ा बन्द कर के योधपुरी बेगम के सामने रूपनगर के नीचे की बानगी दिखलाई थी। फिर पेशवाज़ वगैरह उतार कर जब वह शाइस्तगी के साथ बैठी हुई थी उस समय औरंगज़ेब ने उसे तलब किया। और उस के हाजिर होने पर कहा—

"हमारी फ़ौज़ कूच किया ही चाहती है—हम जंग के वास्ते रवाना होते हैं, अब तुम क्या इस वक्त उदयपुर जाया चाहती हो ?"

निर्मल—जी नहीं, हुज़ूर ! बिलफेल मैं फ़ौज के साथ ही साथ चलूंगी, फिर रास्ते में जहां पर मौका देखूंगी, वहीं से चली जाऊंगी।

यह सुन औरंगज़ेब ने कुछ दुखी हो कर कहा—"किस लिये, हमें छोड़ कर जाने का कस्द करती हो ?"

निर्मल ने कहा—"शाहंशाह (आप) का हुक्म बजालाने के लिये।"

इसे सुन औरंगज़ेब ने प्रसन्न हो कर कहा—"अगर हम तुम्हें न जाने दें तो तुम हमेशः रंगमहल में रहने पर राजी हो ?"

इस पर निर्मलकुमारी ने हाथ जोड़ कर कहा—"मेरे शौहर मौजूद हैं।"

यह सुन औरंगज़ेब ने सिटपिटा कर कहा—"अगर तुम मज़हब इसलाम को कबूल करो और अपने शौहर को तिलाक़ दे दो तो हम उदयपुरी बेगम से भी बढ़ कर इज्ज़त और प्यार के साथ तुम को रक्खेंगे।"

यह सुन निर्मल ने हंसकर, पर अदब के साथ कहा—जहांपनाह, यह बात गैरमुमकिन है।

औरंगज़ेब—क्यों ? गैरमुमकिन क्यों है ? कितनी ही राजपूतिने तो मोगलों के घर आई हैं।

निर्मल—ठीक है, पर उन में से कोई भी अपने शौहर को तिलाक़ दे कर नहीं आई है।

औरंगज़ेब—अगर तुम्हारा शौहर न रहता तो तुम आतीं ? या रहतीं ?

निर्मल—हुज़ूर ! यह सवाल किस लिये किया जाता है ?

औरंगज़ेब—यह सवाल जिस गरज़ से किया गया है, उस अम्र को जब हम ज़बान पर लाना चाहते हैं तो शर्म दामनगीर होती है। तुम यक़ीन करो, हम ने आज तक किसी के रूबरू ऐसी आजिज़ी कभी नहीं जाहिर की थी। हम अब ज़ईफ़ हो चुके हैं, मगर आज तक हम ने किसी नाज़नी को दिल से प्यार नहीं किया। अगर सच पूछो तो इस जिन्दगी में हम ने अगर किसी खूबरू को सच्चे दिल से चाहा तो फ़क़त तुम को। चुनांचे अगर तुम इस वक्त फ़क़त इतना ही अपनी ज़बान शीरी से कहो कि "हां!

अगर मेरा शौहर न होता तो मैं तुम्हारी बेगम होती" तो बस तुम्हारे इतने कहने ही से हमारा यह मुहब्बत से सूना दिल—जलते हुए कोह के मानिन्द दिल ज़रा शाद तो हो !"

निर्मल ने औरंगज़ेब की बातों का विश्वास किया; क्योंकि इन बातों के कहने के समय उस के गले की आवाज़ ऐसी ही थी कि जिस पर पूरा पूरा विश्वास किया जा सकता था। उस के लिये निर्मल कुछ दुखी हुई और बोली—

" जहाँपनाह ! इस बाँदी ने हुजूर का ऐसा कौन सा काम किया है जिस के सबब से यह नाचीज़ (मैं) हज़रत के प्यार करने लायक समझी गई ?"

औरंगज़ेब—इस बात को हम जबान से अदा नहीं कर सकते। सुनो, तुम बेशक खूबसूरत हो, मगर फ़कत खूबसूरती पर मायल होने लायक अब हमारी उम्र नहीं है। और तुम खूबसूरत होने पर भी उदयपुरी से बढ़ कर हुस्न नहीं रखतीं। मगर सब से बढ़ कर तो तुम में वो खूबी है कि जिस को हम ने ख्वाब में भी किसी ग़ैरशख्स में नहीं पाई, यानी हम ने सिवा तुम्हारे और किसी के मुंह से सच्ची और वाजबी बातें आज-तक नहीं सुनीं, बस इसलिये तुम्हारे ऊपर हमारा दिल मायल हो रहा है। और तुम्हारी समझदारी, अक्लमन्दी और हिम्मत देख कर हम तुम्हीं को अपनी बेगम होने के लायक तसव्वर भी करते हैं। खैर जो कुछ हो, पर यह तुम सच जानो कि ज़ालिम आलमगीर बादशाह सिवा तुम्हारे और कभी किसी बसर से नहीं दबा और न कभी किसी परी जमाल के कातिल चश्मों का शिकार बना। अगर इस मूज़ी को [मुझे] किसी ने अपने ताबे किया तो सिर्फ़ तुम ने।

निर्मल—शाहंशाह ! मुझ से एक दिन रूपनगर की राजकुमारी ने तफ़रीहन पूछा था कि " तू किस के साथ शादी करना चाहती है।" इस पर मैंने भी शरारत से यों जवाब दिया था कि, " आलमगीर बादशाह के साथ।" इस पर उन्होंने चकपका कर पूछा कि " क्यों ?" तब मैंने उन्हें समझा दिया कि " मैं लड़कपन में बाघ को पोसती थी, बस ! बाघ

को अपने काबू में लाने ही से मेरा मतलब था। इसी तरह बादशाह को भी अपने काबू में करने से मुझे वैसा ही मज़ा मिलेगा।" हजूर! मैं बड़ी ही बदबख्त हूं कि कुआरीपन में मेरे आप के मुलाकात नहीं हुई। इसलिये अब मैं ने जिस गरीब दुखिया को अपना शौहर बनाया है, उसी से खुश हूं। अब आप मुझे रुख़सत कीजिए।"

यह सुन औरंगज़ेब ने दुखी हो कर कहा—"या अल्लाह! दीन दुनियां के बादशाह होने पर भी कोई इन्सान आसूदः नहीं होता—और किसी की भी ख्वाहिश पूरी नहीं होती। आह! इस दुनियां में तमाम उम्र में हम ने फ़क़त तुम्हीं को प्यार किया, मगर अफ़सोस तुम को दस्तयाब करने में फ़क़त नाकामयाबी ही हासिल हुई। हम तुम को सच्चे दिल से चाहते हैं, इसी खयाल से तुम्हें रोक न रक्खेंगे। यकीन करो—छोड़ देंगे। यहां तक कि जिस में तुम खुश हो, वही करेंगे, और जिस अम्र से तुम्हारे नाजुक दिल पर सदमा पहुंचे, वह काम ख्वाब में भी न करेंगे। लिल्लाह तुम जाओ, अल्लाह तुम्हें खुश व खुर्रम रक्खें; मगर इतनी आरज़ू है कि हमें याद रखना, भूलना मत। और अगर कभी भी हमारे ज़रिये से तुम्हारी कोई भलाई हो सकती हो, या हमारी किसी किस्म की मदद तुम्हें दर्कार हो तो बिला किसी सोच बिचार के हम पर जाहिर करना। और खुदा के फ़ज़ल से यकीन है कि हम तुम्हारी आरज़ू ज़रूर पूरी करेंगे।"

यह सुन कर निर्मल ने कूर्निश की और कहा—

"जहांपनाह! फिलहाल मेरी एक अर्ज़ कबूल हो। वह यह है कि 'अगर कभी ऐसा मौका आ जाय और दोनों तरफ की भलाई की नीयत से सुलह करने के वास्ते मैं हुज़ूर से अर्ज़ करूंगी, तो उस वक्त हज़रत मेरी इल्तदुवा क़बूल करेंगे।"

औरंगजेब ने कहा—"इस अम्र पर उस वक्त गौर किया जायगा, जब कि इस की ज़रूरत समझी जायगी।"

तब निर्मल ने अपना पलुआ कबूतर निकाल कर उसे दिखलाया और कहा—

"जहांपनाह! इस सिखलाए हुए कबूतर को हुजूर अपनी ख़िदमत में रख लें और जब इस लौंडी को याद करने की जरूरत पड़े उस वक्त इसे

हुजूर छोड़ दीजिएगा ; तब इसी के ज़रिये से अपनी गुज़ारिश हुजूर के कदमों में पेश करूंगी। बिलफेल मैं हुजूर के हमराह ही चलती हूं, मगर जब रुख़सत हुआ चाहूंगी, उस वक्त हज़रत शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा मेरी खलासी कर दें ; ऐसी इजाज़त हुजूर उन को दे दें।"

इस पर औरंगज़ेब ने उस की दिलजमई कर दी और फौज़ के कूच का इन्तज़ाम करने के लिये महल के बाहर पांव रक्खा।

पर उस के मन में बहुत ही खेद हुआ, क्योंकि उस ने निर्मल के समान बातचीत में साहस, बचनचातुरी, और स्पष्ट कहना किसी में भी नहीं देखा था। यदि कोई राजा—शिवाजी या राजसिंह; यदि कोई सेनापति-दिल्ली के या बाहरी ; यदि कोई शाहज़ादे—आज़म या अकबर ; यदि निर्मल सरीखे साहस से बातें करते तो औरंगज़ेब कभी बर्दाश्त नहीं करता। सुन्दरी युवती-सहायहीन बिचारी निर्मल की खरी बातें उसे मीठी लगतीं ; और सच तो यों है कि बुड्ढे के ऊपर कामदेव का जितना अत्याचार हो सकता है, उतना इस जगह भी जरूर ही हुआ था। इतने पर भी औरंगज़ेब प्रेमान्ध नवयुवक के समान प्यारी के बिछुरने के शोक में डूब नहीं गया था, बरन कुछ उदास हुआ था। वह कुछ मार्क, अन्टुनी, या अग्निवर्ण न था, पर हाड़ मांस का आदमी निरा पत्थर का भी तो नहीं होता।

तीसरा परिच्छेद।

बादशाह आग के घेरे में।

तड़के ही बादशाही फौज ने कूच करना प्रारम्भ किया। सब के आगे रास्ता साफ़ करनेवाली फौज़ राह दुरुस्त करने के लिये हथियार से लैस हो कर चली। उस फौजवालों के हथियार थे, फरसा, कुदाली, खन्ती, टांगे, गंड़ासे, और कटार। वे लोग सामने के पेड़ों को काट कर दूर करते, गढ़ गढ़ले पाटते, और मट्टी पीटपाट कर बादशाही फौज के चलने लायक राह बनाते हुए आगे आगे चले। उसी राह से फिर तोपों की कत्तारें छकड़ों के ऊपर लदी हुई घड़ घड़ हड़ हड़ करती हुई चलीं, जिन के साथ गोलंदाज़

फौज भी थी। उस समय अनगिनत गोलंदाज़ी गाड़ियों के 'चरेंकों चरेंकों' की कड़ी आवाज़ से कान बहिरे हुए जाते थे; उन गाड़ियों के हज़ारों चक्कों से दरकचरा हुई धूल के उड़ने से आंखें अंधी हुई जाती थीं; और कालान्तक यम की भांति मुंह बाए हुई तोपों के भयानक आकार को देखकर कलेजे कांप जाते थे। उस गोलंदाज फौज के पीछे बादशाही खजाना चला। क्योंकि वह (बादशाही खजाना) बादशाह के साथ ही साथ चलता था। इस का कारण यह था कि औरंगज़ेब का किसी के ऊपर भी रत्ती भर विश्वास न था कि जिस के भरोसे वह दिल्ली में अपना खजाना छोड़ कर कहीं जाता। क्योंकि उस के 'साम्राज्यशासन' का यही 'मूलमंत्र' था कि " संसार में किसी के ऊपर भी विश्वास नहीं करना !!! " यह भी याद रखना चाहिए कि इस वार दिल्ली से कूच कर के फिर औरंगज़ेब जीतेजी दिल्ली को नहीं लौटा। क्योंकि फिर वह शताब्दी के एक चरण (२५ वर्ष) तक बराबर मोर्चे मोर्चे पर घूमता हुआ दक्खिन में जा कर मरा था।

अनंत धन और रत्न की ढेर से भरपूर और हाथियों पर लदे हुए खजाने के पीछे बादशाही दफ़्तरख़ाना चला। थोक के थोक गाड़ी, हाथी और ऊंटों पर लदे हुए बही खातों की कत्तार पर कत्तारें चल पड़ीं। उस के पीछे ऊंटों पर लदे हुए गंगाजल के घड़ों की कत्तारें चलीं; क्योंकि इस के समान सुंदर, मीठा, गुणकारी और बहुत दिनों तक निर्विकार रहनेवाला जल और किसी नदी का नहीं होता; इसीलिये दिल्ली के बादशाहों के साथ सफ़र और जंग के समय भी बराबवर गंगाजल साथ रहता था। जल की कत्तार के पीछे खाने के सरंजाम चले—आटा, घी, चावल,दाल, चीनी, मसाले, तरह तरह के पखेरू, चौपाए, और कच्ची पक्की खाने की चीजों की कत्तारें चलीं; उन के साथ साथ हज़ारों बावर्ची भी चले। तिस के पीछे तोशखाना—लिवास, पोशाक, पेशवाज़ और कपड़ों गहनों के झमेले। उस के पीछे अनगिनत घोड़सवार मोगल सेना चली।

यह तो हुआ बादशाही फौज का पहिला हिस्सा; और इस के दूसरे हिस्से में खुद बादशाह सलामत थे। उन के आगे आगे असंख्य ऊंटों पर दहकते हुए आग के कड़ाहों में धूना, गुग्गुल, चंदन, अगर, अंबर, जाफ़रान, कपूर, कस्तूरी जल रही थीं, जिन की सुगंध से कोसों तक चारो

ओर पृथ्वी और आकाश सुगन्धित हो रहा था। उस के पीछे बादशाही खास आहदी फौजदामी और बेऐब घोड़ों पर सवार कत्तार बांधे हुई चली जाती थी, जिस के बीचोंबीच खुद बादशाह जवाहिरात से संवारे हुए सफ़ेद उच्चैश्रवा सरीखे बड़े भारी घोड़े पर सवार था और उस के ऊपर बहु-मूल्यमोतियों की झालरवाला सफेद छत्र शोभा दे रहा था। बादशाह के जलूस के पीछे जिसे सारी फौज का हीर, दिल्ली का हीर या बादशाहत का हीर भी कह सकते हैं, रंगमहल में रहनेवाली औरंगज़ेब की त्रैलोक्यमोहिनी सुंदरियों का जखारी था। उन सुंदरी बेगमों में कोई कोई ऐरावत सरीखे ऊंचे हाथियों पर सोने के हौदों में, जिस के भीतर ज़र्दोज़ी मखमल के गुल-गुले गद्दे बिछ रहे थे, और जिन की अंबारियों पर बहुत ही मिहीं ज़र्दोज़ी के रेशमी पर्दे पड़ रहे थे, सवार थीं। उस समय उन की ऐसी तड़कभड़क थी, जैसी मेघ की ओट में छिपे हुए चंद्रमा की होती है। उन सुंदरियों की जवाहिरात से लदी हुई लंबी लंबी चोटी काली नागिन की तरह लहरा रही थीं, उन की काली काली बड़ी बड़ी मारू आंखों में कालाग्नि समान कटाक्ष खेल रहे थे; जिन के ऊपर कमान सी तनी हुई काली काली भौंवें नीचे सानदार तलवार सी काजल की रेख और बीच में बिजली से चमकते हुए नैन तारे की गज़ब की चौकड़ी से सारी फौज चुटीली हो कर बेसिलसिले हुई जाती थी। उस पर भी तुर्रा यह कि उन नाज़नियों के पान की लाली से रगीले ओठों पर अमृत या विष से सरबोर हंसी नाच रही थी, जिसे देख कर मर्द बच्चों के दिल बेताब हुए जाते थे। ऐसी नमकीन एक दो जनी न थीं, बरन हाथी के पीछे हाथी, उस के पीछे हाथी, योंहीं सैंकड़ों हाथियों की रेलापेली हो रही थी और सभों पर वैसे ही हौदे और सभी हौदों में वैसी ही नाज़नियां और सभी नाज़नियों के वैसे ही इशारे भी मेघ की गोद में खेलती हुई बिजली के खिलवाड़ के समान खेल रहे थे, जिन की चमकदमक से अंधेरी जमीन में अजीब तरह का उंजाला हो रहा था। कोई कोई सुंदरी डोले पर चलीं, जिन पर कमखाब के जर्दोज़ी पोश पड़े हुए थे जिन में मोतियों की झालरें झूल रही थीं; और जिन के डंडों पर सोने चांदी की खोल चढ़ी हुई थी। भीतर भी जर्दोज़ी कामदार का शानी मखमल के गुदगुदे गद्दे बिछ रहे थे, जिन के हाशियों पर मोतियों की

बेहद रौनक थी। उस पर जवाहरात से आरास्ता नाजनियां बैठी हुई मौज मार रही थीं

और और बेगमों में योधपुरी और निर्मलकुमारी, उदयपुरी और ज़ेब-उन्निसा हाथियों पर सवार थीं। उन चारों में उदयपुरी के चेहरे पर हंसी का पालिस किया हुआ था, योधपुरी के मुखड़े पर उदासी की स्याही फैली हुई थी, निर्मलकुमारी के चेहरे से चुहल और छेड़छाड़ की झलक निकल रही थी, और ज़ेबउन्निसा गर्मी के दिनों में उखाड़ी हुई लता की भांति नोची खसोटी सूखीसाखी मुर्दे के समान दिखलाई देती थी। वह सोच रही थी कि "इस फौज के समुंदर में डूब कर क्या मैं मर नहीं सकती?"

उन सुंदरियों के झूमर के बाद महल में रहनेवाली बादशाही कंचनी और लौंड़ियों (१) का अखाड़ा चला। ये सभी नाज़नियां सिपाहियाना ठाठ से बेशकीमत घोड़ों पर सवार थीं, जिन की मोतियों से गुथी हुई लंबी लंबी चोटियां पीठों पर झूम रही थीं। ओठों पर पान की लाली अपनी न्यारी रंगत दिखला रही थीं, बिजली से भड़कीले इशारे लोगों के दिल पर गिर गिर कर उस की धज्जियां उड़ाए डालते थे, उभड़ हुए सीनों की उभाड़ को देख लोगों के कलेजे में गढ़े पढ़े जाते थे और जिन भुवनमोहिनी सुंदरियों के जड़ाऊं गहनों की झनकार से इनसान को कौन कहै, हैवान घोड़े भी मस्ती में भर कर झूमते, मचलते, कुलांचे भरते, और नाचते हुए उस परीजमाल को उड़ा ले जाने के लिये तड़फड़ा रहे थे।

उन सुंदरियों के पीछे भी गोलंदाज फौज थी, पर उस फ़ौज की तोपें बहुत छोटी छोटी थीं। शायद बादशाह ने यह समझ कर कि "परी जमालों के मारू नैनों के पीछे बहुत बड़ी तोपों की जरूरत नहीं है," छोटी छोटी तोपों की ही कत्तार रक्खा होंगी।

तीसरे हिस्से में पैदल फौज थी। और उस के पीछे लौंड़ी गुलाम,

---

(१) कंचनी वे कहलातीं, जो बिना निकाह किये ही बेगमों के समान भोगी जाती थीं; और लौंड़ियां भी भोग्यवस्तु थीं, पर उनका दर्ज़ा कंचनियों से नीचे था।

मोटिया, मजदूरे, नाचनेवाली रंडी भंडुए, और मामूली लोग कोतल के घोड़े, खच्चर, डोली, कहार, तंबुओं के सग्गड़ इत्यादि इत्यादि !

जैसे घोर गर्जन करती करती बड़े बड़े गांव को डुबाती हुई, मगर, घड़ियाल, और भवंर से भयानक बर्साती नदी छोटे से बालू के पटपर को डुबाती हुई चली जाती है, उसी भांति बड़ा कोलाहल करती हुई बड़े वेग के साथ वह बेपरिमाण असंख्य मोगलसेना राजसिंह के क्षुद्र राज्य को डुबाने के लिये दौड़ी हुई चली जाती थी।

पर एकाएक उस की चाल को रोकनेवाली एक बला पैदा हुई। अर्थात् जिस राह से अकबर अपनी फ़ौज को ले कर गया था, औरंगज़ेब भी उसी रास्ते से अपनी फ़ौज लिए हुए जाता था। उस का मतलब यही था कि "शाहज़ादे अकबर की फौज के साथ अपनी फ़ौज को मिला देंगे और जो कहीं बीच में कुमार जयसिंह की फ़ौज से मुक़ाबिला हो गया तो उसे चींटियों की तरह मसल डालेंगे, फिर दोनों फौज को मिला कर उदयपुर में घुस पड़ेंगे और महाराना के राज्य को तहसनहस कर डालेंगे" इत्यादि। किन्तु पहाड़ी रास्ते पर चढ़ने के पहिले ही उस ने ताज्जुब के साथ देखा कि "राजसिंह ऊंचे पहाड़ की चोटी पर उस के रास्ते के बगल में अपनी सेना लिये हुए डटे हैं।" पहिले उन्हों ने 'नयन' नामक गिरिसंकट के पहाड़ी रास्ते को रोक रक्खा था, पर जब उन्होंने अपने दूत के मुंह अकबर का हाल सुना तो रणचातुरी की अद्भुत प्रतिभा को दिखलाते हुए वे अपनी सेना के साथ मांस के लालची बाज पक्षी की भांति दौड़ादौड़ ऊपर कहे हुए 'नयन' नामक गिरिसंकट के पहाड़ी रास्ते पर आ जमे थे।

औरंगज़ेब ने देखा "कि राजसिंह के इस अजीब होशियारी के सबब हमलोगों का तहसनहस हुआ चाहता है।" क्योंकि बादशाही फौज जिस रास्ते से जाती थी, उस राह से और आगे बढ़ने पर राजसिंह को अपने बगल में छोड़ कर जाना पड़ेगा। बस शत्रु की सेना को अपने बगल में छोड़ कर जाने की अपेक्षा दूसरी कौन सी बिपद हो सकती है ? क्योंकि जो बगल में से छापा मारे, उसे लड़ाई में हराना जरा टेढ़ी खीर है। बस

वह बगल से छापा मारनेवाला ही अपने शत्रु को गाजर मूली की तरह काट कर बिजयी होता है। सालामास्का और ओस्तरलिज़ में ऐसी ही घटना हुई थी। औरंगज़ेब भी इस विलक्षण और सटीक रणतत्व को अच्छी तरह जानता था। और वह यह भी समझता था कि बगल में डटे हुए दुश्मन के साथ लड़ाई तो की जाती है, पर ऐसी हालत में अपनी फौज़ को फेर कर दुश्मन के आगे करना पड़ेगा। पर इस पहाड़ी रास्ते में इस बड़ी भारी फौज के घुमाने की जगह नहीं है, और फिर उतना वक्त भी नहीं मिल सकता कि इतनी बड़ी फौज को सिलसिलेवार घुमाया जाय। क्योंकि जब तक अपनी फौज का रुख घुमाया जायगा, उस के पेश्तर ही राज-सिंह पहाड़ से उतर कर हमारी फौज के दो हिस्से कर के एक हिस्से को बखूबी काट डालेगा, तो फिर ऐसी लड़ाई के लिये हिम्मत करना बेवकूफी है। और इस के अलावे यह भी हो सकता है कि राजसिंह लड़ाई न करे और जिस राह से हमारी फौज जा रही है बिना छेड़छाड़ चली जाने दे; पर ऐसा होने पर भी गहरी आफत का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि हमारे चले जाने पर यह पहाड़ से उतर कर हमारे पीछे लगेगा। अगर ऐसा हो तो यह फौज़ के पीछेवाले माल असबाब को लूटपाट कर पीछे की फौज को काट डालेगा, यह तो इस के वास्ते एक अदनी बात है। मगर असल खौफ़ तो यह है कि रसद का ही मोहरा मारा जायगा। सामने ही कुमार जयसिंह की फौज है, तो बस आगे पीछे जयसिंह और राजसिंह की फौज के बीच में पड़ कर फन्दे में फंसे हुए मूंसे की भांति दिल्ली का बादशाह (मैं) फ़ौज के साथ ही बात की बात में गारत हो जायगा।"

तात्पर्य यह कि उस समय जाल में फंसी हुई मछली के समान औरंगज़ेब की दशा हो रही थी। और उस ने भली भांति समझ लिया था कि अब इस आफ़त से किसी तरह छुटकारा नहीं है। वह लौट जा सकता था, पर ऐसा करने पर भी राजसिंह उस के पीछे चढ़ दौड़ते। वह उदयपुर राज्य को अथाह पानी में डुबोने आया था, पर यह बात तो दूर रहे; अब उसी क्षुद्र उदयपुर का एक छोटा सा राजा भारतेश्वर शाहंशाह औरंगज़ेब के पीछे ताली बजाता हुआ लग पड़ेगा, और उस अनहोनी बात को होते देख सारा जमाना हंसेगा! बस मोगलबादशाह के असीम गौरव के लिये इस से

बढ़ कर और दूसर कौन सी अवनति हो सकती है ? परंतु फिर उसने सोचा कि—"ऐं ! हम सिंह होकर एक नाचीज़ मूसे से डर कर भाग जायंगे ?" बस, घमंड में आकर फिर उस ने भागने के विचार को मन में जगह नहीं दी।

फिर और क्या हो सकता था ? केवल इतनाही भरोसा था कि—'यदि कोई दूसरी राह भी उदयपुर जाने के लिये हो!' तब औरंगज़ेब के हुक्म से चारों ओर सवार लोग रास्ते का पता लगाने के लिये छूटे। उस ने निर्मल कुमारी से भी पुछवाया था कि—"वह यहां के रास्ते से वाकिफ़ हैं ?" इस पर उस ने यह जवाब दिया था कि—"मैं एक पर्देनशीन औरत हूं-भला मैं राहबाट का हाल क्या जानूं ? पर इतने ही में जासूसों ने आकर खबर दी कि—"उदयपुर जाने के वास्ते एक रास्ता और है। राह में एक मोगलसौदागर से मुलाकात होने पर उस ने कहा है कि 'हां यहां पर एक रास्ता है, जिसे हम दिखला देंगे।' उस की यह बात सुन एक मनसबदार उस रास्ते को देख भी आया है। वह एक बहुत ही सकरीला पहाड़ी दर्रे का रास्ता है, मगर राह सीधी है, आर थोड़ी ही दूर उस में चलने पर आगे साफ़ और चौड़ा रास्ता मिल जायगा। उस तरफ कोई राजपूत भी नहीं दिखलाई देता और उस मोगल ने भी ऐसी ही खबर दी है कि उस तरफ कोई राजपूत या उस की फ़ौज नहीं है।"

इन बातों को सुन कर पहिले औरंगज़ेब ने इस पर विचार किया और फिर कहा—

"मानाकि उस तरफ कोई राजपूत या उस की फौज नहीं है, मगर जब कि हमरी इतनी बड़ी लश्कर की उस राह से गुज़र होगी तो क्या यह बात काफ़िर राजपूतों से छिपी रहेगी ?"

इस पर जो मनसबदार रास्ता देख आया था, और जिस का नाम बख़्त ख़ां था, उस ने कहा कि—"जिस मोगल ने पहिले मुझे उस रास्ते का हाल बतलाया, उसे मैं ने पहाड़ के ऊपर रवाना कर दिया है। अब अगर वह इस पहाड़ पर राजपूतफ़ौज को देखेगा तो मुझे इशारा करेगा।"

औरंगज़ेब ने पूछा—वह मोगल क्या हमारी फ़ौज़ का सिपाही है ?"

बख़्त ख़ां—जी नहीं, हुजूर ! वह एक सौदागर है। उदयपुर में शाल

बेंचने आया है। अभी वह लश्कर में अपने शाल बेंचने आया था कि मुझे उस की ज़बानी उस रास्ते का पता लगा।"

औरंगज़ेब—"बेहतर है, तो जल्दी उसी रास्ते की ओर फ़ौज को बढ़ाओ।"

बस, फिर क्या था, बादशाही हुक्म होते ही फ़ौज फिरी—क्योंकि कुछ दूर फिर आने पर तब उस दर्रे में घुमना पड़ता था। ऐसा करने में भी पूरी आफ़त थी, पर जाल में फंसी हुई मछली और किधर जाती? जिस सिलसिले से मोगलसेना आई थी, उसी सिलसिले से उस दर्रे में न जा सकी बल्कै अब यों करना पड़ा कि फ़ौज का जो हिस्सा आगे बढ़ गया था, वह अब पीछे रहा; और जो पीछे था, वह आगे चला। बादशाह ने हुक्म दिया कि। 'तंबू और सटर पटर चीज़ें और फजूल आदमी अब उदयसागर के रास्ते से जायं-फिर फ़ौज के पीछे वे आवेंगे।" ऐसा ही हुआ भी; औरंगज़ेब आप, पैदल सिपाही और छोटी तोपें, और उस के गोलंदाजों को ले कर उस दर्रे में घुसा, जिस के आगे आगे बख़्त ख़ां था।

यह देखते ही राजसिंह, सिंह, की भांति कूद कर पहाड़ से उतर मोगल सेना के ऊपर जा गिरे। बस बातकी बात में मोगल सेना के दो हिस्से होगए —मानों छुरी की काट से फूल की माला दो टुकड़े हो गई उन दो टुकड़ों में से एक टुकड़ा तो औरंगज़ेब के साथ उस दर्रे में घुस गया था, और दूसरा टुकड़ा इस समय पहिले रास्ते पर अर्थात् राज सिंह के आगे था।

मोगलों के बिपद के ऊपर एक और बिपद यह थी कि हाथी, घोड़े और डोलों के ऊपर बादशाही बेगमें जहां पर थीं, ठीक उसी के सामने—बेगमों के जलूस के ठीक सामने—राजसिंह अपनी सेना के साथ आ धमके। देखते ही देखते जैसे चील के झपटने पर चिड़ियों का गोल फ़ुर्र से उड़ जाता है, उसी प्रकार राजसिंह की इस गरुड़ रूपी सेना को देखते ही बादशाही महलों की कालीनशिनों का गोल कराहने, चिल्लाने, तड़पने और शोर गुल मचाने लगा। यहां पर लड़ाई नाम को भी नहीं हुई। क्योंकि जो सब आहदी बेगमों की हिफ़ाज़त के लिये चारों ओर हथियार लिये हुए फैले हुए थे, उन में से कोई भी हथियार न चला सका। उन सभों ने यही सोच कर हथियार न चलाया कि कहीं लड़ाई होने पर बेगमें

न घायल हो जायं। राजपूतों ने बिना लड़ाई किए ही आहदियों को कैद कर लिया। सारी बादशाही बेगमें और इन की बांदियां बिना लड़ाई भिड़ाई के ही राजसिंह के कैद में आ गईं।

मानिक लाल बराबर राजसिंह के साथ ही साथ रहता था, क्योंकि वह उन का बहुत ही मुंहलगुआ और प्यारा था; उस ने आगे बढ़ और हाथ जोड़ कर कहा—

"महाराजाधिराज! इस समय इन बिल्लियों के गरोह को ले कर क्या होगा? इसलिये आज्ञा हो तो भर पेट दूध दही खिलाने के लिये इन सभों को उदयपुर भेज दिया जाय।"

राजसिंह ने मुसकुराकर कहा—"इतना दूध दही उदयपुर में नहीं है कि इतनी बिल्लियों का नाक तक पेट भरेगा, क्योंकि हम ने सुना है कि दिल्ली की बिल्ली बड़े गहरे पेटवाली होती हैं, इसलिये केवल श्रीमती उदयपुरी बेगम साहिबा को चंचलकुमारी के पास भेज दो। क्योंकि उन्होंने इस बेश कीमत बिल्ली के लिये हम से बहुत कुछ कहा है। और इस के अलावे औरंगज़ेब की और सारी जमा पूंजी उसी को लौटा दो।"

इस पर मानिक लाल ने फिर हाथ जोड़ कर कहा—"पर नियम तो ऐसा है कि लूट के माल में से सिपाहियों को भी कुछ मिलता है।"

राजसिंह ने हंसकर कहा—"ठीक है पर केवल तुम्हें छोड़ कर और हमारा कोई भी सिपाही इतना लालची नहीं है, जो तुच्छ वस्तु के लिये दांत निपोरे; इसलिये यदि तुम्हें इन में से किसी की आवश्यकता हो तो ले लो; पर इतना स्मरण रक्खो कि मुसलमानी औरत को हिन्दू लोग छूते भी नहीं, तिस पर भी निर्मलकुमारी के थप्पड़ घूंसे को भी सोच समझ लो।"

मानिक—निर्मल की चिन्ता नहीं है। असल मतलब मेरा इन के नाचने गाने से है।

राजसिंह—पर, नाचने गाने में मन लगाने से फिर क्या राजपूत लोग तुम्हारी तरह वीरपना दिखला सकेंगे? जाने दो, सभों को छोड़ दो। और केवल उदयपुरी को उदयपुर भेज दो।

मानिक—किन्तु, धर्मावतार! इन औरतों के भयानक समुद्र में से क्योंकर उस रत्न को खोज निकालूं? मैं तो किसी को चीन्हता नहीं। यदि आज्ञा हो तो हनुमान की भांति इस गंधमादन पहाड़ को श्रीमती चंचलकुमारी जी के आगे उठा ले जाऊं, वह आप अपनी चीज़ पाहिचान लेंगी। फिर जिसे जिसे वह चाहेंगी, रक्खेंगी, बाकी रही चीज़ों को लौटा देंगी। तब ये सब जनी उदयपुर के हाट बाज़ार में घूम घूम सुरमा और मिस्सी बेंच बेंच कर अपना गुजारा करेंगी।

ठीक उसी समय एक बहुत ऊंचे हाथी पर से निर्मलकुमारी ने राज सिंह और मानिकलाल को देखा। फिर अपने दोनों हाथ उठाकर उन दोनों को प्रणाम कर अपनी ओर आने का इशारा किया, यह देख राज सिंह ने मानिकलाल से पूछा—

"ऐं! यह कौन सी बेगम है? यह तो हिन्दू जान पड़ती है! क्योंकि इस ने सलाम न कर के प्रणाम किया और पास भी बुलाया!!!"

मानिकलाल फिर एक बार निर्मल की ओर देख ठठा कर हंसा और बोला—"महाराज! वह तो एक बांदी है, वह बेगम कब हुई? उसे मैं अभी पकड़ लाता हूं।"

यह कह कर और कुछ आगे बढ़ कर उस ने हुक्म दिया कि (उंगली से दिखा कर) इस औरत को हाथी पर से मेरे पास ले आओ। बात की बात में वह मानिक के सामने लाई गई, पर बिना कुछ बोले चाले हंसने लगी। मानिकलाल ने पूछा—"ऐं! महाराज क्या कहते हैं? तुम बेगम कब से हुई?"

इस पर निर्मल ने तीन बल खाकर कहा—

खबर्दार! ज़बान सम्हाल कर गुफ्तगू कर। मैं बादशाह की 'हज़रत इमली बेगम साहिबा' हूं। तू मुझे झुक कर बंदगी कर!

मानिक—अच्छा, तुम समझ लो कि मैंने तुम्हें तस्लीम की। बेगम तो तुम हो नहीं, यह मैं बखूबी जानता हूं; और यह भी जानता हूं कि तुम्हारी नानी दादी भी किसी ज़माने में बेगम न थीं; पर यह बेगमों की सी लिबास क्यों पहिनी है?

निर्मल—चुप, बेतमीज़! पहिले मेरे हुक्म की तामीली कर और फजूल बकबक रहने दे।

मानिक—(मुसकुराकर) सीताराम ! सीताराम !!! जरा कोई इस नौचेड़ी बेगम का दिमाग तो देखे !

निर्मल—चुपरह, मुंए ! सुन, मेरा हुक्म है कि तू फौरन जाकर जनाब उदयपुरी बेगम साहिबा को जो उस (उंगली से दिखाकर) पांच कलसीदार हौदेवाले हाथी पर तशरीफ रखती हैं, हमारे हजूर में हाज़िर कर।

इस बात के तो जाननेही की देरी थी, बस सुनतेही मानिकलाल ने उदयपुरी को हाथी से उतार लाने के लिये अपने मातहतों को हुक्म दिया। बिचारी उदयपुरी चेहरे पर नकाब डाल कर थर्थराती हुई उतरी। तब मानिकलाल ने एक डोली खाली कर के उदयपुरी के हाथी के पास भेज दिया, और सवार होने पर उसे अपने पास उठवा कर रखवा लिया। फिर उसने निर्मल के कान के पास अपना मुंह लेजाकर पहिले तो उस का गाल चूम लिया फिर धीरे धीरे कहा—" हज़रत हमली बेगम साहिबा ! एक अर्ज़ यह है कि...."

निर्मल—(जरा हट और तनकर) चुप बेवकूफ ? मेरा नाम है ' हज़रत इमली बेगम ?

मानिक—खैर, तुम हमली, इमली, निर्मली या चाहे जो कोई बेगम क्यों नहों, पर (धीरे से) ज़ेबउन्निसा बेगम को चीन्हती हौ ?

निर्मल—(मुसकुराकर) जानता नहीं कि वह हमारी बेटी लगती है ? देख। आगे सोने का तीन कलस जिस हौदे पर जलूस देता है: उसी हाथी पर ज़ेबउन्निसा बैठी है।

सुनतेही मानिकलाल ने उसे भी हाथी से नीचे उतरवा कर एक डोले पर चढ़ाया।

उसी समय, किसी बेगम ने हौदे के ज़र्दोजी पर्दे को हटा अपना सिर बाहर निकालकर निर्मलकुमारी को पुकारा जिसे सुन मानिकलाल ने निर्मल से पूछा कि—" यह कौनसी बेगम है ?

निर्मल ने बेगम को देख कर कहा—" हां ! ये श्रीमती योधपुरी बेगम हैं। पर उन्हें यहां लाना अनुचित है, इस लिये मुझे उन के हाथी पर पहुंचा दो, सुनआऊं कि वह क्या कहती हैं।"

यह सुन मानिकलाल ने वैसाही किया। निर्मल कुमारी योधपुरी के हाथी के ऊपर चढ़ कर उन के इन्द्रासन समान हौदे के भीतरघुसी। योधपुरी ने कहा—

"बेटी! मुझे भी अपने साथ लेती चलो।"

निर्मल—ऐसा क्यों, अम्मा?

जोधपुरी—इस का जवाब तो कई बार दे चुकी हूं, अब मैं इस म्लेच्छ-पुरी में–इस महापाप के भीतर नहीं रहना चाहती।

निर्मल—पर, हज़रत, ऐसा नहीं हो सकता। आप यहां से कहीं नहीं जा सकतीं, आज यदि मोगल बादशाहत गारत न हो तो दिन पाकर आप का लड़का ही दिल्ली के तख्त पर बैठेगा। और हमलोग ऐसा ही उपाय करेंगी कि जिस में आप का बेटाही दिल्ली का बादशाह हो। उस की अमलदारी में आशा है कि हमलोग–हिन्दू लोग–सुख से दिन बितावेंगे।

योधपुरी–बेटी! ऐसी बात मुहं से मत बाहर कर यदि बादशाह के कानों तक इस बात की खबर पहुंचेगी तो मेरे बेटे की पलभर भी जान न बचेगी और वह बात की बात में ज़हर दे कर मार डाला जायगा।

निर्मल—मैं यह बात आज के लिये नहीं कहती. पर आप सच जानिये और भरोसा रखिए कि जो शाहज़ादे का वाजिबी हक़ है, समय पाकर वह उसे जरूर मिलेगा। अब इस बारे में आप मुझे दूसरी आज्ञा न दें और आशीर्वाद दे कर मुझे बिदा करें। और यह बात भी खूब सोच लें कि यदि आप हमलोगों के साथ जायंगी तो इस में आप के बेटे की खैर न होगी।

इस पर योधपुरी ने बिचार किया और कहा—

"तुम सच कहती हो, मैंने तुम्हारी बात मानली; मैं न जाऊंगी। जाव, परमेश्वर तुम लोगों का भला करें। चंचलकुमारी से मेरा राम राम कहना।"

तब निर्मलकुमारी उन्हें प्रणाम कर बिदा हुई।

उदयपुरी और ज़ेबउन्निसा थोड़ी सी सेना के घेरे में निर्मलकुमारी के साथ उदयपुर चंचलकुमारी के पास भेजी गई।

चौथा परिच्छेद।

आग का घेरा बड़ा भयानक हो उठा।

तब राजसिंह ने हाथी, घोड़े और डोले पर चढ़ी हुई सभी औरतों को उसी राह से जाने के लिये कहा, जिस ओर अभी औरंगज़ेब गया था। जब

वे सब उस दर्रे में घुस गई, तब दोनों ओर की सेना में सन्नाटा छा गया। औरंगज़ेब की बाकी फौज आगे नहीं बढ़ सकती थी, क्योंकि राजसिंह ने रास्ता रोक रक्खा था; पर औरंगज़ेब की समुद्र समान घोड़सवार फौज कब रुकनेवाली थी. वह लड़ाई का मौका ढूंढने लगी। सवारों ने अपने घोड़ों का रुख फेर कर राजपूतों का सामना किया, तब राजसिंह ने कुछ पीछे हट कर सवारों का रास्ता छोड़ दिया, और उन के साथ लड़ाई नहीं की। तब वे सारे सवार "दीन!" दीन! चिल्लाते हुए बादशाह के आज्ञानुसार उसी ओर चल पड़े, जिधर बादशाह गया था। सवारों के निकल जाने पर राजसिंह फिर आगे बढ़े।

इतनेही में बादशाही तोशखाना आ पहुंचा। उस के रखवाले एक प्रकार से नहीं ही के बराबर थे। बस बात की बात में राजपूतों ने उसे लूट लिया। उस के बाद खाने पीने के सरंजाम और रसद थी, उन में से जो हिन्दुओं के काम लायक चीज़ें थीं, वह राजसिंह की सेना की रसद में मिला ली गईं, और जो चीज़ें हिन्दुओं के छूने लायक न थीं उन्हें डोम दुसाध लोगों ने लूट कर कुछ तो खाया और कुछ स्यार कुत्ते और जंगली जानवरों को खिला दिया। फिर राजपूतों ने दफ़तर ख़ाने को हाथी के ऊपर से उतार कर कुछ तो आग लगा कर फूंक दिया और कुछ छोड़ दिया। तिस के पीछे मालखाना था, खज़ाना—उस में वे सब रत्न जवाहिरात के ढेर इकट्ठे थे, जिस के समान इस भूमंडल पर किसी बादशाही ख़ज़ाने में ढूंढे न मिलेंगे। उसे देखतही राजपूत सेनापति लोग लालच में बावले से नाच उठे। उस के पीछे बड़ी गोलंदाज फ़ौज थी। उसे देखतही राजसिंह ने अपनी सेना को सावधान कर लिया। और कहा—तुमलोग घबराओ मत, ये सारे माल तुम्हारे ही होंगे। पर आज इसे छोड़ दो, क्योंकि आज अभी लड़ाई का समय नहीं है।

यों कह कर वह चुपचाप तमाशा देखते रहे और औरंगज़ेब की सारी सेना उस यमराज के सहोदर समान दर्रे में घुस गई।

तब उन्हों ने मानिकलाल को अकेले में ले जाकर कहा कि—"हम इस मोगल के ऊपर बहुतही प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि हमे इस बात का सपने में भी भरोसा न था कि हमलोगों के हाथ ऐसे सुभीते की बात लगेगी, हम ने जो कुछ सोच रक्खा था, वैसा होने पर लड़ाई करके मोगलों का नाश करना

पड़ता. पर अब बिना लड़ाई भिड़ाईही के मोगलों का कचूंदर निकाल डालेंगे। तुम अभी मुबारक को हमारे पास ले आओ, हम उस का यथोचित आदर करेंगे।

हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि मुबारक मानिक लाल के हाथ से अपना दूसरा जन्म पाकर उस के साथ ही उदयपुर आया था। राजसिंह उस की वीरता की बानगी देख चुके थे, इसलिये उन्हों ने उसे अपनीसेना में एक योग्य सेनापति का पद दे दिया था; पर वे मोगल समझ कर उस पर विश्वास नहीं रख सकते थे। उन की ऐसी समझ पर मुबारक मन ही मन बहुत दुखी था, और सोचता था कि 'कौन ऐसा काम मैं करूं, जिस से दयावान महाराना का पूरा यकीन मुझ पर हो जाय' आज मौका देख कर और राना का विश्वासी कृपापात्र बनने के लिये उस ने इस पेंचीले और जोखिम के काम का बोझ अपने सिर लिया था। पर ईश्वर की दया से वह काम उस से पूरा हो गया, जिस का हाल अभी हमारे पाठकों ने पढ़ा है। पाठकों ने समझ ही लिया होगा कि यह मुबारक ही भेस बदले हुए मोगल सौदागर बना था।

आज्ञा पाते ही मानिकलाल मुबारक को महाराना के सामने ले गया। उसे देखते ही राजसिंह ने आदर से उस की बहुतेरी बड़ाई की और कहा—

"तुम जो ऐसे साहस और चतुराई के साथ मोगल सौदागर बन कर मोगलसेना को इस दर्रे में न ले जाते तो बहुतेरे बिचारों की हत्या उठानी पड़ती। और निस्संदेह तुम ने अपने प्रान को हथेली पर रख कर इस जोखिम के काम को पूरा किया, यदि तनिक भी कोई तुम्हें पहिचान लेता तो तुम्हारे प्रानों की उसी समय इतिश्री हो जाती।

मुबारक ने हाथ जोड़े हुए सिर झुका कर कहा—

"महाराज! जो कंबख्त सभों के रूबरू मर चुका है, जिस को सब के आगे गोर दी गई है, उसे कोई पहिचानने पर भी शिनाख्त नहीं कर सकता। बल्कि यों दिल में खयाल करता है कि 'यह हमारी ही खामखयाली है।' बस इसी बुनियाद पर मैंने इतनी दिलेरी खर्च की थी।"

राजसिंह ने कहा—ठीक है, ठीक है, तुम ने निस्संदेह आज वह काम कर दिखाया, जिस का सपना भी हमने नहीं देखा था; अब भी जो हमारा

काम पूरा न हो तो हमारा ही दोष कहा जायगा। अच्छा इस सेवा के बदले में अब जो कुछ पारितोषिक तुम चाहो, वही हम देने को तैयार हैं।

मुबारक ने कहा—"महाराज! तावेदार की बेअदबी मुआफ हो? मैंने मोगल होकर मोगलों की हुकूमत को गारत किया, मैंने मुसलमान हो कर हिन्दुओं के राज्य का रास्ता साफ कर दिया, और एक सच्चा बहादुर हो कर मैंने फरेब और ठगी का काम किया, और मैंने बादशाह का नमक खा कर नमकहरामी का काम किया है; जिस से मैं मौत के सदमे से भी हजार दर्जे बढ़ कर तकलीफ उठा रहा हूं। अब मुझे किसी किस्म के इनाम की खाहिश बाकी नहीं रही, तौभी मैं फक़त एक इनाम आप से चाहता हूं। और वह यही है कि मुझे तोप के मुहं पर रख कर उड़ादेने का आप फौरन हुक्म दें। बस सिवा इस के और मुझे किसी बात की तमन्ना नहीं है।"

उस की बातों को सुन राजसिंह ने अचरज से पूछा—"ऐ! मुबारक! यदि इस काम के करने में तुम्हें इतना कष्ट हुआ तो इसे किया ही क्यों? हम से पहिले तुम ने अपने मन का भेद क्यों न कहा? हम किसी दूसरे को इस काम में लगाते। सुनो! हमारा ऐसा स्वभाव है कि हम किसी को भी इतनी मानसिक पीड़ा नहीं देना चाहते।"

इस पर मुबारक ने मानिकलाल की ओर उंगली उठा कर कहा—"सुनिए, महाराज! इन महात्मा ने मेरी जान बख्शी है बल्कि यों कहना चाहिए कि मुझे दुबारा इस जहान में पैदा किया है; सो इन का बहुत ही हठ था कि 'इस काम का मैं ही अंजाम करूं।' क्योंकि जो मैं इस काम का बोझ न उठाता तो यकीन है कि यह काम इतनी खूबसूरती के साथ कभी अंज़ाम न होता; वजह इस की यह है कि सिवा मोगल के मोगल लोग हिन्दुओं की बात का कभी यकीन नहीं करते और जो मैं अपने जानदेनेवाले की बात टाल देता या न मानता तो यह एहसानफरामोशी का दाग मेरे पाक दिल का दामनगीर होता। इन्हीं सब वजहों से मैं ने इस काम को किया। अब मैं ने पक्का इरादा कर लिया है कि इस नापाक क़ालिब में से अपनी पाकरूह को बहुत जल्द निकाल दूंगा। बस आप मेहरबानी कर के मुझे तोप के मोहड़े पर रख कर उड़ादेने की इजाज़त दे दें; या मुझे बांधकर बादशाह के पास भेज दें या इजाज़त दें तो मैं खुद जिस तरह हो सके मोगल फौज में घुस कर और आप के साथ लड़ कर अपनी जान देदूं।"

सच्चेबहादुर मुबारक की वीरोचित बातों को सुन कर राजसिंह बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हों ने कहा—'अच्छा, आज ठहरो; कल हम तुम को मोगल सेना में जाने की आज्ञा देंगे। बस, बहुत नहीं, केवल एक दिन और हमारे यहां रहो। अब हमें केवल एक बात तुम से और पूछनी है, कि औरंगज़ेब ने तुम्हें किस अपराध में मरवाडाला था?"

मुबारक—वह फाहिशा बात आप के रूबरू कहने लायक नहीं है।

राजसिंह—और मानिकलाल के आगे?

मुबारक—अर्ज़ कर चुका हूं

राजसिंह—अच्छी बात है, बस केवल एक दिन और ठहर जाओ। यह कह कर उन्हों ने मुबारक को विदा किया। इस के बाद मानिकलाल ने उसे अकेले में ले जा कर पूछा—

"क्यों, जनाब! खां साहब! अगर आप की मरने ही की ख़ाहिश थी तो फिर मुझ से शाहज़ादी के पकड़ लाने के लिये आप ने इतनी आर्ज़ू मिन्नत क्यों की थी?"

मुबारक ने कहा—"हज़रत! मुझ से भूल हुई—सरासर ग़लती हुई; अब मैं शाहज़ादी की ख़ाहिश नहीं रखता, उसे ले कर क्या करूंगा? हां मैंने दिल में बेशक यह सोचा था कि जिस शैतान की बच्ची ने मुझे मेरे प्यार के एवज में सांप से कटवाकर मरवाडाला था, उसे उस के उस जुल्म की भरपूर सज़ा दूं; मगर अफसोस है कि इनसान जिस चीज़ की आज ख़ाहिश करे, कल उसी पर उस की नफरत हो जाती है। मैं अब मरूंगा—जरूर मरूंगा—तो फिर ऐसी हालत में शाहज़ादी ने अपने किए का नतीजा पाया या न पाया, इस बात से मुझे अब क्या निस्बत है? क्योंकि मरने पर फिर तो मैं उस के नतीजे को देखने के वास्ते लौट कर आने से रहा!"

मानिक लाल—तो फिर अब यदि आप की ज़ेबउन्निसा से कोई मतलब न हो तो मैं बादशाह से कुछ नज़राना ले कर उसे बादशाह के हवाले कर दूं?

मुबारक—मगर, जनाब! और एक मर्तबा उसे देखने की मेरी ख़ाहिश है, मैं एक बेर उस से पूछना चाहता हूं कि 'शाहज़ादी! अब भी दुनियां

में नेक और बदनीयती पर तुम ने कुछ ग़ौर किया है, या नहीं ?' एक मर्तबा मैं उस की ज़बान शीरीं से यह सुना चाहता हूं कि वह मुझे मुर्दे के एवज में ज़िन्दा देख कर क्या कहती है। और एक वेर यह भी जान लेने की ख़्वाहिश है कि मुलाक़ात होने पर वह मुझ से क्या क्या कहती है।

मानिक लाल—तो, क्यों साहब ! आप अभी तक उस को दिल से प्यार करते हैं ?

मुबारक—ज़रा भी नहीं, फ़क़त एक मर्त्तबा उसे देखना भर चाहता हूं। बस आप मेरी इस आख़िरी आरज़ू को ज़रूर पूरी करें आप से मैं यही भीख चाहता हूं।

आठवां खंड।

आग में कौन कौन जला?

पहिला परिच्छेद।

बादशाह का जलना आरंभ हुआ।

इधर बादशाह बड़े पेंचपांच में जा फंसा। उस की फौज के उस दर्रे में घुसने के थोड़ी ही देर बाद सूरज डूब गया, तौभी कोई उस दर्रे के दूसरे सिरे या मुहाने तक न पहुंचा। यहांतक कि दूसरे मुहाने की कोई ख़बर ही बादशाह को नहीं मिलती थी कि इस ख़ौफनाक दर्रे का कितनी दूर पर दूसरा मुहाना है। सांझ होते ही उस संकरीले दर्रे में गहरा अंधेरा छागया। सारी फौज रौशनी कर के अपना रास्ता तय करती, पर रौशनी का कोई सरंजाम ही साथ न था। केवल बादशाह और बेगमों के हलके के पास मामूली रौशनी हुई, पर और सारी फौज गहरे अंधेरे ही में डूबी रही। तिस पर वह भयानक दर्रा संकरीला तो था ही, इस के अलावे उस में इतने पत्थर के ढोंके क़दम क़दम पर पड़े थे कि जिस से रास्ता तय करने में लोगों के प्रान ओठों पर आगए थे। उन ढोंकों से क़दम क़दम पर घोड़े टक्कर खाने लगे, कितने घोड़े सवार के साथ ही उस टक्कर की चोट से गिर गिर गए, और पीछे से आते हुए सवारों के घोड़ों के नीचे पड़ कर दरकचर गए, यों बहुतेरे बिचारे सवार और घोड़ों के प्रानपखेरू कूच कर गए। कितने ढोंके हाथी के पैरों को घायल करने लगे, जिस की पीड़ा से हाथी भड़क भड़क कर आगे पीछे के लोगों को कुचलने और ऊधम मचाने लगे। घोड़सवार औरतें घोड़े से गिर गिर कर घोड़े और हाथियों के पैरों तले पिस पिस कर तड़पने, चिल्लाने, कराहने और मरने लगीं। डोले ढोनेवालों के पैर हाथी घोड़ों के पैरों से चुटीले और लोहूलोहान होने लगे। और पैदल फौज तो एक क़दम आगे बढ़ ही नहीं सकती थी, क्योंकि पैर फिसलने और क़दम क़दम पर ढोंकों की चोट खाने से उन के पैर बेकाम हुए जाते थे। यह दुर्दशा देख

कर बेचारे आफत के मारे औरंगजेब ने लाचारी में पड़ कर रात के वक्त फौज का चलाना बंद किया और वहीं पर पड़ाव डालने की आज्ञा दी।

आज्ञा तो उस ने दी, पर पड़ाव डालने या तंबू तानने की उस संकरीले दर्रे में जगह कहां थी? बड़ी बड़ी कठिनाइयों से केवल बादशाह और बेगमों के लिये दो एक छोटे मोटे तंबू किसी किसी तरह टेढ़ेमेढ़े खड़े किये गए। इस के अलावे और सारे फौजवाले जो जहां थे, वहीं ज्यों के त्यों ठिठक रहे! सवार घोड़ों की पीठ पर हाथीवाले हाथियों पर और बिचारे प्यादे अपने पैरों पर अपनी देह का बोझ डाल कर रो रो कर रात बिताने लगे और कोई कोई अगल बगल वाले खड़े पहाड़ की जड़ में जो कहीं कोई थोड़ी बहुत जगह पा गए तो वहीं आलथी पालथी मार या पैर लटका कर बैठ गए। कारण यह था कि ये अगल बगल वाले पहाड़ इतने बीहड़ और खड़े थे कि उन पर चढ़ने का इरादा करना ही मौत का सामना करना था। इसी से बहुतों ने उस पहाड़तली में बैठने, टिकने, सोने या आराम करने की कोई जगह न पाई।

इस बिपद के ऊपर दूसरी बिपद यह दामनगीर हुई कि फौज के साथ रसद या खाने पीने की कोई चीज़ें न थीं। क्योंकि उन बिचारों के साथ जितनी रसद थी, वह सब तो राजपूत लोग लूट ही ले गए, फिर अब ये मुगलबच्चों के पास क्या धरा था कि जिसे खाकर अपने जले पेट की आग बुझाते? जिस भयानक दर्रे में फौज पहुंची हुई थी, उस में खाने पीने की और चीज़ें तो क्या घोड़ों के लिये घास पात भी मयस्सर न थे। मतलब यह कि सारे दिन की इतनी मिहनत और तकलीफ उठाने पर भी किसी ने एक दाना भी न पाया कि जिसे मुंह में डाल कर सब्र करता। दूसरों की तो बात दूर रहे दिल्ली के शाहंशाह दीनदुनियां के बादशाह और उन की प्यारी सुकुमारी बेगमों के गले से भी इस दर्रे में आज की काली रात के वक्त रोजे की बला आ लपटी और इस बिना बादल की बिजली से सब के छक्के छूट गए।

इतने ही में औरंगज़ेब ने उदयपुरी और ज़ेबउन्निसा के लुट जाने की ख़बर सुनी; बस, सुनते ही वह आग बगोला बन गया। अगर वह अकेला अपनी अनगिनत फ़ौज के सिपाहियों का गला काट सकता होता तो आज

उस की सारी फ़ौज उसी के खंजर तले दो टुकड़े की हुई दिखलाई देती, पर इस समय तो उस की यह दशा थी कि जैसी जहरीले दांत तोड़े हुए सांप की या पिंजरे में बन्द किए हुए सिंह की होती है। बस, वह उस समय उतनाहीं 'फों''फां' कर सका, जितना कि सिंह, सिंहनी को जंगले में बंद देख कर गर्जता है।

आधी रात के समय, जब कि दर्रे में पड़ी हुई बादशाही फ़ौज में पूरा सन्नाटा छाया हुआ था, उस फौजवालों को ऐसी आहट लगी कि मानो बहुत दूर पर पहाड़ के ऊपर के पेड़ काटे जाते हों। पर जब कि उन सभों ने इस आवाज का असली मतलब न समझा तो यों अपने धड़कते हुए दिल को तसल्ली दी कि यह सब भूत प्रेत या आसेब के खिलवाड़ होंगे।

दूसरा परिच्छेद।

इस जलने में बादशाह को बड़ी जलन मालूम हुई।

सबेरा होते ही औरंगज़ेब ने फौज के कूच का हुक्म दिया, जिसे सुनते ही वह बड़ी भारी फौज—तोप ले कर चतुरंगिनी—दर्रे के दूसरे मुहाने पर पहुंचने के लिये बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ी। सभी कोई भूख प्यास के मारे तड़प रहे थे, और इस मौत के दादे दर्रे से बाहर निकलने ही पर खाने पीने का बन्दोबस्त हो सकता है, यही सोच कर सभी लोग सिलसिला छोड़ कर आगे दौड़ने लगे। औरंगज़ेब उदयपुरी और ज़ेबउन्निसा को छुड़ा कर सारे उदयपुर को फूंक डालने के लिये अपने गुस्से की आग में आप ही जलभुन कर खाक हुआ जाता था। यहां तक कि एक एक छन की देरी भी उस से नहीं सही जाती थी। बड़ी दौड़ा दौड़ करने पर किसी तरह मोगल सेना दर्रे के मुहाने पर पहुंची, पर वहां पहुंच कर उस ने क्या देखा कि हमलोगों (मोगलों) के नेस्तनाबूद करने का पूरा पूरा बन्दोबस्त दुश्मनों की ओर से कर दिया गया है। अर्थात् दर्रे का मुहाना बन्द है। क्योंकि राता राती अनगिनत पेड़ों को काट काट कर राजपूतों ने पहाड़ के ऊपर ही से दर्रे के मुहाने पर गिरा कर बाहर निकलने की राह एक दम से बन्द

कर रक्खा था। पहाड़ सरीखे बड़े बड़े कटे पेड़ डाल पत्त के साथ दर्रे के मुहाने को इस प्रकार से रोक रहे थे कि हाथी घोड़े और प्यादों की बात दूर रहे, स्यार कुत्ते भी उस राह से नहीं निकल सकते थे।

यह देखते ही मोगल सेना में बड़ा भारी कोहराम मचा; उस समय कोमलांगी औरतों (विशेष कर बेगमों) के पुक्का फाड़ कर रोने की आवाज सुन कर औरंगज़ेब का वज्र सरीखा कलेजा भी कांप उठा।

फ़ौज के रास्ते के साफ करनेवालों का गोल फौज के आगे आगे था, पर यह फ़ौज तो उलटी घूम कर इस दर्रे में घुसी थी, इस लिये राह साफ करनेवाले लोग पीछे पड़ गए थे। बस पहिले तो औरंगज़ेब ने राह साफ करनेवालों को बुलाने का हुक्म दिया पर उन सभों के आगे आने में बहुत ही देर लगती और उन सभों के आने का आसरा देख कर देर करने में शायद वह दिन भी उसी मौत सरीखे दर्रे में बिताना पड़ता और उस दिन भी आफत के मारे बेचारे मोगलों को बिना रमज़ान के ही रोज़ा रखना पड़ता; इस लिये औरंगज़ेब ने दूसरा हुक्म दिया कि "पैदल फौज—और भी जो कोई कर सके—इकट्ठी हो कर इस पेड़ की दीवार पर चढ़ जाय और फिर इन दरख्तों को दूसरी ओर हटा कर राह साफ करे और इस काम में मदद लेने के लिये हाथियों से भी काम ले" यह सुनते ही कई हज़ार सिपाही और सैकड़ों हाथी पेड़ की दीवार को तोड़फोड़ करने के लिये दौड़े पर ज्योंहीं वे सब पेड़ की दीवार के पास पहुंच होंगे, त्योंहीं पहाड़ के ऊपर से सावन भादों की झड़ी के समान पत्थरों की वर्षा होने लगी, जिस से उन सभों में से किसी के हाथ, किसी के पैर, किसी के कान, किसी की नाक, किसी की आंख, किसी के सिर और किसी के कोई अंग भंग होने लगे। किसी का सिर कीचड़ के लोंद के समान हो गया और कोई चने की तरह दरकच गया। हाथियों में भी किसी के माथे, किसी की सूंड किसी के दांत किसी की पीठ और किसी के पैर वा कान टूट गए, जिस से वे सब भयानक चिग्घाड़ करते करते पैदल फौज को पैरों तले कुचलते हुए भाग चले, जिन की भयावनी रपेट चपेट में औरंगजेब की अनगिनत सेना तरुत तबाह हो कर दोज़ख या बिहिश्त की सैर की रवानः हुई। सभोंने सिर ऊंचा करके ऊपर देखा कि पहाड़ की चोटी पर हजारों राजपूत चींटी की भांति पांती बांधकर

पत्थर के ढोंके बरसा रहे हैं। और सुनिये, उन मोगलों में जो पत्थर की मार से न मरे या न घायल हुए, वे राजपूतों की गोली से मारे गए मतलब यह कि औरंगज़ेब के सिपाही छन भर भी उस पेड़ वाली अजर अमर दीवार के पास न ठहरने पाए।

यह सुन औरंगज़ेब ने सेनापतियों को झिड़क कर फिर पेड़वाली दीवार के तोड़ने का हुक्म दिया। तब फिर 'दीन दीन' चिल्लाते हुए मोगलों ने उस पर हमला किया, और फिर भी राजपूतों के पत्थर और गोली के तूफान के आगे उन सभों की वही गत हुई, जो कि आंधी के झपेटे में ऊख के खेत की होती है। बस योंही बारंबार हमला करने पर भी मोगल सेना उस पेड़ की दीवार के पास भी न पहुंच सकी, तोड़ना तो दूर रहा।

तब लाचार हो कर औरंगज़ेब ने अपनी फौज को उसी ओर लौट चलने का हुक्म दिया, जिधर से फौज दर्रे में धँसी थी। सारी फौज भूख प्यास के मारे तलमला रही थी, औरंगज़ेब भी सारी उम्र में केवल आज ही भूख प्यास की तकलीफ से घबरा उठा था, और बेगमों की दशा तो सब से ख़राब थी। पर सिवा उसी ओर लौटने के जिधर से आना हुआ है, दूसरा उस समय उपाय ही क्या था? क्योंकि उस खड़े पहाड़ पर चढ़ने का कोई उपाय ही नहीं था। लाचार सभी को लौटना पड़ा।

लौटी हुई फौज के साथ ठीक दोपहर के समय औरंगज़ेब दर्रे के उस मुहाने पर पहुंचा, जिधर से उस में घुसा था; पर आकर उस ने देखा कि उस मुहाने पर भी भयावनी मौत मुहं बाए सारी मोगल सेना को चबा जाने के लिये खड़ी है। क्योंकि उस मुहाने का मोहड़ा भी उसी भांति पहाड़ के समान पेड़ों की दीवार से बंद कर दिया गया था, उस से बाहर होने का कोई भी उपाय न था, और उस के ऊपर भी पहाड़ पर अनगिनत राजपूत पांती जोड़े हुए खड़े थे।

पर बिना इस मौत के बच्चू दर्रे से निकले भी तो मौत के पंजे से छुटकारा न था। इसलिये सब मोगल सेनापतियों को बटोर कर औरंगज़ेब ने खुशामद, आज़िज़ी, बढ़ावे और डर को दिखला कर सभों से इस बात की कसम ले ली कि आज कोई भी अपनी जान की कुछ पर्वा न कर के इस बिल से निकलने की भरपूर कोशिश करने से बाज न आवेगा।

निदान मोगल सिपहसालार लोगों ने फौज के साथ उस पेड़वाली दीवार पर गहरा हमला किया। इस बार उन सभों को कुछ सुभीता भी मिला, क्योंकि राह साफ करनेवाली फौज भी आगे मौजूद थी। मोगल लोग अपनी जान को तुच्छ कर के उस मुहाने को रोके हुए पेड़ों को काटने और अलग करने लगे। पर यह काम छनभर से ज्यादे वे न करने पाए होंगे कि पहाड़ की चोटी पर से गोली और पत्थर की ऐसी घनघोर वर्षा होने लगी कि जिस में मोगल सेना भादों की झड़ी से धान के खेत की भांति डूब गई।

इस के अलावे दूसरी यह भी बड़ी भारी विपद थी कि उसी दर्रे के सामनेवाले पहाड़ पर राजसिंह की सेना का पड़ाव पड़ा हुआ था। उन्हों ने दूरही से मोगल सेना को लौटते देख कर दर्रे के मुहाने पर (बारह) तोपें लगा दी थीं।

राजसिंह की तोप वज्र की भांति घहरा उठी। और पेड़वाली दीवार को छेदता हुआ गोला मोगल सेना में पहुंच हाथी, घोड़े, सिपाही और सेनापतियों की धज्जियां उड़ाने लगा। यह बिपत देख मोगल सेना पिछले पैर दर्रे में पीछे की ओर हटा उस तरह सिमट कर लुक गई जैसे जलती आग के भय से डर कर ज़हरीला सांप गेड़ुरी मार कर बिल में सटक जाता है। यह दशा देख शाहंशाह बादशाह ने हीरे जड़े हुए सफेद ताज को सिर से उतार कर दूर फेंक दिया, और दोजानू बैठ पहाड़ के कंकड़ को उठा कर उस से अपना सिर पीट डाला। राम! राम! इस समय बेचारा दिल्ली का बादशाह अपनी फौज के सहित राजपूत घूसों (१) के आगे चूहदानी में फंसे हुए मूंसे की दशा को पहुंच गया था। इस समय यदि वह एक चूहे की भी खुराक पाजाय तो उस की जान बचे। तब उस भारतवर्ष के शाहंशाह ने अछता पछता कर और लाचारी में फंस कर राजपूत कुलबाला निर्मलकुमारी को अपने प्रान के बचानेवाली समझ कर उस के दिए हुए कबूतर को उड़ा दिया।

---

(१) एक तरह का जानवर, जिसे लोग घूंस कहते हैं।

तीसरा परिच्छेद ।

उदयपुरी का जलना प्रारंभ हुआ ।

निर्मलकुमारी ने उदयपुरी बेगम और शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा को एक अच्छी जगह उतार कर महारानी चंचलकुमारी को जा कर प्रणाम किया और सारा हाल उन से कह सुनाया । चंचलकुमारी ने सब बातें सुन कर पहिले उदयपुरी बेगम को अपने सामने बुलाया, और उस के आने पर उसे अलग चौकी पर बैठने की आज्ञा दे कर उस के सन्मान करने की इच्छा से आप अपनी गद्दी से उठ खड़ी हुई । उदयपुरी बहुत ही ग़मगीन और अदब के साथ चंचलकुमारी के सामने आई थी, पर अब उस ने उन की सज्जनता देख कर अपने मन में समझा कि, " नाचीज काफिर हिन्दू रानी मेरे दहशत से ही मेरी इज्जत के ख़याल से उठ खड़ी हुई ।" यह सोच कर हज़रत उदयपुरी बेगम साहिबा ने फर्माया—

" एं ! क्यों तुम लोगों को शामत आई है ? क्यों मोगलों के हाथ से अपनी मौत बुला रही हो ?"

इस पर चंचलकुमारी ने मुसकुराकर कहा—"हमलोग मोगलों से मौत नहीं चाहतीं । वे लोग वह चीज़ (मृत्यु) हमलोगों को देने के लिये ही यहां तक आए हैं कि क्षत्रियों को दे आवें । पर यह उन की सरासर भूल है, क्योंकि उन लोगों को समझना चाहिए कि हिन्दू—धर्मात्मा हिन्दू लोग-मुसलमान का दान नहीं लेते ।

इस पर उदयपुरी ने घमंड के साथ कहा—उदयपुर के घूंस लोग हमेशः से मुसलमानों के हाथ से इस बख़्शिश (मृत्यु के दान) को पाते आते हैं । सुलतान अलाउद्दीन का जिक्र छोड़ देती हूं—मोगल बादशाह अकबर और उन के शाहज़ादे के हाथ से भी राना राजसिंह के खान्दान के काफ़िर लोग इस बख़्शिश को बराबर पाते आए हैं ।

चंचल—जनाब बेगम साहिबा! आप यहां पर जरा सी भूल करती हैं; सुनिए! उदयपुर के बीर क्षत्रियों ने उस (मृत्यु) को मुसलमानों से दान स्वरूप में नहीं, बरन कर्ज़ के तौर पर लिया था, सो अकबर शाह के कर्ज़ को तो राना प्रताप सिंह अपने हाथ से चुकता कर ही गए, और आप के ससुर (शाहजहां) के कर्ज़ को अब हमलोग (राजसिंह) अदा कर देना चाहते हैं। उस कर्ज़ की पहिली किश्त लेने के लिये आप यहां पर लाई गई हैं। सुनिए! हमारी चिलम ठंढ़ी हो गई है, इसलिये मेहरबानी कर के जरा आप अपने नाजुक हाथों को तकलीफ दे कर तम्बाकू तो भर दें।

हमारे पाठकों को समझना चाहिए कि पहिले चंचलकुमारी ने जिस प्रकार उदयपुरी बेगम का आदर किया था, यदि वह (उदयपुरी) भी उसी भांति अदब कायदे को जगह देती तो निश्चय जानिए कि उस को चंचल से ऐसा अपमान सपने में भी न सहना पड़ता, पर उस कम्बख्त ने घमंड के साथ ऐसी कड़ी कड़ी बातें कहीं कि जिसे सुन कर तेजस्विनी स्वच्छा की हठीली चंचलकुमारी के हृदय में अभिमान की तरंगें उठने लगीं, जिस का फल हाथों हाथ उदयपुरी को मिला। तंबाकू भरने का नाम सुनते ही उसे तंबाकू भरने के लिये जो न्योते की चीठी गई थी, उस की याद आई; जिस के याद आते ही उस के सारे शरीर से पसीने बहने लगे; पर इतने पर भी उस बेहया ने घमंड से फूल कर फिर कहा—

"ऐं! क्या बादशाह की बेगमें तम्बाकू भरती हैं?"

चंचल—सुनो! जब तुम बादशाह की बेगम थीं, तब शायद चिलम न भरती होगी, परन्तु इस समय तो तुम हमारी बांदी हो। बस हम हुक्म देती हैं, कि चटपट हमारी चिलम भरो।

यह सुन उदयपुरी ने रो दिया। सो कुछ दुःख से नहीं, बरन गुस्से से। फिर कहा—

"क्यों जी! तुम्हारा इतना बड़ा मक़दूर कि तुम आलमगीर बादशाह की बेगम से तंबाकू भरने के वास्ते कहती हो?"

चंचल—तुम ज़रा होश की दवा करो और शऊर से बोलो। हम को तो इस बात का पूरा भरोसा है कि कल तुम्हारा आलमगीर बादशाह भी आ कर महाराना की चिलम भरेगा; पर जो उसे चिलम भरने का तरीका न मालूम होगा तो कल तुम उसे यह हिकमत सिखला देना, इसलिये आज तुम चिलम भरना सीख रक्खो।

यों कह कर चंचलकुमारी ने अपनी दासियों को आज्ञा दी कि—" इस बांदी को ले जाकर इस से चिलम भरवा लाओ।"

पर उदयपुरी उठती न थी, तब दासियों ने घुड़क कर कहा—" उठो, चिलम उठाओ।"

तब भी उदयपुरी न उठी, तब एक दासी उस का हाथ थाम कर उसे उठाने के लिये आगे बढ़ी, इस बेइज्ज़ती को देख कर वह शाहंशाह आलमगीर की प्यारी बेगम कांपती हुई चिलम उठाने चली पर चिलम के पास भी न पहुंचने पाई; क्योंकि चौकी से उठते ही एक पैर बढ़ाते बढ़ाते थर्रा कर महलवाले संगमर्मर के फ़र्श पर गिर गई। यदि दासी उसे न सम्हालती तो वह बहुत चोट खाती, पर बच गई, चोट न आई। चोट तो न आई पर पत्थर के फर्श पर लेटतेही वह बेहोश हो गई।

तब चंचलकुमारी की आज्ञा से वह दासियों के द्वारा उस सुहावने महल में पहुंचाई गई जहां उस के लिये अमूल्य शय्या पर बहुमूल्य मखमली गद्दे बिछ रहे थे। वहां लाई जा कर वह उसी पलंग पर लिटा दी गई और दासियां उस की सेवा टहल करने लगीं। थोड़ी ही देर में वह होश में आई, पर फिर उसे किसी के हाथ से बेइज़्ज़त न होना पड़ा; क्योंकि चंचल ने सभों पर पूरी ताकीद कर दी थी कि कोई भूल कर भी रत्ती भर भी बेगम का अनादर न करे। यहां तक जैसे खान, पान, सेज, बिछावन आदि चंचलकुमारी के काम में आते थे, उसी तरह सब चीज़ें बेगम के भी काम में लाई जायं; इस बात की पूरी पूरी तामीली करने के लिये उस ने निर्मल को आज्ञा दी।

निर्मल ने कहा—आप की सब आज्ञा पालन की जायगी, पर उतने आदर से भी ये सब प्रसन्न होनेवाली आसामी नहीं हैं।

चंचल—क्यों ? अच्छा, और क्या करना चाहिए, किस चीज़ से ये सब राज़ी होंगी ?

निर्मल—वह चीज़ इस राजपुरी में नहीं मिल सकती।

चंचल—क्या, शराब ! छिः अच्छा, जब वह शराब मांगे तो गोबर का शर्बत बना कर देना।

निदान ऐसा हुआ भी ; अर्थात् उदयपुरी सेवा टहल और खातिर तवाज़ः से खुश हुई, पर रात के समय जब उस के अमल पानी का समय हुआ, उस समय उस ने निर्मलकुमारी को बुला कर और आर्ज़ू मिन्नत कर के कहा कि—"इमलीबेगम ! ज़रा शराब इर्शाद फर्माइए।"

निर्मल ने "देती हूं" कह कर राज्य वैद्य को चुपचाप खबर दी। वैद्य जी ने एक बूंद दवा शीशी में बंद कर के निर्मल के पास भेज दी और यह कहला दिया कि "शर्बत बना कर उस में यह एक बूंद दवा मिला दी जाय और शराबी को शराब कह के पिलाई जाय ; वह जरा भी न पहिचानेगा कि यह शराब नहीं, कोई दूसरी चीज है।"

निर्मल ने वैसा ही किया। उदयपुरी उस शर्बत या नक़ली शराब को पीकर बहुत ही खुश हुई और बोली—"इमली बेगम ! खूब ! भई तुम्हारी जहां तक तारीफ़ की जाय थोड़ी है; वाह क्या ही लज़ीज़ शराब पिलाई ! क्यों न हो !!!" और थोड़ी ही देर में वह नशे में गाफ़िल हो कर गहरी नींद में सो गई।



चौथा परिच्छेद।

ज़ेबउन्निसा का जलना प्रारंभ हुआ।

ज़ेबउन्निसा एक सुहावने महल में बहुमूल्य पलंग पर बैठी थी और दासियां उस की सेवा टहल कर रही थीं। निर्मलकुमारी भी दो एक बार उस की खबर लेती थी। धीरे धीरे ज़ेबउन्निसा ने उदयपुरी के मान भंजन की सारी कहानी सुनी। सुनते ही वह अपने लिये सोच करने लगी।

अंत में उसे भी निर्मलकुमारी चंचल के पास ले गई। उस समय वह (ज़ेबउन्निसा) साधारण भाव (नविनीत-नगर्वित) से चंचल के सामने गई। पर यह बात उस ने अच्छी तरह अपने पल्ले बांध रक्खी थी कि "मैं इस बात को हर्गिज़ न भूलूंगी कि मैं शाहंशाह आलमगीर की लड़की हूं।"

चंचलकुमारी ने बड़े आदर से उसे एक मखमली कुर्सी पर बैठाया और तरह तरह की बात करनी प्रारंभ की। ज़ेबउन्निसा भी सुजनता के साथ उस की बातों का जवाब देती थी। आपस में बैर बिरोध या गुस्सा उपजानेवाली बातों को उन दोनों में से किसी ने भी न कहा। अंत में चंचलकुमारी ने अपनी ही तरह उस की सेवा टहल करने की आज्ञा अपनी दासियों को दी और उसे अतर और पान दिया।

पर पान ले कर वह उठ कर बिदा न हुई, बरन बोली—"महारानी! मुझे आप ने क्यों यहां पर तलब किया है? इस अम्र को मैं सुन सकती हूं?"

चंचल—हां! यह बात आप से नहीं कही गई, और इस के न कहने से भी काम चल सकता है। खैर, सुनिए—"किसी ज्योतिषी (नजूमी) के कहने से आप यहां लाई गई हैं। आज आप अपने सोनेवाले कमरे में अकेली सोइएगा और उस के दर्वाज़े खुले रहने दीजियगा। घबराइयेगा मत, पहरे वालियां आड़ में खड़ी खड़ी पहरा देंगी, आप के साथ किसी तरह का खोटा बर्ताव न किया जायगा। ज्योतिषी ने कहा है कि आप आज रात को किसी

तरह का सपना देखेंगी; यदि देखें तो कल उस का खुलासा हाल हम से कहियेगा, यही आप से अर्ज़ है।"

यह सुन फ़िक्र में डूबी हुई ज़ेबउन्निसा चंचलकुमारी से बिदा हुई। निर्मलकुमारी की मुस्तैदी से उस (ज़ेब०) के खाने, पीने, सेज बिछावन आदि की वैसी ही छटा रही, जैसी उस के लिये दिल्ली के रंगमहल में रहती थी। वह सोई तो सही, पर उसे नींद न आई। वह चंचलकुमारी के आज्ञानुसार दर्वाज़े खोल कर अकेली ही सोई थी, क्योंकि वह डरती थी कि कहीं "हुक्म अदूली करने पर चंचलकुमारी मेरी भी उदयपुरी की सी बेइज़्ज़ती न करे।" पर अकेली सारी रात द्वार खोले हुए सोने में भी वह बहुत हिचकिचाती थी; उस ने मन में सोचा कि "यह भी मुमकिन है कि पोशीदः तौर से मेरे ऊपर कोई ज़ुल्म किया जाय; इसी वास्ते शायद ऐसा बंदोबस्त किया गया होगा।" इस लिये उस ने पक्का इरादा कर लिया कि "चाहे कुछ भी हो, पर नींद में गाफ़िल न होऊंगी, होशियार रहूंगी।" पर सारा दिन बड़े कष्ट में बीता था, इस लिये उस के न सोने की प्रतिज्ञा करने पर भी नींद का झोंका आ आ कर उस पर हमला करने लगा। पर बात यह है कि जो न सोने की प्रतिज्ञा करता है, नींद का झोंका आने पर वह भी बीच बीच में चिहुंक था जाग उठता है। उसे तंद्रावस्था (नींद की पहली चढ़ाई) में भी होश रहता है कि मानों मैं न सोऊंगा। ज़ेबउन्निसा भी बीच बीच में इसी तरह ऊंघतीथी, पर बीच बीच में चिहुंक उठने से उस की औंघाई टूट जाती थी। तंद्रा दूर होते ही उसे अपनी अवस्था का ज्ञान हो आता था। कहां दिल्ली की बादशाहज़ादी और कहां उदयपुर की महारानी की बंदिनी (कैदी)! कहां मोगल बादशाहत की रंगभूमि की प्रधान रूपक खेलनेवाली (अभिनेत्री) मोगलसाम्राज्य के आकाश का पूर्णचंद्र, तख़्तताऊस का सब से बढ़ कर चमकीला रत्न, काबुल से ले कर बिजयपुर, गोलकुंडा आदि तक जिस के बाहुबल से शासित था—उसी की

दहिनी बांह, और कहां आज पहाड़ी कंदरा में ठूंसी हुई उदयपुर के पिंजरे में मूपे के समान ठूंसी हुई रूपनगर वाली घूंस सरीखी एक तुच्छ स्त्री की एक बंदिनी !!! हिंदू के घर में छूने योग्य हाय ! नहीं, ऐसी शूकरी! हिन्दू दासियों के पैरों को कलंकित करने वाली कीट !!! मर जाना क्या इस की अपेक्षा अच्छा नहीं है? क्यों नहीं अच्छा है? जैसी मौत उस ने अपने प्रान से भी बढ़ कर प्यारे मुबारक को दी, वह क्या अच्छी नहीं हो सकती? क्योंकि जो चीज़ उस ने मुबारक को दी, वह अनमोल है; पर तिस पर भी क्या वह खुद भी वैसी मौत के लायक है? "हाय, मुबारक! मुबारक! मुबारक! तुम्हारी बेहद बहादुरी क्या एक अदने सांप के ज़हर को न जीत सकी? और तुम्हारी वह सलोनी सुहावनी सूरत भी निगोड़े सांप के जहर से स्याह हो गई? तो इस समय क्या उदयपुर में वैसा सांप नहीं मयस्सर है कि जो इस काली नागिन को भी काट खाय? क्या इनसान के कालिब वाली काली नागिन सांप के कालिबवाली काली नागिन के डसने से न मरेगी? हाय! मुबारक! मुबारक! मुबारक! तुम एक बार इनसान के कालिब में अपनी रूह रख कर मुझे दिखलाई दो और काली नागिन से मुझे एक मर्त्तबः कटवाओ, क्योंकि मैं देखना चाहती हूं और तुम भी देखो कि उस के काटने से मैं मरती हूं या नहीं!"

ठीक इन्हीं बातों को सोचती हुई शाहज़ादी ने मानो सचमुच इनसान के कालिब में मुबारक को देखने के लिये अपनी आंखें खोलीं। और देखा कि सामने इनसान के चोले में मुबारक खड़ा है। देखते ही वह ज़ोर से चिल्ला और आंखें मूंद बेहोश हो गई।

पांचवां परिच्छेद।

आग में ईंधन का डालना—जलन बढ़ी।

दूसरे दिन जब ज़ेबउन्निसा पलंग से नीचे उतरी, तब वह चिन्हाई नहीं

पड़ती थी। एक तो पहिले ही से वह (मुबारक के मरवाने से) काहिल, सुस्त, ज़र्द, और बादल की ओट में पड़ी हुई चांदनी सरीखी हो रही थी, तिस पर आज तो न जाने उसे और भी कुछ हो गया, यह जान पड़ने लगा। दिनरात आग के सामने रहने से आदमी की जैसी सूरत हो जाती है, चिता पर चढ़ कर, पर बिना जले ही केवल धूएं और गर्मी से अधजली हो कर उस पर से उतर आई हुई औरत की जैसी सूरत हो जाती है, ज़ेबउन्निसा भी आज वैसी ही दीखने लगी। वह बेचारी छिन छिन में भस्म हुई जाती थी।

लिबास पोशाक के पहिरे बिना भी नहीं बनता था, इसलिये दिल के कबूल न करने पर भी उसने अपनी पोशाक पहिनकर कायदे और वक्त की पाबंदी कायम रखने के लिये कलेऊ किया। फिर वह पहिले उदयपुरी से भेंट करने के लिये उस के पास गई और जा कर देखा कि वह अकेली बैठी हुई है और उस के आगे कुमारी मेरी की तस्वीर और एक ईसामसीह का क्रूस रक्खा हुआ है। बहुत दिनों से वह (उदयपुरी) ईसामसीह और उन की माता मेरी को एक तरह से भूलही गई थी, पर आज आफ़त में पड़ कर उसे उन की याद आई। ईसाइयों के चिन्ह की भांति ये दोनों चीज़ें वह साथ रखती थी, सोई वर्षा के समय दुखिया लोगों के पुराने छाते के समान आज ये दोनों चीज़ें निकाली गईं। ज़ेबउन्निसा ने देखा कि उदयपुरी की आंखों से चौधारे आंसू बह रहे हैं, बराबर बूंद पर बूंद, फिर बूंद फिर बूंद पर बूंद; योंही लगातार मोती की लड़ी के समान आंसू उस के गोरे गोरे गुलाबी गालों पर ढलक ढलक कर बह रहे थे। ज़ेबउन्निसा ने आज के पहिले उदयपुरी को इतनी सुन्दर कभी नहीं देखा था, जैसी कि वह आज रोती हुई देख पड़ती थी। वह सचमुच बहुत ही हसीन थी, पर गरूर, ऐय्याशी, और डाह की जलन से सदा उस की अद्वितीय सुन्दरता पर स्याही का पालिस फिरा रहता था, पर आज आंसुओं के रेले से वह स्याही बह गई थी, और

उस के अलौकिक रूप की पूरी चंद्रकला की चांदनी फैल रही थी।

ज़ेबउन्निसा को देख कर उस ने अपने दुख की कहानी कह सुनाई, उस ने कहा—

"आह! मैं पहिले बांदी ही थी, बांदी ही के दर से बेंची भी गई थी, तो फिर मैं हमेशाः बांदी ही क्यों न रही? मेरी क़िस्मत ने बादशाहत के मज़े लूट कर फिर पलटा खा कर मुझे यह दिन दिखाया?"

यों कह फिर उस ने ज़ेबउन्निसा के मुंह की ओर ताक कर कहा—"ऐं! तुम्हारी हालत इतनी बदतर क्यों हो रही है? कल तुम्हारे ऊपर क्या क्या बीता? क्या तुम्हारे ऊपर भी हरामज़ादे क़ाफ़िरों ने जुल्म किया?"

ज़ेबउन्निसा ने लंबी सांस लेकर कहा—

"क़ाफ़िरों का क्या मक़दूर! लिहाजा, जो कुछ किया, अल्लाह ने।"

"खुदा की मर्जी बग़ैर तो कुछ भी नहीं होता, मगर क्या हुआ है, मैं उस अहवाल को सुन सकती हूं?"

ज़ेब०—मैं अब उस बात को ज़बान पर नहीं ला सकती, पर यह वादा करती हूं कि मरने के वक्त बतलाती जाऊंगी।

उदयपुरी—खैर, जो हो! खुदा इन क़ाफ़िर राजपूतों को जहन्नुम-रसीदः करे।

ज़ेब०—इस में राजपूतों का कोई क़सूर नहीं है।

इतना कह कर वह चुप हो गई, उदयपुरी भी कुछ न बोली। फिर ज़ेब-उन्निसा ने उस से चंचलकुमारी से भेंट करने के लिये रुख़सत मांगी।

उदयपुरी ने कहा—"क्यों? क्या उस मग़रूर ने तुम को तलब किया है?"

ज़ेब०—नहीं।

उदय०—तो फिर हलकी हो कर उस के साथ मुलाक़ात न करो। ख़याल करो, तुम बादशाह की लड़की हो।

ज़ेब०--इस बात पर मेरा पूरा ख़याल है। मगर मुझे खुद कुछ ज़रूरत है, इसलिये उस के पास जाती हूं।

उदयपुरी—अच्छा मुलाकात हो तो उस से पूछना कि कितनी अशर्फ़ियां ले कर ये अहमक़ हमलोगों को छोड़ सकते हैं।

"पूछूंगी" कह कर ज़ेबउन्निसा उस से बिदा हुई, फिर चंचलकुमारी की आज्ञा मंगा कर उस से जा कर मिली। चंचल ने उस का पहिले दिन का सा ही आदर किया और मिजाजपुर्शी की। फिर पूछा—

"कहिए, रात को चैन से नींद आई थी न ?"

ज़ेब०—ज़रा भी नहीं; आप ने जो हुक्म दिया था, उसे पूरा करने की वजह से मारे दहशत के मैं सोई ही नहीं।

चंचल--तो आप ने कोई सपना नहीं देखा ?

ज़ेब०—ख़ाब तो नहीं, मगर जगी रहने की हालत में ही कुछ अपनी आंखों के आगे देखा।

चंचल—कोई अच्छी चीज़, या नाक़िस ?

ज़ेब—उसे अच्छा, या बुरा, कुछ भी नहीं कह सकती; मगर अच्छा तो नहीं ही है। हां, तो उस बारे में मैं आप से कुछ भीख चाहती हूं।

चंचल—कहिए ?

ज़ेब—उसी चीज़ को मैं फिर एक मर्तबः देख सकती हूं ?

चंचल—नजूमी से पूछे बिना मैं इस बात का जवाब नहीं दे सकती। मैं पांच सात दिन बाद उन के (ज्योतिषी के) पास आदमी भेजूंगी।

ज़ेब—क्या आज आदमी नहीं भेजा जा सकता ?

चंचल—इतनी जल्दी का क्या सबब है, शाहज़ादी ?

ज़ेब—जल्दी ? बल्कि इतनी जल्दी मुझे है कि अगर आप उस चीज़ को अभी मुझे दिखला दें तो मैं ताक़यामत आप की लौंडी बन कर रहूंगी।

चंचल—यह बड़े अचम्भे की बात आप ने कही। शाहज़ादी ! वह कौन सी ऐसी अनोखी चीज़ है ?

इस पर उस ने कुछ जवाब तो न दिया, पर उस की आंखों से आंसू बहने लगे, जिसे देख कर चंचलकुमारी ने उस पर दया नहीं की, बरन और भी उस के घाव पर निमक डाला, कहा—

"आप जरा पांच सात दिन सब्र कीजिए, फिर मैं इस पर विचार करूंगी और जैसा मुनासिब समझूंगी, करूंगी।"

तब तो ज़ेबउन्निसा हिन्दू मुसलमान का भेद भूल गई और जहां तक वह जा नहीं सकती थी, वहां झपट कर चली गई; अर्थात् जिस सेज पर चंचलकुमारी बैठी थी, उसी पर वह भी जा पहुंची। इस के बाद वह उखड़ी हुई लता की भांति चट चंचलकुमारी के पैरों पर गिर और उस के पैरों पर अपना सिर रख कर आंसुओं की धारा से उन के पैरों को धोती हुई बोली—"आप मेरी जां बख्शी कीजिए, मुझ पर रहम कीजिए, वरनः मैं अभी अपनी जान दे दूंगी।"

चंचलकुमारी ने तुरन्त उसे उठा कर अपने पास बैठाया; क्योंकि वह भी मामूली तौर से हिन्दू और मुसलमान का विचार नहीं करती थी; उस ने कहा—

"शाहज़ादी! आप जिस तरह कल रात को दर्वाज़ा खोल कर सोई थीं, उसी तरह आज भी सोइएगा। सच जानिए, जरूर आप की आर्ज़ू पूरी होगी।"

यह कह कर उस ने ज़ेबउन्निसा को बिदा किया।

इधर उदयपुरी ज़ेबउन्निसा की बाट जोह रही थी, पर फिर उस ने उदयपुरी से भेंट नहीं की। तब बिचारी उदयपुरी ने आप ही चंचलकुमारी से मुलाकात करने की आज्ञा मांगी।

भेंट होने पर उस ने चंचलकुमारी से पूछा कि—"कितनी अशर्फियां ले कर तुम हमलोगों को छोड़ सकती हो?" इस पर चंचलकुमारी ने कहा—

"यदि बादशाह हिन्दुस्तान की सारी मसजिदें मय दिल्ली की जुमामसजिद को ढाह दें, 'तख्ततारस' यहां पहुंचा दें और हरसाल हम को खिराज दे जाने का पक्का एकरार करें तो हम तुम सभों को छोड़ सकती हैं।"

यह सुनते ही मारे क्रोध के उदयपुरी तलमला उठी और कड़क कर बोली—"अहमक़, क़ाफ़िर घर के घूंस सरीखे राजपूतों का यह हौसला, यह दिमाग़ और यह गुस्ताकी!"

यह कहती हुई वह उठ कर चली जाती थी कि उसे रोक और मुसकुरा कर चंचलकुमारी ने कहा—"बिना हुक्म कहां जाती हो? ठहरो! तुम तो इस समय उसी अहमक़ क़ाफ़िर घर के घूंस राजपूत की बांदी हो, क्या यह बात भूली जाती हो?" फिर उस ने एक दासी से कहा कि—"हमारी इस नई बांदी को हमारी सब सौतिनों के पास ले जा कर दिखला ला। और जो कोई पूछे तो यों बतलाइयो कि "येही दाराशिकोह की खदिरा बेगम हैं।"

बिचारी उदयपुरी रोती रोती दासी के साथ साथ चली। दासी राज॰ सिंह की सब राजमहिषियों के महलों में ले जाकर औरंगज़ेब की प्रानप्यारी बेगम को दिखला लाई।

उसी समय निर्मल ने आकर चंचल से कहा कि—"महारानी असल बात तो आप भूली जाती हैं। याद तो करिये कि किस लिये उदयपुरी को पकड़ लाई हूं? क्या ज़्योतिषी की बात भूल गई?"

इस पर चंचलकुमारी ने हंस कर कहा—

"भूली नहीं हूं। पर उस दिन बेगम बहुत ही दुखी हो, गिर कर बेहोश हो गई थी, इसी से उसे ज्यादः दुख न दे सकी। पर उस निगोड़ी ने आप ही आप मेरी थोड़ी बहुत दया को, जो उस पर थी, सुखा डाला।"

छठां परिच्छेद।

शाहज़ादी भस्म हो गई।

आधी रात बीत चुकी थी, सब कोई नींद में सोए हुए थे, पर बिचारी बादशाह की बेटी ज़ेबउन्निसा सजीली सेज पर बैठी हुई आंसू बहा रही थी। कभी वह बन की आग के घेरे में फंसी हुई बाघिन की भांति गुस्से से गर्ज उठती और फिर तुरत ही तीर से बिंधी हुई हरिनी के समान मानो कातर भी हो जाती थी। रात भी सुहावनी न थी, क्योंकि रह रह कर घोर झपट्टा मारती हुई पुरवैया हवा बह रही थी। आकाश में बादल छाए हुए थे, और खिड़कियों से दिखलाई देनेवाली पर्वतमाला घोर अंधेरे में डूबी हुई थी। केवल जहां पर राजपूतसेना का पड़ाव पड़ा हुआ था, वहां पर बसंतऋतु के उपवन के फूलों की भांति, समुद्र में फेनमाला के समान, और सुंदरी कामिनी के देह पर रत्नावली के तुल्य एक ही जगह बहुत से दीए बल रहे थे, और सब जगह सन्नाटा और घोर अंधेरा फैला हुआ था, कभी कभी बीच बीच में सिपाहियों के हाथ से छोड़ी हुई बंदूक की आवाज पहाड़ों में गूंज गूंज कर और भी भयावनी सुनाई देती थी, या कभी कभी पहाड़ों में गूंजती हुई मेघों की गर्जन कलेजा कंपा देती थी और कभी कभी भयानक तोपों की घड़घड़ाहट पहाड़ों में गूंज गूंज कर और भी भयावनी हो उठती थी। जिस से राजकीय घोड़साल के घोड़े डरकर हिनहिना उठते और राजपुरी की वाटिका की हरिनियां घबड़ा घबड़ा कर कराहने लगती थीं। उसी भयावनी आधीरात के समय इन सब भयानक कोलाहल को सुनती सुनती, उदासी में डूबी हुई ज़ेबउन्निसा सोचती थी कि—"यह जो तोप घहरा उठी, इस से मालूम होता है कि ये मोगलों की तोप होंगी। क्योंकि दूसरे की तोप इतना घहराना नहीं जानती। यह मेरे वालिद ही की तोप की आवाज़ है— ऐसी हज़ारों तोपें मेरे बाबाजान के हमराह हैं, तो क्या उन में से एक तोप

भी मेरे कलेजे को अपना निशाना बनाने के वास्ते काफ़ी नहीं है ? या अल्लाह ! मैं क्योंकर इस तोप के मोहड़े के आगे अपना कलेजा बिछा कर उस के गोले की आग से अपना सारी जलन दूर करूं ? कल फ़ौज के भीतर हाथी पर चढ़ी हुई लाखों हथियारों की कत्तार मैंने देखी थी, लाखों हथियारों की झनझनाहट सुनी थी, उन में से फ़क़त एक ही से तो मेरी सारी जलन दूर हो सकती है। ऐं ! मगर इस की कोशिश तो मैंने की ही नहीं ? अगर चाहती तो हाथी के ऊपर से कूद उस के पैरों तले कुचल मरती, ऐं ! वह कोशिश भी मैंने क्यों न की ? क्यों नहीं की ? ऐं ! मरने की ख्वाहिश तो है, मगर मर जाने की कोशिश अब तक क्यों न की ? अब भी तो मेरे तन बदन पर बहुतेरे हीरे आरास्तः हैं, तो इन्हीं में से दो एक नग निगल कर क्यों न मर जाऊं? या इलाही ! अब मेरे ज़िगर में इतनी भी ताक़त बाक़ी न रही कि कोशिश कर के भी मर सकूं !"

ठीक उसी समय खुले हुए दर्वाजे से हवा के झोंके ने आकर सब बत्तियां बुझा दीं। अंधेरा होते ही आफ़त की मारी ज़ेबउन्निसा के मन में और भी डर पैदा हुआ। वह सोचने लगी—"दहशत क्या है ? ऐं ! अभी तो मैं मरने का मन्सूबा कर रही थी ! तो फिर जो मरना चाहता है, उसे फिर किस का डर है ? डर क्या ? कल मुर्दों को देखा था, पर आज अभी तक मैं जीती हूं कि नहीं ? तो जान पड़ता है कि जहां मुर्दे रहते हैं, वहीं मैं भी जरूर जाऊंगी। तो फिर डर किस बात का ? मगर, हां ! बिहिश्त में जाना मेरी क़िस्मत में नहीं है; तो शायद जहन्नुम में जाऊंगी—बस इसीलिये इतनी दहशत ? आह ! आज तक इन बातों पर क्यों न यक़ीन कामिल किया ? या क़िस्मत ! आज तक मैंने अपने गरूर के आगे न जहन्नुम को माना, न बिहिश्त को; और न खुदा पर यकीन किया, न दीनइस्लाम पर; फ़क़्त ऐशोआराम को ही जिन्दगी, जवानी, दुनियां और दौलत की न्यामत समझा। या पर्वरदिगार ! खुदावन्दकरीम ! ऐ ! रहीम ! तू ने क्यों मुझ

सरीखी काली नागिन को दौलत बेवहा अता की? आह! फ़क्त इस मूज़ी ज़र ने ही मेरे आबहयात के प्याले में ज़हर घोल दिया; बस इसी वजह से मैंने तुझे अबतक नहीं पहिचाना। फ़क्त दौलत ही से जिन्दगी का सच्चा आराम नहीं हासिल होता, इस बात को ख़्वाब में भी मैंने न जाना, मगर, इलाही! तू तो इस बात से वाक़िफ़ था? फिर जानबूझ कर तू ने किस गरज़ से बे दर्द हो कर मुझे इतने सदमे पहुंचाए? आह! मेरे बराबर किस ने इतनी दौलत पाई और मुझ सरीखा दूसरा इस वक्त ग़मज़द: कौन है?"

योंही वह आप ही अपने दुख में जली भुनी जाती थी कि उस मरती हुई पर किसी ने और भी वार किया। जिस राजसी सेज पर बैठी हुई वह अपनी किस्मत का फैसला कर रही थी, उसी पलंग में चींटी, खटमल या और कोई नन्हा सा कीड़ा था। क्यों न हो, जवाहिर से लकोदक पलंग पर भी कीड़े मकोड़े के जाने की मनाही न थी, सो उस कीड़े ने बिचारी सुकुमारी—मुर्दे की दशा को पहुंची हुई—ज़ेबउन्निसा को काट लिया। अहा! जिस सुकुमार शरीर पर भगवान पुष्पधन्वा (कामदेव) भी बान चलाने के समय हलके हाथों से फूलों की तीर छोड़ते थे, उसी कोमल अंग में निगोड़े कीड़े ने निर्दई की भांति काट कर लोहू निकाल डाला। उस के काटने से ज़ेबउन्निसा जरा तलमला गई, फिर मनहीमन हंसी और यों सोचने लगी—"एं! एक नाचीज़ चींटी के काटने से मैं तलमला उठी? इस बेअन्दाज सदमों के चकाबू में हुई भी फंसी मैं इस काट से कांप उठी और लापर्वाही के साथ मैं ने उस शख्श को, जो मेरा जानो दिल से भी बढ़ कर प्यारा था, सांप से कटवाने के लिये भेजा था? तो क्या ऐसा कोई नहीं है, जो मेरे लिये भी वैसा ही ज़हरीला सांप दे? बस, अब या तो मुझे सांप चाहिए, या मुबारक!!!"

प्रायः सभी की ऐसी दशा होती है कि यदि कोई अधिक मानसिक पीड़ा के समय बहुत देर तक अकेला ही कलेजे के टुकड़े उड़ानेवाली चिन्ता

में डूब जाता है, तो उस के मन की कोई कोई बात आप ही आप मुंह के मार्ग से बाहर निकल पड़ती है। इसी नियम के अनुसार ज़ेबउन्निसा के मुंह से भी पिछली कई बातें बाहर निकल पड़ी थीं। उस ने उसी अंधेरी रात में घोर अंधेरे घर के भीतर ही से हवा की हड़हड़ाहट को चीर कर मानो किसी से पुकार कर कहा--" बस, अब या तो मुझे सांप चाहिए, या मुबारक !!! " यह सुनते ही किसी ने उस अंधेरे ही में जवाब दिया--" मुबारक के पाने पर क्या तुम न मरोगी ? "

"ऐं! ऐं! ऐं! यह क्या ? यह क्या ?" कहती हुई ज़ेबउन्निसा तकिये की ठेस छोड़ कर पलंग पर सीधी बैठ गई। जैसे सुरीली तान सुन कर हरिनी कान उठा कर खड़ी हो जाती है, उसी तरह ज़ेबउन्निसा भी उठ बैठी और चिल्ला उठी,--" ऐं! ऐं! ऐं! यह क्या ? यह क्या ? यह क्या सुनाई दिया ? यह किस की आवाज़ है ? "

इस पर किसी ने जवाब दिया,--" किस की आवाज़ है ? "

ज़ेबउन्निसा ने कहा,--" किस की ? उसी की, जो बिहिश्त में चला गया है। तो क्या उस के गले में अभी तक वैसीही सुरीली आवाज़ मौजूद है ? ऐं! अब तो फ़क्त उस की रूह बाकी होगी ? ऐं! प्यारे ! मुबारक ! तुम किस हिक़मत से बिहिश्त से आते जाते हो ? कल भी तुम दिखलाई दिए थे, और आज तुम्हारी बातें सुन रही हूं। दिलवर ! ऐ जाने मन सलामत ! कसम खुदा की, सच बतलाओ, तुम मुर्दे हो या जिन्दः ? तो क्या असीरुद्दीन ने मुझ से झूठी बात कही थी ? अच्छा, तुम मुर्दे हो, या जिन्दः मगर मैं अर्ज़ करती हूं कि खुदा के वास्ते तुम एक लहजः--फ़क़त एक लहजः--मेरे सेज पर आकर बैठ सकते हो ? अगर तुम फ़क़त रूह की ही सूरत में होवो, तो मुझे कुछ पर्वा नहीं, मैं डरूंगी नहीं। लिहाजा एक मर्त्तबः आओ, यहां बैठो। "

जवाब मिला--" किस लिये ? "

ज़ेबउन्निसा ने आज़िज़ी के साथ कहा—"मैं कुछ अर्ज़ किया चाहती हूं, सचमुच जो बात मैं ने आज तक कभी नहीं कही थी, वही कहूंगी।"

तब मुबारक (अब इस के कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है कि वह मुबारक ही था) उसी अंधेरे में ही पलंग पर चढ़ कर ज़ेबउन्निसा के बगल में बैठ गया। और ज़ेबउन्निसा की बांह से उस की बांह छू गई, जिस से उस के सारे शरीर के रोएं मारे खुशी के खड़े हो गए, उस का कलेजा आनन्द की तरंग से डामाडोल होने लगा और उस की सदा की सूखी हुई आंखों से मोतियों की लड़ी लुढ़कने लगी। उस ने आदर से मुबारक के हाथ को अपने हाथ में ले लिया और कहा—"दिलवर! तुम सिर्फ़ रूह ही नहीं हो। तुम चाहे हज़ार फिक़रे गढ़ कर मुझे भुलवा दो, मगर प्यारे! अब मैं तुम्हारी बातों में भूलनेवाली नहीं हूं। मैं फ़क़त तुम्हारी ही हूं, लिहाज़ा अब जीतेदम तक तुम्हें नहीं छोड़ूंगी।" इतना कह कर वह पलंग से उतर कर मुबारक के पैरों पर गिर कर रोती रोती कहने लगी—"जानेमन! दिलवर! प्यारे! मेरा क़सूर मुआफ़ करो, राजा! सच जानो, मैं फ़क़त दौलत के ग़रूर के बाइस ख़फ़्त हो रही थी, अब मैं खुदा की, क़ुरानशरीफ की और दीन इस्लाम की पाक दिल से क़सम खा कर सच कहती हूं कि आज इसी लहमें से मैंने दौलत से किनारा कसा। अगर तुम मेरा कसूर मुआफ़ कर दो तो मैं क़सम खा कर कहती हूं कि अब जीतेजी दिल्ली को न लौट जाऊंगी और जहां तुम चलोगे, वहीं खुशी से चलूंगी। सच कहो, तुम्हें खुदा की क़सम! तुम जिन्दः हो न?"

इतना सुनते सुनते मुबारक ने एक लम्बी सांस ली और कहा—"शाहज़ादी! मैं अभी तक खुदा के फ़ज़ल से जिन्दः हूं। मुर्दों में तो मैं शुमार हो ही चुका था, मगर एक ग़रीबपर्वर राजपूत ने मुझे क़ब्र से बाहिर कर दवादारू के ज़रिये मुझे चंगा या जिन्दः किया, बल्कि यों कहना

चाहिए कि उस बे नज़ीर शख्स ने मुझे दुबारा इस दुनियां में पैदा किया। उसी के हमराह मैं यहां आया हूं।"

पर ज़ेबउन्निसा ने मुबारक के पैर न छोड़े और इतने आंसू बहाए कि उस के पैर भींग गए। तब मुबारक उस का हाथ थाम्ह कर उसे उठाने लगा पर वह न उठी और बोली—"प्यारे! मुझ पर रहम करो, मुझे मुआफ़ करो।"

मुबारक--अच्छा, लो! तुम्हें मुआफ़ करता हूं सिर्फ मुआफ़ करने ही की नीयत से मैं तुम्हारे पास आया हूं वर्नः न आता।

ज़ेबउन्निसा ने कहा—मगर, प्यारे! जो मेहरबानी कर के आए हो, और मेरा क़ुसूर मुआफ़ करते हो तो बखुदा, मुझे क़बूल करो। फिर क़बूल कर लेने पर तुम्हें अख्तियार हासिल होगा कि चाहे मुझे सांप के आगे डाल दो, या जो दिल में आवे, वो सज़ा दो। मैं वही करूंगी, जो तुम्हें मंजूर ख़ातिर होगा, लिहाज़ा मुझे अब अपने क़दमों से दूर न करो। मैं क़सम खा कर कहती हूं कि अब मैं तुम्हें छोड़ कर दिल्ली भी नहीं जाना चाहती; अब मैं आलमगीर बादशाह के रंगमहल में क़दम न रक्खूंगी। अब मैं शाहज़ादे के साथ शादी करना भी नहीं चाहती, फक़त तुम्हारे साथ रहना पसन्द करती हूं।

अहा! शाहज़ादी, दिल्ली के शाहंशाह आलमगीर की महाधन गर्विता ऐश्पाश बेटी मानिनी ज़ेबउन्निसा की रुलाई और अधीनताई देखकर मुबारक सब भूल गया, सांप काटने की भयावनी लहर की तकलीफ भूल गया दरिया, मानप्यारी सती विवाहिता स्त्री दरिया को भी भूल गया मतलब यह कि सब कुछ भूल गया। शाहज़ादी की ग़रूर से भरी हुई मुहब्बत से ख़ाली और अनसुहाती लगती बातों को भी भूल गया। बस केवल उस (शाहज़ादी) की अतुल रूपराशि उस (मुबारक)

की आंखों के आगे नाचने लगी। शाहज़ादी की प्रेम से भरी हुई गिड़गिड़ाहट उस के कानों में अमृत ढालने लगी, और उस के ग़रूर को मिट्टी में मिलाहुआ देखकर उस (मुबारक) का मन पिघल गया। तब उसने पूछा, "क्यों शाहज़ादी! तो क्या अब तुम इस नाचीज़ को शरह के बमूजिब शौहर बनाने पर राज़ी हो?"

यह सुनतेही ज़ेबउन्निसाने हाथ जोड़ और आंसू ढरकाते कहा,—"ऐ! क्या इतनी खुशक़िस्मती भी मुझे नसीब होगी?"

प्यारे पाठक सचमुच उस समय शाहज़ादी शाहज़ादी न थी, बरन वह एक प्रेमवती साधारण स्त्री की भाँति हो रही थी। उस की बात सुनकर मुबारक ने कहा,—"अच्छा अगर मंजूर है तो बेखटके, बिलां उज्र और बग़ैर सोच बिचार किए मेरे साथ चलो।

दीया बालने के सरंजाम मुबारक के पास थे। चट उस ने मोमबत्ती जलाकर कंदील के भीतर रक्खी और उस घर के दर्वाजे पर आ खड़ा हुआ। उस के कहने के अनुसार ज़ेबउन्निसा ने अपनी लिबास पोशाक सुधारी और उसके सिंगार पटार हो जाने पर मुबारक उस का हाथ थाम्ह कर घर से बाहर हुआ और सचमुच ज़ेबउन्निसा ने चूं तक न किया। वहां पर पहरे-वाली औरतें पहरे पर तैनात थीं, उनमें से दो जनी मुबारक का इशारा पाकर उन दोनों के साथ साथ चलीं। मुबारक ने चलते चलते ज़ेबउन्निसा को समझा दिया कि "महाराना के महलों के अंदर किसी ग़ैर शख्स के आने की मजाल नहीं है, और खास कर मुसलमान कौम की। इसीलिये मैं इस आधी रात के सन्नाटे के आलम में आने पाया, सो भी महारानी चंचल-कुमारी जी की बे इन्तिहा मेहरबानी के बाइस ही मेरी यहां तक गुज़र हो सकी, और यही सबब है कि इन पहरेदारिनों ने मुझे तुम्हारी ख्वाब गाह तक जाने दिया। सदर फाटक तक हमलोगों को पांव प्यादे ही जाना पड़ेगा, वहां मेरे लिये घोड़ा और तुम्हारे वास्ते डोला तैयार है।

पहरेवालियों की सहायता से सिंहद्वार के बाहर पहुंच कर दोनों अपनी २ सवारी पर सवार हुए। उदयपुर में भी दो चार मुसलमान सौदागरी आदि के ज़रिये से रहा करते थे। सो उन लोगों ने महाराना की आज्ञा लेकर नगर के सिवान पर एक छोटी सी मसज़िद बनवाली थी। मुबारक ज़ेबउन्निसा को उसी मसज़िद में ले गया। वहां पर पहिले ही से ठीक किए हुए एक मुल्ला वकील और गवाह मौजूद थे।

उन्हीं लोगों की सहायता से क़ुरान की शरह के बमूजिब ज़ेबउन्निसा और मुबारक की शादी की (निकाह) की सारी रसम पूरी की गई।

तब मुबारक ने कहा,— अब तुम को जहां से ले आया हूं, वहीं पहुंचाना होगा क्योंकि अभी तुम महाराना की बांदी हो, मगर मुझे उम्मीद क़ामिल है कि बहुत जल्द तुम्हारी खलासी हो जायगी।

यह कह कर वह उसी तरह, जैसे ले गया था, ज़ेबउन्निसा को उस के सोनेवाले कमरे में पहुंचा गया।

सातवा परिच्छेद।

जलते हुए बादशाह का पानी मांगना।

दूसरे दिन कुछ दिन चढ़े ज़ेबउन्निसा चंचल कुमारी के पास बैठी हुई हंसीखुसी से बातचीत कर रही थी। दो दिन तक बराबर सारी रात जागने से उस का शरीर कुम्हलाया हुआ और बहुत दिनों तक के बुरे सोच के कारण बहुत ही दुबला हो रहा था। जो ज़ेबउन्निसा रातदिन जवाहिरात और फूलों से अपने को आरास्तः कर के सीसमहल के हरएक आईने में अपनी परछाईं देख देख हंसा करती, यह अब वो ज़ेबउन्निसा न रही और जो यह जानती थी कि बादशाहज़ादी की पैदाइश सिर्फ

ऐय्याशी ही के वास्ते हुई है, यह अब वो बादशाहज़ादी न रही। अब उस की समझ में यह बात भलीभांति डंट गई कि शाहज़ादी भी औरत ही होती है। बादशाहज़ादी का दिल भी औरत के ही दिल सरीखा है। तब प्रेम से खाली औरतों का हृदय, जल से रहित नदी मात्र है। जो केवल बालू मात्र या बिना पानी के तालाब की भांति केवल कीचड़ के भलावे और कुछ भी नहीं है।

इस समय वह जी खोल कर और घमंड छोड़कर अधीनताई के साथ चंचलकुमारी के आगे रातवाली सारी घटना का हाल कह रही थी पर चंचलकुमारी तो पहिले ही से सब कुछ जानती थी। सारी कहानी सुनाकर जे़बुन्निसा ने हाथ जोड़ कर चंचलकुमारी से कहा, "महारानी! अब आप को मुझे कैदी की तरह रोक रखने से क्या फायदा है? क्योंकि अब मैं इस बात को भूल गई हूं कि मैं आलमगीर बादशाह की बेटी हूं। चुनांचे अब अगर आप वहां मुझे भेजना भी चाहें तो मैं अब वहां नहीं जाना चाहती। वजह इस की यह है कि वहां जाने पर भी अब मेरी जान न बचने पावेगी। लिहाज़ा अब आप मुझे छोड़ दें और मैं अपने शौहर के साथ उन के वतन तुर्किस्तान को चली जाऊं।

यह सुन कर चंचलकुमारी ने कहा "शाहज़ादी! आप की इन बातों का जवाब देना मेरी सामर्थ से बाहर है। कर्त्ताधर्त्ता सब महाराना हैं, उन्हों ने आप को मेरे पास रखने के लिये भेजा है, इसलिये मैं ने आप को रक्खा है, तब ये सब (मुबारक से मिलना या निकाह करना इत्यादि) जो कुछ हुए इन सब बातों के जवाबदेह केवल महाराना के सेनापति मानिक लाल सिंह हैं। मैं मानिकलाल के उपकारों के बोझ से इतना दबी हुई हूं कि उन के कहे अनुसार यहां तक कर सकी; पर छोड़ देने की कोई आज्ञा मैं ने नहीं पाई है, इसलिये उस विषय में मैं किसी तरह का पक्का एकरार नहीं कर सकती।

यह सुन ज़ेबउन्निसा ने उदास होकर कहा—"महाराना साहब की खिद्मत में मेरी यह गुज़ारिश आप नहीं पेश कर सकतीं? उन की लश्कर यहां से कुछ ज़्याद: दूर तो है नहीं। कल रात को उन की लश्कर की रौशनी मैंने देखी थी।"

चचंलकुमारी ने कहा—"ठीक है, पर पहाड़ जितना पास दिखलाई देता है, सचमुच उतना ही समीप नहीं है। हमलोग सदा से पहाड़ी देश में रहती आती हैं, इसलिये यह बात भली भांति से जानती हैं। आप भी तो काश्मीर हो आई हैं, कदाचित यह भेद आप भी समझ गई होंगी। खैर, जो होय, पर यह बात सच है कि आदमी भेजने में बहुत बखेड़ा नहीं है, पर तौ भी राना इस बात को मान लेंगे, ऐसा तो भरोसा मुझे नहीं होता। यदि ऐसा हो सकता कि उदयपुर की एक अदनी सेना मोगल बादशाहत को इसी एक ही लड़ाई में एकदम से मिट्टी में मिला दे सकती, और यदि बादशाह के साथ हमलोगों के सुलह होने की आशा न रहती, तब महाराना अवश्य आप को अपने शौहर के साथ जाने की आज्ञा दे सकते थे; पर जब कि एक न एक दिन सुलह अवश्य होगी, तब आप लोगों को भी बादशाह के पास जरूर लौटा देना पड़ेगा।"

ज़ेब०—ऐसा करने से आप जानबूझ कर मुझे मौत के पंजे में डाल देंगी। सोचिए तो सही कि इस निकाह के हाल को जान कर बादशाह मुझे जहर देकर मार डालेगा और मेरे स्वामिंद के साथ किस बुरे तरीके के साथ पेश आवेगा, इस के तो कहने ही की कोई ज़रूरत नहीं है। मेरा शौहर हरगिज़ दिल्ली नहीं जा सकता, अगर वहां गया भी तो उस की मौत धरी ही हुई है। अब बतलाइए महारानी! कि इस शादी से क्या फ़ाइदा हासिल हुआ?

चंचल—हमारे जान, ऐसा कोई उपाय किया जा सकता है, जिस से फिर कोई बखेड़ा न हो।

इसी प्रकार दोनों में बातें हो रही थीं, इतने ही में निर्मलकुमारी कुछ घबराई हुई वहां पर आ पहुंची। उस ने पाहिले चंचल को प्रणाम कर के फिर ज़ेबउन्निसा को सलाम किया, जिस के जवाब में उस ने भी निर्मल को सलाम किया। इस के अनंतर चंचल ने उस से पूछा—

"निर्मल! तुम इतनी घबराई हुई क्यों मालूम पड़ती हो?"

निर्मल—कोई बहुत ज़रूरी खबर है।

यह सुनते ही ज़ेबउन्निसा वहां से उठकर चली गई, तब चंचल ने उस से पूछा—"क्या युद्ध का समाचार है?"

निर्मल—हां।

चंचल—सो तो मैं—ने लोगों की जबानी सुना है कि चूहा मूसदानी * के अंदर घुस गया है और महाराना ने उस के दोनों सिरे बंद कर रक्खे हैं। सुना है कि चूहा शायद उस पिंजरे के भीतर बहुत कुछ सिर मार कर अब रहने लायक हुआ है।

निर्मल—किन्तु, उस पर एक बात और भी यह है, कि वह बहुत ही भूखा है। मेरा वही कबूतर आज उड़ाया हुआ आया है। बादशाह ने उसे उड़ा दिया है और उस के पैर में एक पुरजा बांध दिया है।

चंचल—तुम ने उस रुक्के को पढ़ा है?

निर्मल—हां।

चंचल—वह किस के नाम का है?

निर्मल—इमली बेगम के नाम का।

चंचल—उस में क्या लिखा है?

तब निर्मल ने उस पुरजे को निकाल कर उस में का कुछ हिस्सा यों पढ़ कर सुनाया—

---

* चूहे बझाने का पिंजरा।

"मैं तुम पर इतनी मुहब्बत रखती कि जितनी किसी बसर पर आजतक नहीं हुई। तुम भी मुझ पर मुहब्बत रखता थी इसलिये सुनो, आज दीन दुनियां का बादशाह 'चाहगार्दिश में गर्क हो रहा है। दिल्ली का शाहंशाह आज एक निवाला रोटी का मुहताज़ है, इस वक्त तुम मेरी किसी क़दर भलाई कर सकती हो? अगर मुमकिन हो तो जो कुछ कर सकती हो, करो। इस वक्त की भलाई मैं ता उम्र न भूलूंगा।"

यह सुन चंचलकुमारी ने पूछा, "तुम अब क्या उपकार करोगी?"

निर्मल ने कहा—"सो क्या बतलाऊं? पर और चाहे कुछ न कर सकूं पर बादशाह और योधपुरी बेगम के लिये कुछ खाने की सामग्री ज़रूर भेजूंगी।"

चंचल—क्योंकर? वहां तक आदमी के आने जाने की राह कहां है?

निर्मल—इस का जवाब अभी क्या दूं? इसलिये मुझे जरा छावनी तक जाने की आज्ञा दीजिए। क्योंकि जरा वहां जाकर यह देख आऊं कि मैं कहां तक या क्या कर सकती हूं।

यह सुन चंचलकुमारी ने तुरत उसे शिविर में जाने की आज्ञा दी। तब वह हाथी पर सवार हो अंगरक्षकों से घिर कर छावनी की ओर अपने दूलह से मिलने चली। वहां पहुंचते ही मानिकलाल के साथ उस की भेंट हुई। मानिक ने पूछा—

"क्या युद्ध के मतलब से आना हुआ?"

निर्मल—(मुसकुरा कर) किस के साथ लड़ूं? तुम क्या मुझ से लड़ने लायक हो?

मानिक—भला मैं क्यों कर तुम्हारे लायक हूंगा? मगर आलमगीर बादशाह?

जाने के लिये कहा—"खां साहब ! बादशाह के पास लौट जाने पर भी जो वह सचमुच आप को मुआफ़ करेगा, ऐसा भरोसा मुझे नहीं होता।"

मुबारक ने कहा—"खैर, न सही।"

दूसरे दिन सबेरे की बेला मानिकलाल ने निर्मलकुमारी से उसी कबूतर को मांगलाकर और चिट्ठियों को काट छांट छोटी करके उसके पैर में बांध दिया। बस वह कबूतर छूटतेही आकाश में उड़ गया, पर पैर के बोझ से वह बहुतही पीड़ित था; तौभी किसी किसी तरह वह उड़ता हुआ, जहां पर कि बादशाह ऊपर को मुंह किए आकाश की ओर निहार रहा था, वहीं पर उसी के पास उन चिट्ठियों को उस ने पहुंचा दिया।

दसवां परिच्छेद।

आग बुझने के समय, उदयपुरी भस्म हुई।

कबूतर तुरतही औरंगज़ेब का उत्तर ले आया। राजसिंह ने जो जो बात चाही थी, औरंगज़ेब ने उन सभी बातों को स्वीकार किया; किन्तु एक बखेड़ा उस ने यह खड़ा किया और लिखा कि "चंचलकुमारी को भी हमें देदेना होगा।" इस पर राजसिंह ने कहा कि; "तो इस की अपेक्षा आप को वहीं पर सेना के साथ ही गोर देदेना हम उचित समझते हैं।" बस लाचार होकर औरंगज़ेब को वह इच्छा भी छोड़नी पड़ी। तब उस ने सुलह को स्वीकार कर मुन्शी के द्वारा उसी आशय का सुलहनामा, जैसा कि राजसिंह चाहते थे, लिखवा कर और उस पर अपना पंजा छाप कर अपने हाथ से उस पर लिख दिया कि "मंजूर है।" ज़ेबउन्निसा और मुबारक के बारे में उसने एक अलग पत्र में उन दोनों को क्षमा करने की बात स्वीकार की, किन्तु उसमें एक यह भी शर्त्त की कि "इस शादी के हालात को कोई किसी के आगे कभी किसी तरह से भी ज़ाहिर न करे।" इस के

अलावे इस बात का भी उस ने एकरार किया कि 'मेरी लड़की (ज़ेबउन्निसा) जिस में अपने शौहर से मिलने से बाज़ न रक्खी जाय, वैसा बंदोबस्त भी हम कर देंगे।"

निदान राजसिंह ने सुलहनामे को पाते ही मोगलसैना के छोड़ देने की आज्ञा प्रचार करा दी। तब राजपूतों ने हाथियों को लगा कर कटे पेड़ों को खैंचखांचकर अलग किया। राजसिंह ने यह सोच कर कि "बिचारे भूखे प्यासे मोगल इस बिल में से निकलते ही कहां से खाने को पावेंगे" दया कर बहुतेरे हाथियों पर खाने पीने के सरंजाम लदवाकर तोहफे के तौर पर भेज दिया था; और फिर अंत में उदयपुरी, ज़ेबउन्निसा और मुबारक को भी औरंगज़ेब के पास भेज देने के लिये उदयपुर में आज्ञा भेज दी। तब निर्मल ने चंचल से इशारा करके उस के कान में कहा कि,—"क्यों! बेगम ने तुम्हारी लौंडीपना किया न!" यों कह कर उस ने उदयपुरी से कहा कि "मैं आप को जो न्योता देने दिल्ली गई थी उसे आप ने अभी तक पूरा नहीं किया।"

उदयपुरी ने कहा—"मैं तेरी ज़बान के टुकड़े टुकड़े कर काट डालूंगी। पें तुमलोगों की क्या मजाल है, जो मेरे हाथों चिलम भरवा सको! तुमलोग सरीखे नाचीज़ काफिरों की क्या ताक़त है, कि बादशाह की बेगम को रोक रक्खोगी! क्यों! आखिर झख़मार कर अब छोड़नाही न पड़ा! मगर हां, तुम कंबख़्तों ने जैसी बेइज्ज़ती मेरी की है, उस का नतीजा बहुत जल्द तुम सभों को दूंगी। सब्र करो, उदयपुर का नाम निशान तक मिटा दूं तो सही।"

यह सुन कर चंचलकुमारी ने स्थिर भाव से कहा कि—"मैंने सुना है कि महाराना बादशाह पर दया कर के तुमलोगों को छोड़ देते हैं, पर तुम लोग उन दयावान राना को इस उदारता के लिये दो एक मीठी बात भी कहना नहीं जानतीं! इसलिये तुम्हारी खलासी नहीं होगी; जाओ तुम मेरी लौंडियों के घर में जा कर तुरन्त मेरे लिये चिलम भर लाओ।"

ज़ेबउन्निसा ने कहा—यह क्या, महारानी ? आप इतनी बेदर्द हैं ?

चंचलकुमारी बोली—नहीं, नहीं; आप शौक से जा सकती हैं, आप को कोई नहीं रोकेगा, पर इन बेगम साहिबा को मैं अभी नहीं जाने दूंगी।

इस पर ज़ेबउन्निसा ने चंचल की बड़ी खुशामद की, अन्त में उदयपुरी ने भी कुछ आ़ज़िज़ी दिखलाई; पर उस समय चंचलकुमारी इतनी कठोर हो रही थी कि उस ने किसी की भी एक न सुनी। पर बहुत कहने सुनने पर दया कर के उस ने उदयपुरी से केवल इतना ही कहा कि—"बस, मेरे लिये एकबार तम्बाकू भरिए, तभी आप जाने पाएंगी।"

तब उदयपुरी ने कहा—"मैं तम्बाकू भरना नहीं जानती।"

चंचलकुमारी ने कहा—"मेरी लौंड़ियां उस की तर्कीब आप को बतला देंगी।"

निदान, लाचार हो कर उदयपुरी ने यह बात मान ली, बांदियों ने उसे चिलम भरना बतला दिया, और उस बिचारी ने रो रो कर चंचलकुमारी के लिये तम्बाकू भरी।

तब चंचलकुमारी ने सलाम कर के उन दोनों को बिदा किया, और इतना और भी कह दिया कि—"बेगम साहिबा ! यहां पर जो जो बातें हुई हैं उन सभी बातों का हाल आप बादशाह से जरूर कहिएगा और उन्हें इस बात का ख्याल दिला दीजियेगा। कि 'मैने (चंचल ने) ही उस की तस्वीर को अपने पैरोंतले कुचल कर उस की नाक तोड़ डाली थी।" और यह भी कहिएगा कि 'यदि आग पीछे फिर कभी वह किसी हिन्दूनारी की बेइज्जती करने का इरादा करेगा तो अब मैं केवल तस्वीर ही के ऊपर लात मारकर संतुष्ट होऊंगी।'

यह सुन उदयपुरी गर्मी की ऋतु के मेघों के समान सजल कान्ति होकर बिदा हुई।

अपनी बेगम, लड़की और खुराक पा कर औरंगज़ेब बेंत से मारे हुए कुत्ते के समान अपनी दुम दबाकर राजसिंह के सामने से भागा।

ग्यारहवां परिच्छेद।

आग के घेरे में प्यासी चातकी।

बेगमों को बिदा कर के चंचलकुमारी ने फिर चारो ओर अंधकार ही अंधकार देखा। उस ने मन ही मन यों कहा कि "ऐं! मोग़ल भी तो हार गए, बादशाह की बेगम ने भी तो मेरी चिलम भरी, पर ऐं! राना तो अभी तक मेरे लिये कुछ भी नहीं कहते सुनते?" चंचलकुमारी को रोती देख, निर्मल उस के पास जा बैठी, और उस के मन की बात समझ कर बोली—

"तो महाराना को उस दिन की बातों की याद क्यों नहीं दिलाती?"

चंचल ने कहा—तुम क्या पागल हो गई हो? औरत हो कर अपने मुंह से बार बार वह बात कैसे कही जाय?

निर्मल—तो रूपनगर, अपने पिता के बुलाने के लिये पत्र क्यों नहीं लिखतीं?

चंचल—क्यों लिखूं? ऐं! उस पहिले पत्र का मुंहतोड़ उत्तर पा कर अब फिर वहां पत्र लिखूंगी?

निर्मल—बाप के ऊपर ऐसा क्रोध या मान न करना चाहिए।

चंचल—क्रोध या मान कुछ भी नहीं है, पर एक बार लिख कर—वह मेरा ही लिखा हुआ था—जैसा शाप पा चुकी हूं, उसे स्मरण कर अब भी कलेजा कांप उठता है। तो फिर क्या वहां पत्र लिखने का साहस होता है?

निर्मल—किन्तु वह पत्र तो विवाह के लिये लिखा था।

चंचल—और अब किस लिये लिखूं ?

निर्मल—सुनो, जब महाराना ने व्याह की कोई बात न कही तो अब मेरी समझ से तुम्हें नैहर ही जा कर रहना—चाहिए निश्चय जानो, औरंगज़ेब अब इधर कभी रुख न करेगा, इसीलिये तुम से पत्र लिखने के लिये कहती हूं। क्योंकि अब नैहर के बिना दूसरा उपाय कौन सा है ?

इस पर चंचल कुछ जवाब दिया चाहती थी, पर वह बात उस के मुंह से बाहर न निकलने पाई और उस ने रो दिया। बिचारी निर्मल भी फीकी पड़ गई कि "मैं ने क्यों इस से ऐसी बात कही।"

फिर चंचल आंसू पोंछ, लजा कर जरा हंस पड़ी, निर्मल भी मुसकुराई; तब निर्मल ने हँस कर कहा—

"सुनो जी, मैं कभी दिल्ली के बादशाह के आगे बाता में न चपी, पर तुम्हारे आगे कायल हो गई; यह दिल्ली के बादशाह के लिये बड़े शर्म की बात है, और इमली बेगम के (मेरे) भी शर्मा जाने की बात है। तो अब जरा तुम सन्नाटा खैंच कर बादशाह की प्यारी इमली बेगम का (मेरा) मुन्शीपना देखो। हां ! जरा दावात कलम लेकर लिखना तो प्रारंभ करो, मैं बोलती जाती हूं।"

चंचल ने पूछा—"किस को लिखूं ? मा को या बाप को ?"

निर्मल ने कहा—"बाप को ?"

तब चंचल पत्र लिखने और निर्मल लिखवाने लगी—

"अब मोगलबादशाह माहाराना के हाथ—"

"बादशाह" तक लिख कर चंचलकुमारी ने कहा—"महाराना के हाथ—" लिखूं, या "राजपूतों के हाथ" लिखूं ? इस पर निर्मल ने जरा हँस कर कहा—"अच्छा यही लिखो।"

फिर चंचल निर्मल के कहे अनुसार पत्र लिखने लगी—

"हाथ से हार कर राजपूताने से खदेड़ दिया गया है। अब हमलोगों के ऊपर उस के ज़ोरजुल्म करने की आशा नहीं है। तो अब इस अवस्था में आप अपनी लड़की के लिये क्या आज्ञा देते हैं ? क्योंकि मैं आप ही के आधीन हूं-"

इस जुमले के बाद निर्मल ने कहा-"कुछ महाराना के आधीन नहीं हूं।"

चंचल ने कहा—"दूर हो, पापिन ! ऐसी बात मैं कभी न लिखूंगी।" तब निर्मल ने कहा-"तो यों लिखो कि-

"और किसी के आधीन नहीं हूं।" आखिर लाचार होकर चंचल को यह बात लिखनी पड़ी।

इस प्रकार पत्र के लिख जाने पर निर्मल ने कहा—"अब इस चिट्ठी को रूपनगर भेज दो।"

निदान, वह पत्र रूपनगर भेजा गया, जिस के जवाब में रूपनगर के राव साहब ने लिखा कि-"हम दो हजार फौज़ लेकर उदयपुर आते हैं। राना से कह दो कि हमारे आने के लिये पहाड़ी घाटी का रास्ता खोल दें।"

ऐं ! इस अचरज से भरे हुए पत्र का असल मतलब क्या है, सो चंचल या निर्मल ने कुछ भी न समझा। फिर अंत में उन दोनों ने सोच-साच कर यह निश्चय किया कि "जब इस में दो हज़ार फौज की बात है, तब महाराना से इस का हाल कह देना चाहिए।" यों सोच कर निर्मल-कुमारी ने मानिक लाल के पास इस बात की खबर भेज दी।

इधर राना भी इसी प्रकार के झमेले में पड़े थे; अर्थात् वे भी चंचल कुमारी को नहीं भूले थे, इसलिये उन्हों ने भी विक्रम सोलंकी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र का यही आशय था कि चंचल कुमारी के विवाह के बारे में निर्णय करना। उस पत्र में राना ने विक्रम सिंह को उस शाप

का भी स्मरण दिला दिया था, जोकि पहिले पत्र के जवाब में विक्रम सोलंकी ने दिया था। और उन्हों ने जो प्रतिज्ञा की थी कि "जब हम राजसिंह को योग्यपात्र समझेंगे, तब उन्हें आशीर्वाद के साथ कन्यादान करेंगे।" उस की भी याद दिला दी थी, और अंत में राना ने यह भी पूछा था कि—"अब आप की क्या इच्छा है?" इत्यादि।

उस पत्र के उत्तर में भी विक्रम सोलंकी ने केवल वही बात लिखी, जो अपनी लड़की के पत्र के उत्तर में लिखी थी; अर्थात्—"हम दो हजार सवारों के साथ आप के पास आते हैं, घाटी छोड़ दीजियेगा।"

ऐसा उत्तर पा कर राजसिंह ने भी चंचलकुमारी की भांति उस समस्या का अर्थ न समझा, और सोचा कि—"केवल दो हजार सवारों के साथ आकर विक्रम सोलंकी हमारा क्या कर लेगा? हम सावधान हैं।" यह सोच कर उन्हों ने विक्रम सोलंकी के लिये घाटी छोड़ देने की आज्ञा फैला दी।

बारहवां परिच्छेद।

आग फिर जलाई गई।

उदयसागर के तीर लौट आकर औरंगज़ेब ने वहीं पर पड़ाव डाल रात बिताई। बिचारे सिपाही और सरबराहों ने खानादाना कर के जान बचाई। जब पेट भरा, तब मोगलसिपाहियों के डेरे डेरे गाना बजाना, क़िस्से कहानी, और तरह तरह की दिल्लगी प्रारम्भ हुई। एक मोगल बोला—"हिन्दुओं की अमलदारी में आए थे कि नहीं! इसी वास्ते हमलोगों को इकादशी का फाक़ा करना पड़ा।" इस पर एक मोगलानी बोल उठी—"किसी तरह बच आए, इसी को ग़नीमत समझो, हमलोगों ने तो समझा था कि

अब तुम लोगों का रफ़ादफ़ा हो गया होगा, इसी अफ़सोस में हमलोगों को भी फ़ाक़ाकशी अख्तियार करनी पड़ी।"

एक रंडी कई शौकीन मोगलों के सामने बैठी गीत गा रही थी, गाते गाते वह ताल भी देने लगी, यह देख एक समझदार मोगलबच्चे ने मुसकुरा कर पूछा—"ऐं! बीबीजान! यह क्या करती हो? तुम ताल क्यों देती हो?" रंडी ने कहा—"हज़रत! आप लोगों की बहादुरी देख कर अब मैं ऐसी पस्तहिम्मत हो रही हूं कि मेरा दिल नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान में रहूं; लिहाज़ा उड़ीसा जाने का इरादा किया है—इस गरज़ से ताल को मश्क़ करती हूं।" कोई उदयपुरी के लूटे जाने की बात ले कर अफ़सोस जाहिर करने लगा। कोई ख़ैरख़ाह हिन्दूसिपाही रावणवाले सीताहरन के साथ उदयपुरी के लूटे जाने की बराबरी करने लगा। कोई इस के जवाब में बोला कि—"बादशाह तो इतने बंदरों को अपने साथ लाया था, फिर भी इस सीता (उदयपुरी) का उद्धार क्यों न कर सका?" तब कोई बोला—"हमलोग सिपाही हैं, कुछ लकड़हारे नहीं हैं कि पेड़ काटने का इल्म हमलोग रक्खें। इसी सबब से हमलोग ज़रा शिकस्त खा गए।" इस के जवाब में किसी ने कहा—"सच है, तुम लोग तो धान काटने तक का इल्म रखते हो, फिर पेड़ क्योंकर काट सकोगे?" इसी तरह दिल्लगी मज़ाक हो रहा था।

इधर जब छावनीवाले रंगमहल के अन्दर बादशाह गया तो ज़ेबउन्निसा उस के आगे हाथ जोड़े हुई आ कर खड़ी हुई। औरंगज़ेब ने उस से कहा—"तू ने जो कुछ किया, उसे अपनी मर्ज़ी के बमूजिब कभी न किया होगा, इस अम्र को मैं बखूबी समझता हूं; लिहाज़ा तुझे मुआफ़ करता हूं; मगर ख़बरदार! इस निकाह की ख़बर हर्गिज़ ज़ाहिर न होने पाए।"

इस के बाद उस ने उदयपुरी बेगम के साथ भेंट की। उस समय उस

जाने के लिये कहा—"खां साहब! बादशाह के पास लौट जाने पर भी जो वह सचमुच आप को मुआफ़ करेगा, ऐसा भरोसा मुझे नहीं होता।"

मुबारक ने कहा—"ख़ैर, न सही।"

दूसरे दिन सबेरे की बेला मानिकलाल ने निर्मलकुमारी से उसी कबूतर को मंगलाकर और चिट्ठियों को काट छांट छोटी करके उसके पैर में बांध दिया। बस वह कबूतर छूटतेही आकाश में उड़ गया, पर पैर के बोझ से वह बहुतही पीड़ित था; तौभी किसी किसी तरह वह उड़ता हुआ, जहां पर कि बादशाह ऊपर को मुंह किए आकाश की ओर निहार रहा था, वहीं पर उसी के पास उन चिट्ठियों को उस ने पहुँचा दिया।

दसवां परिच्छेद।

आग बुझने के समय, उदयपुरी भस्म हुई।

कबूतर तुरतही औरंगज़ेब का उत्तर ले आया। राजसिंह ने जो जो बात चाही थी, औरंगज़ेब ने उन सभी बातों को स्वीकार किया; किन्तु एक बखेड़ा उस ने यह खड़ा किया और लिखा कि "चंचलकुमारी को भी हमें देदेना होगा।" इस पर राजसिंह ने कहा कि; "तो इस की अपेक्षा आप को वहीं पर सेना के साथ ही गोर देदेना हम उचित समझते हैं।" बस लाचार होकर औरंगज़ेब को वह इच्छा भी छोड़नी पड़ी। तब उस ने सुलह को स्वीकार कर मुन्शी के द्वारा उसी आशय का सुलहनामा, जैसा कि राजसिंह चाहते थे, लिखवा कर और उस पर अपना पंजा छाप कर अपने हाथ से उस पर लिख दिया कि "मंजूर है।" ज़ेबउन्निसा और मुबारक के बारे में उसने एक अलग पत्र में उन दोनों को क्षमा करने की बात स्वीकार की, किन्तु उसमें एक यह भी शर्त्त की कि "इस शादी के हालात को कोई किसी के आगे कभी किसी तरह से भी ज़ाहिर न करे।" इस के

अलावे इस बात का भी उस ने एकरार किया कि 'मेरी लड़की (ज़ेबउन्निसा) जिस में अपने शौहर से मिलने से बाज़ न रक्खी जाय, वैसा बंदोबस्त भी हम कर देंगे।"

निदान राजसिंह ने सुलहनामे को पाते ही मोगलसेना के छोड़ देने की आज्ञा प्रचार करा दी। तब राजपूतों ने हाथियों को लगा कर कटे पेड़ों को खैंचखांचकर अलग किया। राजसिंह ने यह सोच कर कि "बिचारे भूखे प्यासे मोगल इस बिल में से निकलते ही कहां से खाने को पावेंगे" दया कर बहुतेरे हाथियों पर खाने पीने के सरंजाम लदवाकर तोहफ़े के तौर पर भेज दिया था; और फिर अंत में उदयपुरी, ज़ेबउन्निसा और मुबारक को भी औरंगज़ेब के पास भेज देने के लिये उदयपुर में आज्ञा भेज दी। तब निर्मल ने चंचल से इशारा करके उस के कान में कहा कि,—"क्यों! बेगम ने तुम्हारी लौंडीपना किया न?" यों कह कर उस ने उदयपुरी से कहा कि "मैं आप को जो न्योता देने दिल्ली गई थी उसे आप ने अभी तक पूरा नहीं किया।"

उदयपुरी ने कहा—"मैं तेरी ज़बान के टुकड़े टुकड़े कर काट डालूंगी। ऐ तुमलोगों की क्या मजाल है, जो मेरे हाथों चिलम भरवा सको? तुमलोग सरीखे नाचीज़ काफिरों की क्या ताक़त है, कि बादशाह की बेगम को रोक रक्खोगी? क्यों? आखिर झखमार कर अब छोड़नाही न पड़ा? मगर हां, तुम कंबख्तों ने जैसी बेइज्ज़ती मेरी की है, उस का नतीजा बहुत जल्द तुम सभों को दूंगी। सब्र करो, उदयपुर का नाम निशान तक मिटा दूं तो सही।"

यह सुन कर चंचलकुमारी ने स्थिर भाव से कहा कि—"मैंने सुना है कि महाराना बादशाह पर दया कर के तुमलोगों को छोड़ देते हैं, पर तुम लोग उन दयावान राना को इस उदारता के लिये दो एक मीठी बात भी कहना नहीं जानतीं? इसलिये तुम्हारी खलासी नहीं होगी; जाओ तुम मेरी लौंडियों के घर में जा कर तुरन्त मेरे लिये चिलम भर लाओ।"

ज़ेबउन्निसा ने कहा—यह क्या, महारानी? आप इतनी बेदर्द हैं?

चंचलकुमारी बोली—नहीं, नहीं; आप शौक़ से जा सकती हैं, आप को कोई नहीं रोकेगा, पर इन बेगम साहिबा को मैं अभी नहीं जाने दूंगी।

इस पर ज़ेबउन्निसा ने चंचल की बड़ी खुशामद की, अन्त में उदयपुरी ने भी कुछ आजिज़ी दिखलाई; पर उस समय चंचलकुमारी इतनी कठोर हो रही थी कि उस ने किसी की भी एक न सुनी। पर बहुत कहने सुनने पर दया कर के उस ने उदयपुरी से केवल इतना ही कहा कि—"बस, मेरे लिये एकबार तम्बाकू भरिए, तभी आप जाने पाएंगी।"

तब उदयपुरी ने कहा—"मैं तम्बाकू भरना नहीं जानती।"

चंचलकुमारी ने कहा—"मेरी लौंड़ियां उस की तर्कीब आप को बतला देंगी।"

निदान, लाचार हो कर उदयपुरी ने यह बात मान ली, बांदियों ने उसे चिलम भरना बतला दिया, और उस बिचारी ने रो रो कर चंचलकुमारी के लिये तम्बाकू भरी।

तब चंचलकुमारी ने सलाम कर के उन दोनों को बिदा किया, और इतना और भी कह दिया कि—"बेगम साहिबा! यहां पर जो जो बातें हुई हैं उन सभी बातों का हाल आप बादशाह से जरूर कहिएगा और उन्हें इस बात का ख्याल दिला दीजियेगा। कि 'मैने (चंचल ने) ही उस की तस्वीर को अपने पैरोंतल कुचल कर उस की नाक तोड़ डाली थी।" और यह भी कहिएगा कि 'यदि आज पीछे फिर कभी वह किसी हिन्दूनारी की बेइज्जती करने का इरादा करेगा तो अब मैं केवल तस्वीर ही के ऊपर लात मारकर संतुष्ट होऊंगी।'

यह सुन उदयपुरी गर्मी की ऋतु के मेघों के समान सजल कान्ति होकर बिदा हुई।

अपनी बेगम, लड़की और खुराक पा कर औरंगज़ेब बेंत से मारे हुए कुत्ते के समान अपनी दुम दबाकर राजसिंह के सामने से भागा।

ग्यारहवां परिच्छेद।

आग के घेरे में प्यासी चातकी।

बेगमों को बिदा कर के चंचलकुमारी ने फिर चारो ओर अंधकार ही अंधकार देखा। उस ने मन ही मन यों कहा कि "ऐं! मोगल भी तो हारे गए, बादशाह की बेगम ने भी तो मेरी चिलम भरी, पर ऐं! राना तो अभी तक मेरे लिये कुछ भी नहीं कहते सुनते?" चंचलकुमारी को रोती देख, निर्मल उस के पास जा बैठी, और उस के मन की बात समझ कर बोली—

"तो महाराना को उस दिन की बातों की याद क्यों नहीं दिलाती?"

चंचल ने कहा—तुम क्या पागल हो गई हो? औरत हो कर अपने मुंह से बार बार वह बात कैसे कही जाय?

निर्मल—तो रूपनगर, अपने पिता के बुलाने के लिये पत्र क्यों नहीं लिखतीं?

चंचल—क्यों लिखूं? ऐं! उस पहिले पत्र का मुंहतोड़ उत्तर पा कर अब फिर वहां पत्र लिखूंगी?

निर्मल—बाप के ऊपर ऐसा क्रोध या मान न करना चाहिए।

चंचल—क्रोध या मान कुछ भी नहीं है, पर एक बार लिख कर—वह मेरा ही लिखा हुआ था—जैसा शाप पा चुकी हूं, उसे स्मरण कर अब भी कलेजा कांप उठता है। तो फिर क्या वहां पत्र लिखने का साहस होता है?

निर्मल—किन्तु वह पत्र तो विवाह के लिये लिखा था।

चंचल—और अब किस लिये लिखूं ?

निर्मल—सुनो, जब महाराना ने व्याह की कोई बात न कही तो अब मेरी समझ से तुम्हें नैहर ही जा कर रहना—चाहिए निश्चय जानो, औरंगज़ेब अब इधर कभी रुख न करेगा, इसीलिये तुम से पत्र लिखने के लिये कहती हूं। क्योंकि अब नैहर के विना दूसरा उपाय कौन सा है ?

इस पर चंचल कुछ जवाब दिया चाहती थी, पर वह बात उस के मुंह से बाहर न निकलने पाई और उस ने रो दिया। बिचारी निर्मल भी फीकी पड़ गई कि "मैं ने क्यों इस से ऐसी बात कही।"

फिर चंचल आंसू पोंछ, लजा कर जरा हँस पड़ी, निर्मल भी मुसकुराई; तब निर्मल ने हँस कर कहा—

"सुनो जी, मैं कभी दिल्ली के बादशाह के आगे बातों में न चपी, पर तुम्हारे आगे कायल हो गई; यह दिल्ली के बादशाह के लिये बड़े शर्म की बात है, और इमली बेगम के (मेरे) भी शर्मा जाने की बात है। तो अब जरा तुम सन्नाटा खैंच कर बादशाह की प्यारी इमली बेगम का (मेरा) मुन्शीपना देखो। हां ! जरा दावात कलम लेकर लिखना तो प्रारंभ करो, मैं बोलती जाती हूं।"

चंचल ने पूछा—"किस को लिखूं ? मा को या बाप को ?"

निर्मल ने कहा—"बाप को ?"

तब चंचल पत्र लिखने और निर्मल लिखवाने लगी—

"अब मोगलबादशाह माहाराना के हाथ—"

"बादशाह" तक लिख कर चंचलकुमारी ने कहा—"महाराना के हाथ—" लिखूं, या "राजपूतों के हाथ" लिखूं ? इस पर निर्मल ने जरा हँस कर कहा—"अच्छा यही लिखो।"

फिर चंचल निर्मल के कहे अनुसार पत्र लिखने लगी—

"हाथ से हार कर राजपूताने से खदेड़ दिया गया है। अब हमलोगों के ऊपर उस के ज़ोरजुल्म करने की आशा नहीं है। तो अब इस अवस्था में आप अपनी लड़की के लिये क्या आज्ञा देते हैं? क्योंकि मैं आप ही के आधीन हूं–"

इस जुमले के बाद निर्मल ने कहा–"कुछ महाराना के आधीन नहीं हूं।"

चंचल ने कहा—"दूर हो, पापिन! ऐसी बात मैं कभी न लिखूंगी।" तब निर्मल ने कहा–"तो यों लिखो कि–

"और किसी के आधीन नहीं हूं।" आखिर लाचार होकर चंचल को यह बात लिखनी पड़ी।

इस प्रकार पत्र के लिख जाने पर निर्मल ने कहा—"अब इस चिट्ठी को रूपनगर भेज दो।"

निदान, वह पत्र रूपनगर भेजा गया, जिस के जवाब में रूपनगर के राव साहब ने लिखा कि–"हम दो हजार फौज़ लेकर उदयपुर आते हैं। राना से कह दो कि हमारे आने के लिये पहाड़ी घाटी का रास्ता खोल दें।"

एँ! इस अचरज से भरे हुए पत्र का असल मतलब क्या है, सो चंचल या निर्मल ने कुछ भी न समझा। फिर अंत में उन दोनों ने सोच-साच कर यह निश्चय किया कि "जब इस में दो हज़ार फौज की बात है, तब महाराना से इस का हाल कह देना चाहिए।" यों सोच कर निर्मल-कुमारी ने मानिक लाल के पास इस बात की खबर भेज दी।

इधर राना भी इसी प्रकार के झमेले में पड़े थे; अर्थात् वे भी चंचल-कुमारी को नहीं भूले थे, इसलिये उन्हों ने भी विक्रम सोलंकी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र का यही आशय था कि चंचल कुमारी के विवाह के बारे में निर्णय करना। उस पत्र में राना ने विक्रम सिंह को उस शाप

का भी स्मरण दिला दिया था, जोकि पहिले पत्र के जवाब में विक्रम सोलंकी ने दिया था। और उन्हों ने जो प्रतिज्ञा की थी कि "जब हम राजसिंह को योग्यपात्र समझेंगे, तब उन्हें आशीर्वाद के साथ कन्यादान करेंगे।" उस की भी याद दिला दी थी, और अंत में राना ने यह भी पूछा था कि—"अब आप की क्या इच्छा है?" इत्यादि।

उस पत्र के उत्तर में भी विक्रम सोलंकी ने केवल वही बात लिखी, जो अपनी लड़की के पत्र के उत्तर में लिखी थी; अर्थात्—"हम दो हजार सवारों के साथ आप के पास आते हैं, घाटी छोड़ दीजियेगा।"

ऐसा उत्तर पा कर राजसिंह ने भी चंचलकुमारी की भांति उस समस्या का अर्थ न समझा, और सोचा कि—"केवल दो हजार सवारों के साथ आकर विक्रम सोलंकी हमारा क्या कर लेगा? हम सावधान हैं।" यह सोच कर उन्हों ने विक्रम सोलंकी के लिये घाटी छोड़ देने की आज्ञा फैला दी।

बारहवां परिच्छेद।

आग फिर जलाई गई।

उदयसागर के तीर लौट आकर औरंगज़ेब ने वहीं पर पड़ाव डाल रात बिताई। बिचारे सिपाही और सर्दारों ने खानादाना कर के जान बचाई। जब पेट भरा, तब मोगलसिपाहियों के डेरे डेरे गाना बजाना, क़िस्से कहानी, और तरह तरह की दिल्लगी प्रारम्भ हुई। एक मोगल बोला—"हिन्दुओं की अमलदारी में आए थे कि नहीं! इसी वास्ते हमलोगों को इकादशी का फाक़ा करना पड़ा।" इस पर एक मोगलानी बोल उठी—"किसी तरह बच आए, इसी को ग़नीमत समझो, हमलोगों ने तो समझा था कि

"हाथ से हार कर राजपूताने से खदेड़ दिया गया है। अब हमलोगों के ऊपर उस के ज़ोरजुल्म करने की आशा नहीं है। तो अब इस अवस्था में आप अपनी लड़की के लिये क्या आज्ञा देते हैं? क्योंकि मैं आप ही के आधीन हूं–"

इस जुमले के बाद निर्मल ने कहा–"कुछ महाराना के आधीन नहीं हूं।"

चंचल ने कहा—"दूर हो, पापिन! ऐसी बात मैं कभी न लिखूंगी।" तब निर्मल ने कहा–"तो यों लिखो कि–

"और किसी के आधीन नहीं हूं।" आखिर लाचार होकर चंचल को यह बात लिखनी पड़ी।

इस प्रकार पत्र के लिख जाने पर निर्मल ने कहा—"अब इस चिट्ठी को रूपनगर भेज दो।"

निदान, वह पत्र रूपनगर भेजा गया, जिस के जवाब में रूपनगर के राव साहब ने लिखा कि–"हम दो हजार फौज़ लेकर उदयपुर आते हैं। राना से कह दो कि हमारे आने के लिये पहाड़ी घाटी का रास्ता खोल दें।"

ऐं! इस अचरज से भरे हुए पत्र का असल मतलब क्या है, सो चंचल या निर्मल ने कुछ भी न समझा। फिर अंत में उन दोनों ने सोच-साच कर यह निश्चय किया कि "जब इस में दो हज़ार फौज की बात है, तब महाराना से इस का हाल कह देना चाहिए।" यों सोच कर निर्मल-कुमारी ने मानिक लाल के पास इस बात की खबर भेज दी।

इधर राना भी इसी प्रकार के झमेले में पड़े थे; अर्थात् वे भी चंचल कुमारी को नहीं भूले थे, इसलिये उन्हों ने भी विक्रम सोलंकी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र का यही आशय था कि चंचल कुमारी के विवाह के बारे में निर्णय करना। उस पत्र में राना ने विक्रम सिंह को उस शाप

का भी स्मरण दिला दिया था, जोकि पहिले पत्र के जवाब में विक्रम सोलंकी ने दिया था। और उन्हों ने जो प्रतिज्ञा की थी कि "जब हम राजसिंह को योग्यपात्र समझेंगे, तब उन्हें आशीर्वाद के साथ कन्यादान करेंगे।" उस की भी याद दिला दी थी, और अंत में राना ने यह भी पूछा था कि—"अब आप की क्या इच्छा है?" इत्यादि।

उस पत्र के उत्तर में भी विक्रम सोलंकी ने केवल वही बात लिखी, जो अपनी लड़की के पत्र के उत्तर में लिखी थी; अर्थात्—"हम दो हजार सवारों के साथ आप के पास आते हैं, घाटी छोड़ दीजियेगा।"

ऐसा उत्तर पा कर राजसिंह ने भी चंचलकुमारी की भांति उस समस्या का अर्थ न समझा, और सोचा कि—"केवल दो हजार सवारों के साथ आकर विक्रम सोलंकी हमारा क्या कर लेगा? हम सावधान हैं।" यह सोच कर उन्हों ने विक्रम सोलंकी के लिये घाटी छोड़ देने की आज्ञा फैला दी।

बारहवां परिच्छेद।

आग फिर जलाई गई।

उदयसागर के तीर लौट आकर औरंगज़ेब ने वहीं पर पड़ाव डाल रात बिताई। बिचारे सिपाही और सर्वराहों ने खानादाना कर के जान बचाई। जब पेट भरा, तब मोगलसिपाहियों के डेरे डेरे गाना बजाना, क़िस्से कहानी, और तरह तरह की दिल्लगी प्रारम्भ हुई। एक मोगल बोला—"हिन्दुओं की अमलदारी में आए थे कि नहीं! इसी वास्ते हमलोगों को इकादशी का फाक़ा करना पड़ा।" इस पर एक मोगलानी बोल उठी—"किसी तरह बच आए, इसी को ग़नीमत समझो, हमलोगों ने तो समझा था कि

अब तुम लोगों का रफादफ़ा हो गया होगा, इसी अफ़सोस में हमलोगों को भी फ़ाक़ाक़शी अख्तियार करनी पड़ी।"

एक रंडी कई शौक़ीन मोगलों के सामने बैठी गीत गा रही थी, गाते गाते वह ताल भी देने लगी, यह देख एक समझदार मोगलबच्चे ने मुसकुरा कर पूछा—"ऐं! बीबीजान! यह क्या करती हो? तुम ताल क्यों देती हो?" रंडी ने कहा—"हज़रत! आप लोगों की बहादुरी देख कर अब मैं ऐसी पस्तहिम्मत हो रही हूं कि मेरा दिल नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान में रहूं; लिहाज़ा उड़ीसा जाने का इरादा किया है—इस गरज़ से ताल को मश्क करती हूं।" कोई उदयपुरी के लूटे जाने की बात ले कर अफ़सोस जाहिर करने लगा। कोई खैरख्वाह हिन्दूसिपाही रावणवाले सीताहरन के साथ उदयपुरी के लूटे जाने की बराबरी करने लगा। कोई इस के जवाब में बोला कि—"बादशाह तो इतने बंदरों को अपने साथ लाया था, फिर भी इस सीता (उदयपुरी) का उद्धार क्यों न कर सका?" तब कोई बोला—"हमलोग सिपाही हैं, कुछ लकड़हारे नहीं हैं कि पेड़ काटने का इल्म हमलोग रक्खें। इसी सबब से हमलोग ज़रा शिकश्त खा गए।" इस के जवाब में किसी ने कहा—"सच है, तुम लोग तो धान काटने तक का इल्म रखते हो, फिर पेड़ क्योंकर काट सकोगे?" इसी तरह दिल्लगी मज़ाक हो रहा था।

इधर जब छावनीवाले रंगमहल के अन्दर बादशाह गया तो ज़ेबउन्निसा उस के आगे हाथ जोड़े हुई आ कर खड़ी हुई। औरंगज़ेब ने उस से कहा—"तू ने जो कुछ किया, उसे अपनी मर्ज़ी के बमूजिब कभी न किया होगा, इस अम्र को मैं बखूबी समझता हूं; लिहाज़ा तुझे मुआफ़ करता हूं; मगर खबदार! इस निकाह की खबर हर्गिज़ ज़ाहिर न होने पाए।"

इस के बाद उस ने उदयपुरी बेगम के साथ भेंट की। उस समय उस

ने रो रो कर अपनी बेइज़्ज़ती की सारी कहानी अच्छी तरह बढ़ाचढ़ा और रंगरोगन से संवार कर औरंगज़ेब से कह सुनाई; जिसे सुनते ही वह बहुत ही खफा हुआ और सांवला पड़ गया। और दूसरे दिन दर्बार में बैठ कर दर्बार आम खोलने के पहिले ही उस ने अकेले में मुबारक को बुलाकर कहा–

"इस वक्त हम ने तेरे बिल्कुल कुसूर मुआफ़ किए, क्योंकि अब तू मेरा दामाद हो चुका, हम अपने दामाद को एक अदने वहदे पर नहीं रहने देना चाहते, लिहाज़ा तुझे दो हज़ारी मनसबदारी की खिलत अता करता हूं। इस अम्र का परवाना आज ही जारी होगी, मगर इस वक्त तेरा यहां पर ठहरना नहीं हो सकता, वजह इस की यह है कि शाहज़ादा अकबर हमारी ही तरह पहाड़ी जाल में फंसा हुआ है। उस के छुटकारे के वास्ते दिलेर खां फ़ौज ले कर आगे जाता है; चुनांचे वहां ऐसे मौके पर तुझ सरीखे बहादुर आदमी की मदद ज़रूर दर्कार होगी। बस, तू आज ही–बल्कि अभी–उधर की ओर कूच कर।"

मुबारक औरंगज़ेब की इन बातों से खुश न हुआ, क्योंकि वह अच्छी तरह समझता था कि "औरंगज़ेब का खातिरदारी झलकाना अच्छा नहीं है।" पर यही समझ कर वह कुछ दुखी नहीं हुआ, क्योंकि वह भी तो कुछ मनही मन पक्का इरादा कर चुका था, उसे सोच कर उदास न हुआ। तब वह बहुत ही अधीनताई के साथ बादशाह से रुख्सत हो दिलेर खां की लश्कर में जाने की तैयारी करने लगा।

इस के बादही औरंगज़ेब ने एक विश्वासी दूत के हाथ दिलेर खां के पास एक चिट्ठी भेजी, जिस का मतलब यही था कि—मुबारक खां को दो हज़ारी मनसबदार बना कर तेरे पास रवानः करता हूं; मगर वह एक दिन भी ज़िन्दा न रहने पावे। अगर जंग में मरे तो बिहतर ही है, वर्नः किसी दूसरी तदबीर से वह मारडाला जाय।"

दिलेर खां मुबारक को पहिचानता न था तौ भी बादशाह के हुक्म को अवश्य ही पूरा करना चाहिये, इस बात का उस ने पक्का इरादा कर लिया।

इस के बाद औरंगज़ेब ने दर्बार आम में बैठ कर अपनी इच्छा प्रगट की। उस ने कहा—"हम ने फ़क्त क़ाफ़िरों के चकाबू में फंस कर ही सुलह की थी, चुनांचे उस सुलहनामे के क़ायम रखने की कोई ज़रूरत नहीं है। ऐ ग़ज़ब ! एक नाचीज़ राजा के साथ बादशाह की सुलह कैसी ? लिहाज़ा हम ने उस सुलहनामे को फाड़ कर फेंक दिया। अलावे इस के उस क़ाफ़िर राना ने रूपनगरवाली कुंवरि को अभी तक हमें न लौटाया, क्योंकि उस का बाप उस को हमें दे चुका है, इस वास्ते अब राजसिंह को मज़ाज़ नहीं है कि उस नाज़नी को रोके। चुनांचे जबतक वह उस परीज़माल को हमारी ख़िदमत में न दाख़िल करे, तबतक हम उस के क़सूर को मुआफ़ नहीं कर सकते। इस वास्ते जिस तरह से लड़ाई जारी है, उसी तरह बराबर जारी रहे। हमारा आम तौर से यह हुक्म होता है कि राजसिंह की अमलदारी के हल्के में जहांपर जब जो गाय दिखलाई दे, मुसलमानों को चाहिए कि उसी वक्त वहीं पर उसे मार डाला करें। और जहां पर, जो काफ़िरों के बुतख़ाने दिखलाई दें, फौरन वे ढाह दिये जायँ।"

येही सब सत्यानासी हुक्म जारी हुए। इधर दिलेर खां 'देसूरी' के रास्ते से होता हुआ मारवाड़ से होकर उदयपुर में घुसने की इच्छा से बढ़ा आता था, इसे सुनतेही राजसिंह ने औरंगज़ेब के पास अपना दूत भेजा और पुछवाया कि—"सुलह होजाने पर फिर यह छेड़छाड़ कैसी !" इसके उत्तर में औरंगज़ेब ने यह जवाब दिया कि "जबतक हमारी रूपनगरी बेगम हमारी ख़िदमत में न भेज दी जायगी, हम तुमको किसी तरह भी मुआफ़ नहीं कर सकते।" यह जवाब सुनतेही राजसिंह ने हंसकर कहा—"भला, बे, बेईमान धीरज धर, हम अभी तक जीते हैं।"

हाय ! रूपनगरवाली सुन्दरी का अपने हाथ से निकल जाना औरंगज़ेब के कलेजे में तीर की तरह चुभ गया था, इसलिये उसने राजसिंह से अपना मतलब निकलता न देख रूपनगर के राव साहब के ऊपर एक पर्वाना जारी किया और उस में यह लिखा कि—"तुम्हारी बेटी अभी तक हमारी ख़िदमत में न पहुंची, लिहाज़ा फ़ौरन उसे हमारे हुजूर में पेश करो; वर्नः रूपनगर गढ़ का नाम निशान तक न छोड़ा जायगा।"

इस पर्वाना के जारी करने से औरंगज़ेब ने यह भरोसा किया था कि "अगर बाप ज़िद करेगा तो चंचलकुमारी हमारे पास आने के वास्ते राज़ी हो जायगी।"

परन्तु उस पर्वाने को पाकर विक्रम सिंह ने केवल इतना ही उत्तर बादशाह को लिखा कि—"मैं बहुत जल्द दो जार घोड़ सवार फ़ौज के साथ हुजूर की ख़िदमत में हाज़िर होता हूं।

इस जवाब को पाकर औरंगज़ेब नें मन ही मन सोचा कि—"फ़ौज की क्या ज़रूरत है" ! फिर उस ने अपने मन को इस भांति समझाया कि—"हमारी ही मदद करने की नीयत से वह फौज लेकर आता है।"

तेरहवां परिच्छेद।

मुबारक का जलना प्रारम्भ हुआ।

सुन्दरता की भी कैसी महिमा है ! देखिए, ज़ेबउन्निसा को देख कर मुबारक फिर सब कुछ भूल गया। यदि मुबारक उस को पहिले ही की भांति मग़रूर और मुहब्बत के न रहने के कारन घमंड में फूली हुई देखता तो शायद फ़िर उस पर इतना लट्टू न होता, पर अब तो वही ज़ेबउन्निसा आजिज़ि से भरी हुई, घमंड से खाली, मुहब्बत से भरपूर और सदा आंसुओं से

तर हो रही थी। इसी कारन से मुबारक का भी पहिला प्यार फिर पूरी रीति से उमँग उठा और दरिया दर्या में बह गई। जब आदमी औरतों के प्रेम में अंधा हो जाता है, तब उसे फिर हित अनहित, या धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं रहता और तब उस नराधम के समान दूसरा कौन विश्वास घातक और पापी कहला सकता है?

हज़ारों दीपकों की चकाचौंध में चमचमाते हुए, उदयसागर के अंधकार रूपी जल के चारों ओर की पर्वतमाला को देखते देखते, पट मंडप के दुर्ग के भीतर इन्द्रभवन के समान महल में बैठे हुए मुबारक ने ज़ेबउन्निसा के हाथ को अपने हाथ में लेकर बड़े दुःख के साथ कहा,—

"प्यारी! खुशकिस्मती के बाइस फिर मैंने तुम को पाया, मगर अफ़सोस है कि इस चैन को दस दिन भी मैं न लूटने पाया।"

ज़ेबउन्निसा ने कहा,— क्यों, प्यारे? हमारे तुम्हारे ऐशो आराम में कौन टांगी मार सकता है? बादशाह?

मुबारक—ऐसा शक भी होता है, मगर बादशाह का जिक्र इस वक्त नहीं करता। बात यह है कि मैं कल जंग के लिये यहां से रवाना होऊंगा। लड़ाई में मरना जीना दोनों ही मौजूद है, मगर मेरी ओर तो मौत ही रक्खी हुई है; इस का सबब यह है कि मैंने राजपूतों की लड़ाई की जैसी बंदिशें देखीं, उस से यही क़यास में आता है कि पहाड़ी लड़ाई में हमलोग राजपूतों को हर्गिज़ नहीं शिकस्त दे सकते। बस, जैसे एक बार हमलोग शिकस्त खाकर भाग आए, वैसेही इस मर्तबः भी भागकर नहीं लौट सकते; चुनांचे हमलोगों को ज़रूर वहीं कट मरना पड़ेगा।

यह सुन ज़ेबउन्निसा ने आंखों में आंसू भर कर कहा—"घबराओ मत प्यारे! खुदा तुम्हारी मदद करेगा, और तुम फतहयाबी हासिल कर के लौटोगे। अगर तुम न लौटे तो सच जानो मैं भी अपनी जान दे डालूंगी।"

फिर दोनों की आंखों से आंसू बहने लगा। कुछ देर में अपने को सम्हाल कर मुबारक ने कहा–

"प्यारी ! मरूंगा नहीं, मरूंगा नहीं।" यों कह कर उस ने देर तक बहुत सा सोच विचार किया।

सामने वही नक्षत्रमाला से भरे हुए आकाश को छूने वाली पर्वत माला से घिरे हुए उदयसागर को जल में दीपावली से झिलमिलाती हुई पट निर्मित महानगरी की मन मोहिनी छाया और दूर पहाड़ी के ऊपर पहाड़ों की चोटी–उस पर भी चोटी, और चारों ओर घोर अधंकार फैला हुआ था। ऐसे समय में दोनों प्रेमियों ने केवल अंधकार ही अंधकार देखा।

एकाएक ज़ेबउन्निसा बोल उठी–

"एं ! एं ! इस अंधेरे में इस लश्कर की चार दीवारी के नीचे अभी कौन छिप गया ? प्यारे तुम्हारे वास्ते मेरा दिल हमेशः दहशत से दहला करता है।"

"देख आऊं ?" यह कह कर मुबारक लपकता हुआ पटमन्दिर की चार दीवारी के नीचे चला गया और वहां जाकर उस ने देखा कि सचमुच एक आदमी छिप कर सोया हुआ है। तब मुबारक ने उसे पकड़ा और उस का हाथ थाम्भ कर उसे उठाया। जो आदमी लुका हुआ था, वह उठ खड़ा हुआ, पर अंधेरे में मुबारक उसे पहिचान न सका। तब उसे खैंचकर लश्कर के अंदर दीये के उंजाले में ले आया। फिर मुबारक ने क्या देखा कि वह एक औरत है। उस औरत ने अपनी ओढ़नी से अपना मुंह ढांप लिया था और किसी तरह न खोला। तब मुबारक ने उसे एक पहरेवाले के हवाले कर ज़ेबउन्निसा के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। इस पर ताज्जुब कर के उस ने उस औरत को अपने सामने लाने के लिये कहा। तब मुबारक उस औरत को ज़ेबउन्निसा के सामने ले आया।

ज़ेबउन्निसा ने कहा—"तू कौन है ? घूंघट हटा ? बतला किस ग़रज़ से वहां लुकी थी ?"

तब उस औरत ने अपने मुंह का कपड़ा हटाया और मुबारक और ज़ेबउन्निसा इन दोनों ने चकपका कर देखा कि "यह तो दरिया है।"

अरे ! बड़े चैन के समय एकाएक बिना बादल के बिजुली टूट पड़ने से जैसी बेचैनी पैदा होती है, ज़ेबउन्निसा और मुबारक की भी इस समय वैसी ही दशा हुई। पर सब के सब ऐसे सन्नाटे में थे कि उन तीनों में से किसी के मुंह से चूं तक न निकला।

थोड़ी देर पीछे एक लंबी सांस खैंच कर मुबारक ने कहा,—

"या अल्लाह ! तो अब मुझे मरना ही पड़ेगा।"

इस पर ज़ेबउन्निसा ने बड़े दर्दनाक आवाज़ से कहा—"तो फिर मैं भी ज़रूर ही मरूंगी।"

दरिया बोली—"तुम लोग कौन हो ?"

इस पर मुबारक ने उस से कहा—"मेरे साथ आओ।"

यों कह कर बड़ी अधीनताई के साथ वह ज़ेबउन्निसा से बिदा हुआ।

चौदहवां परिच्छेद।

आग की नई चिनगारी।

राम सिंह राजनीति और युद्धनीति इन दोनोंही के अद्वितीय पंडित थे, इसलिये औरंगज़ेब जब तक अपनी सारी फौज़ को लेकर बहुत दूर तक न गया, तब तक उन्हों ने अपना शिविर न तोड़ा और न अपनी सेना के किसी हिस्से को अपनी जगह से हिलने दिया। वे अपने पड़ावही में थे इतने ही में खबर आई कि रूपनगर से बिक्रम सिंह दो हज़ार सेना

साथ लिये हुए आ रहे हैं। यह सुनते ही राज सिंह लड़ने के लिये तैयार हो गए।

एक सवार ने आगे आकर और अपने को बिक्रम सिंह का दूत बतलाकर राज सिंह से भेंट करने की इच्छा प्रगट की, तब द्वारपाल ने राज सिंह की आज्ञा लेकर उस सवार को उन तक पहुंचाया। उस ने राजसिंह को सिर नवा कर कहा कि रूप नगर के राजा बिक्रम सोलंकी महाराना (आप) के दर्शन के लिये सेना के साथ आए हैं।

इस पर राजसिंह ने कहा—"तो यदि वे हमारे शिबिर के भीतर आकर हम से मिलना चाहते हैं तो उन्हें अकेले आना पड़ेगा, और यदि वे अपनी सेना के सहित ही हम से भेंट करना चाहते हों तो उन को हमारे शिबिर के बाहर ही रहना होगा हम स्वयं सेना ले कर उन का सामना करेंगे।"

निदान बिक्रम सोलंकी अकेले ही शिबिर में आकर राजसिंह से भेंट करने के लिये राजी हुए। उन के आने पर राजसिंह ने आदर से उन्हें आसन दिया और फिर उन्हों ने राजा को कुछ नज़र दी। उदयपुर के महाराना राजपूत कुल में सर्व प्रधान थे, इसलिये वे इस नज़र के अधिकारी थे परन्तु उन्हों ने विक्रम सोलंकी की नज़र को न ले कर कहा—"आप से, ऐसी नज़रों के लेने के अधिकारी केवल मोगल बादशाह ही हैं।"

विक्रमसिंह ने कहा,—"किन्तु महाराना राजसिंह के जीते जी, हम भरोसा करते हैं कि अब कोई भी राजपूत मोगल बादशाह को नज़र न देगा। इसलिये महाराज! आप हम को क्षमा कीजिए। हम ने आप की बीरता का परिचय न पा कर ही वैसा पत्र आप को लिखा था। आज आपने जिस ढंग से मोगलों को चपेट दी है, इस से जान पड़ता है कि यदि समस्त राजपूत मिल कर आप की अधीनता में काम करेंगे तो मोगल बादशाहत मिट्टी में मिल जायगी। अब आप जरा हमारे उस पत्र के

अंतिम भाग को स्मरण कीजिए। और सुनिये, हम इस समय केवल आप को नज़र ही देने नहीं आए हैं, बरन हम और भी दो सामग्री आप को देने आए हैं। उन में से एक तो हमारे ये दो हजार सवार हैं, और दूसरी अपने निज हाथ की तलवार। महाराना! आज भी हमारी इस बाहु में क्षत्रियोचित बल है, इसलिये अब आप हम को जिस काम में लगावेंगे, हम अपने शरीर का विनाश कर के भी उस काम को पूरा करेंगे।"

बिक्रम सोलंकी की क्षात्रियोचित बातें सुनकर राना बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्हों ने अपना आन्तरिक आनंद विक्रम सिंह को दिखलाया और कहा—"आज सचमुच आप ने विक्रम सोलंकी के ही योग्यबातों को कहा है। देखिए, दुष्ट औरंगज़ेब हमारे फंदे में फंसकर जहन्नुम रसीदः हुआ चाहता था, तब रो गिड़गिड़ाकर संधि कर के उस ने छुटकारा पाया। बस छुटकारा पाते ही अब वह नीच क्या कहता है कि "हम ने सुलह कब की थी!" सो वह फिर युद्ध कर रहा है। दिलेर खां फौज लेकर शाहज़ादे अकबर की मदद के लिये जा रहा है; बस आप भले अवसर पर आ पहुंचे! सुनिऐ, दिलेर खां को रास्ते ही में अटकाना चाहिए, क्योंकि यदि वह जाकर अकबर के साथ मिल जायगा तो कुंवर जयसिंह पर घोर विपद पहुंचेगी। इस काम के लिये हम ने गोपीनाथ राठौर को उधर भेजा है, पर उस के पास सेना बहुत थोड़ी है; सो हम अपनी सेना में से थोड़ी सी उस के पास भेजेंगे, मानिक लाल सिंह नामक हमारा एक धुरंधर सेनापति उस सेना को गोपीनाथ के पास ले जायगा;-परंतु औरंगज़ेब पास ही है, इसलिये हम स्वयं इस जगह को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते और न अधिक सेना मानिक लाल ही के साथ भेज सकते हैं। बस हमारी यह इच्छा है कि आप भी अपनी घोड़ सवार सेना को लेकर उसी लड़ाई में जाइए और आप तीनों आदमी मिलकर दिलेर खां को रास्ते ही में उस की फौज के साथ काट डालिए।"

इस पर विक्रम सिंह ने आह्लादित हो कर कहा—"हम आप की आज्ञा को सिर पर चढ़ाते हैं।"

यह कह कर बिक्रम सोलंकी लड़ाई पर जाने की तैयारी करने के लिये राना से विदा हुए। पर बिचारी चंचलकुमारी के मतलब की कोई भी बात न हुई।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

मुबारक और दरिया, दोनों भस्म हो गए।

गोपीनाथ राठौर, विक्रम सोलंकी और मानिक लाल—ये तीनों जने मिल कर दिलेर ख़ां के विनाश करने के लिये चले। जिस राह से दिलेर ख़ां आता था, उसी रास्ते पर तीन जगहों में ये तीनों जने लुक रहे, पर उन तीनों में से कोई भी एक दूसरे से बहुत दूर न था। विक्रम सोलंकी घोड़सवार सेना साथ लेकर आए थे, इस कारण वे ऊंची पहाड़ी चोटी पर न रह सके। क्योंकि यदि वे पहाड़ की चोटी ही पर रहते तो भी उन्हें अपने वा अपनी सेना के घोड़े पास ही रखने पड़ते, इस का कारण यह है कि बिना घोड़े के निचली भूमिपरवाले शत्रु या डांकुओं के पीछे क्योंकर धावा मार सकते? और ऐसे २ छोटेमोटे राजा लोग रात के समय मौका देख कर आप भी एक आध डकैती—अर्थात एक रात में दस पांच गांव न लूटते, ऐसा नहीं था। पहाड़ के ऊपर उन के सिपाही घोड़े छोड़ कर प्यादों का काम करते। पर अब मोगलों के पीछे धावा मारना होगा, यह सोच कर बिक्रम सिंह घोड़ों के साथ आए थे। पर पहाड़ी लड़ाई में घोड़े से काम नहीं चलता, यह विचार कर वे पहाड़ की चोटी पर न जाकर कुछ समतल भूमि को ढूंढ़ने लगे, पर उन के इच्छानुसार भूमि न मिली। जहां पर वे समतल भूमि खोजते थे, उसी के आगे जंगल था, उसी जंगल के पीछे उन्हों ने अपने सवारों को पांती जोड़ कर खड़ा कर रक्खा और आप सब के आगे खड़े हुए। फिर मानिक लाल राजसिंह के प्यादों को लेकर एक जगह लुक रहा। और सब के पीछे गोपीनाथ राठौर रहा।

दिलेर ख़ां अकबर की दुर्दशा का हाल सुन कर ज़रा होशियारी के साथ आता था। पहिले वह आगे आगे सवारों को भेज कर पता लगा लेता

कि 'कहीं पर राजपूत लोग लुके हैं या नहीं।' इसलिये विक्रम सोलंकी के सवारों का पता उसे तुरंत मिल गया। तब उस ने अपनी थोड़ी सी फौज सवारों को भगा देने के लिये आगे भेजी। विक्रम सोलंकी की बुद्धि और और विषयों में चाहे मोटी रही हो, पर युद्ध के विषय में वे बड़े ही धूर्त्त और पंडित थे। क्योंकि अनेक समय में धूर्त्तता ही रणपांडित्य का काम करती है; सो वे मोगलसेना के साथ नाममात्र को युद्ध कर दिलेर खां के सिर तोड़ने के लिये हट गए।

तब दिलेर खां मानिक लाल को बगल में छोड़ कर आगे बढ़ा, क्योंकि वह नहीं जानता था कि मानिक लाल पास ही बगल में छिपा हुआ है। मानिक लाल ने भी सांस न ली और दिलेर खां को आगे निकल जाने दिया। सोलंकी को भगा कर दिलेर खां ने समझ लिया था कि "सब राजपूत हट गए;" इसलिये फिर उस ने पहिले की भांति होशियारी या दूरंदेशी से काम लेना फजूल समझा। मानिक लाल ने यों समझा कि "अभी छेड़-छाड़ का मौका नहीं है," इसलिये वह भी सन्नाटा मारे रहा।

फिर जहां पर गोपीनाथ राठौर लुका था, वहीं पर दिलेर खां पहुंच गया। वहां पर पहाड़ी रास्ता बहुत ही सकरीला था, बस वहीं पर फौज के सिरे के पहुंचते ही गोपीनाथ राठौर झपट कर उस पर ऐसे पड़ा, जैसे शेर बटोही के सामने पंजे झाड़ कर बैठ जाता है; वैसे ही वह भी अपनी सेना के साथ दिलेर खां के सामने आ डटा। यह देखकर दिलेर खां ने मुबारक को आज्ञा दी कि "सामने वाली फ़ौज को लेकर इन काफिरों को मार भगाओ" आज्ञा पाते ही मुबारक आगे बढ़ा, पर गोपीनाथ राठौर के हटाने की उस में क्या सामर्थ्य थी? क्योंकि उस सकरीले रास्ते में थोड़े से ही मोगल खड़े हो सकते थे। जैसे बिल में से चींटियां निकलने लगें तो बालक एक एक कर के सभों को पीस डालता है, उसी तरह राजपूत लोग भी उस सकरीले रास्ते में मोगलों को पीस पीस कर मारने लगे। इधर दिलेर खां सामने राह न पाकर अपनी फौज को लिये हुए चुपचाप बीच रास्ते में खड़ा रहा।

यह देख मानिक लाल ने समझा कि "बस यही अच्छा मौका है, पर वह अपनी सेना के साथ पहाड़ से उतर कर वज़्र की भांति दिलेर खां के

ऊपर जा गिरा। दिलेर खाँ की फौज जान लड़ाकर जूझने लगी, इतने ही में विक्रम सोलंकी भी अपने दो हजार सवारों को लिए हुए एकाएक दिलेर खाँ की फौज के पीछे आ खड़े हुए। उस समय तीन ओर से घिर कर मोगल सेना फिर कब ठहर सकती थी ? बस जो भाग सका, उस ने भागकर अपनी जान बचाई। बहुतों ने भागने की राह न पाई, और वे सब के सब किसानों के हंसुए से धान की फसल की भांति राजपूतों के हाथों काटे जाकर रणभूमि में ढेर हो गए।

केवल गोपीनाथ राठौर के सामनेवाले कई मोगल योद्धा किसी तरह भी पीछे न हटे और मौत को तिनके के बराबर समझ कर लड़ते ही रहे। वे लोग मोगल सेना के हीर चुनिन्दे चुनिन्दे मोगल वीर थे। उन सभों का सेनापति मुबारक था। पर वे मोगल भी बहुत देर तक न ठहर सके और छिन छिन में अनगिनत राजपूतों के चपेटे में आ कर एक एक कर के भूमि में लोटने लगे यहां तक कि अंत में केवल दो चार जने बच रहे।

दूर से यह देखते ही मानिक लाल वहां पर जल्दी से जा पहुंचा, और राजपूतों को पुकार कर उस ने कहा कि—"इन लोगों को मत मारो। ये वीर पुरुष हैं, इसलिये इन्हें छोड़ दो।"

सुनते ही राजपूत लोग छिन भर के लिये ठिठक रहे। तब मानिकलाल ने उन मोगलों से कहा—"जाओ, तुम लोग चले जाओ, तुम लोगों को छोड़ दिया ; हमारे कहने से तुम लोगों के साथ अब कोई राजपूत छेड़छाड़ न करेगा।"

इस पर एक मोगल ने कहा—"दुरुस्त है, मगर हमलोगों ने लड़ाई के वक्त कभी पीठ नहीं दिखलाई, लिहाज़ा आज भी पीछे न फिरेंगे।"

यों कह कर फिर वे कई मोगल लड़ने लगे। तब मानिकलाल ने मुबारक को पास बुला कर कहा—

"खाँ साहब ! अब लड़ने से क्या हासिल ?'

मुबारक ने कहा—"मौत !"

मानिक—"जान देने से फाइदा ?"

मुबारक—जनाब ! आप क्या नहीं जानते कि सिवा मरने के और मेरे वास्ते कहीं पनाह नहीं है।

मानिक–"तो फिर शादी क्यों की ?"

मुबारक—मरने के लिये।

ठीक इसी समय एक बंदूक की कड़ी आवाज पहाड़ों में गूंज उठी। और उस गूंजन के कान में पहुंचते पहुंचते मुबारक सिर में गोली लगने के कारण जमीन में लोट गया। मानिक लाल ने देखा कि मुबारक के प्रान पखेरू उड़ गए। उस के माथे में गोली धंस गई थी। मानिक लाल ने सिर उठाकर देखा कि पहाड़ के सिर पर एक औरत हाथ में बंदूक लिए खड़ी है, उस की बंदूक की नली से निकलता हुआ धूआं भी दिखलाई दिया। यहां पर इस बात के समझाने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि वह पगली औरत दरिया ही थी।

मानिक लाल ने उस औरत को पकड़ने की आज्ञा दी, पर वह हंसती हंसती भाग गई। तभी से फिर दरिया बीबी को इस पृथ्वी में किसी ने कभी न देखा।

लड़ाई के बाद ज़ेबउन्निसा ने सुना कि मुबारक जंग में मारा गया। यह सुनते ही उस ने अपने गहने, कपड़े, सिंगार, पटार उतार कर दूर फेंका और फिर वह उदयसागर की पथरीली कठोर भूमि पर पछाड़ खा कर खूब रोई—

"लगाए खाक छातियों में, ज़मीं से लगकर।
तड़पती, रोती, सिसकती थी, बाल खोले हुए *॥"

सोलहवां परिच्छेद।

पूर्णाहुति—इष्टलाभ।

युद्ध के अंत में विजयलक्ष्मी को लिए हुए, विक्रम सोलंकी राजसिंह के शिविर में लौट आए। उस समय राजसिंह ने आदरपूर्वक उन से गले गले मिले। विक्रम सोलंकी ने कहा—"महाराज! सब तो हुआ, पर अभी एक बात बाकी है, वही हमारी कन्या; सो मनसा वाचा कर्मणा आशीर्वाद देकर हम आप को उसी कन्या का दान दिया चाहते हैं, क्या आप उसे ग्रहण करेंगे ?"

* मु बधालिङ्गन धूसरस्तनो विलाप विकीर्णमूर्द्धजा।

राजसिंह ने कहा "ऐसी इच्छा है, तो उदयपुर चलिए।"

यह सुन विक्रम सोलंकी अपने दो हजार सवारों को लिये हुए, उदयपुर गए।

इस का कहना ही क्या कि उसी रात को ही राजसिंह ने चंचलकुमारी का पाणि ग्रहण किया। इस के बाद जो कुछ हुआ, उस के जानने का अधिकार इतिहास वेत्ताओं ही को है, उपन्यासलेखकों को उन सब बातों के कहने का कुछ प्रयोजन नहीं।

फिर स्वयं औरंगज़ेब राजसिंह के विनाश करने पर उतारू हुआ, शाहज़ादा आज़म भी आकर उस से मिल गया। यह सुन राजसिंह ने सुप्रसिद्ध मारवाड़ी दुर्गादास के साथ मिलकर औरंगज़ेब पर धावा किया। और फिर वह (औरंगज़ेब) पराजित और अपमानित हो कर बेंत खाए हुए कुत्ते की भांति जी छोड़कर भागा। राजपूतों ने उस का सर्वस्व लूट लिया और उस की अनगीनत सेना मारी गई।

औरंगज़ेब और आज़म ने डर से भाग कर रानाओं की छोड़ी हुई राजधानी चित्तौर में जाकर पनाह ली, पर वहां भी वह बे खटके न रह सका क्योंकि सुबल दास नामक एक राजपूत सेनापति ने उस के पीछे जाकर चित्तौर और अजमेर के बीच में अपनी छावनी डाली। फिर रसद की राह बंद होने के डर से रुहेल ख़ां को बारह हजार फौज के साथ सुबलदास के साथ लड़ने के लिये भेजकर औरंगज़ेब आप अजमेर को भाग गया, और फिर उस ने कभी भी जीते जी उदयपुर की ओर अपना रुख़ न किया। बिचारे के जी की वह साध सदा के लिये जाती रही।

इधर सुबलदास ने रुहेल ख़ां को उत्तम मध्यम देकर दूर भगाया। उस ने भी हार और भाग कर अजमेर में पनाह ली। दूसरी ओर से राजसिंह के द्वितीय पुत्र कुंवर भीमसिंह ने गुजरात प्रांत में मोगलों की अमलदारी में घुसकर सारे नगर, गांव, यहां तक कि मोगल सूबेदार की राजधानी को भी खूब ही लूटा और बहुत से इलाके अपने तहत में कर के सौराष्ट्र देश तक राजसिंह की अमलदारी बढ़ा दी। परन्तु कुंवर भीमसिंह के अत्याचार से पीड़ित वहां की प्रजाओं ने आकर राजसिंह से अपना दुख रोया। इस पर दयावान राजसिंह ने उन प्रजाओं के दुख से दुखी होकर भीमसिंह को लौटा

लिया और दया में पड़कर फिर उन्हों ने हिन्दूसाम्राज्य को नहीं स्थापित किया।

पर राजमंत्री दयाल साह उस प्रकृति के मनुष्य न थे, वे भी एक ओर युद्ध में लगे थे, और मालवे में मुसलमानों का सर्वनाश कर रहे थे। दुष्ट औरंगज़ेब ने हिन्दूधर्म के ऊपर भयानक राक्षसी अत्याचार किया था, उसी बात का बदला चुकाने के लिये दयाल साह वहां के काज़ियों के सिर मुड़वा २ कर उन सभा को कैदी बनाने और कुरान को देखते ही उसे कूएं में फेंकने लगे।

दयाल साह कुंवर जयसिंह की सेना के साथ अपनी सेना मिलाकर शाहज़ादे आज़म को अपनी सेना के घेरे में डाल चित्तौर के समीप उस से लड़ने लगे। अंत में आज़म भी अपनी सेना कटवा और हारकर भाग गया।

चार वर्ष तक युद्ध हुआ, परन्तु पद पद पर मोगल हारते ही गए; अंत में औरंगज़ेब ने सचमुच सुलह कर ली। उस समय राना ने जो जो चाहा, औरंगज़ेब ने उन की सभी बातें स्वीकार कीं; बरन और भी कुछ अधिक ही उसे स्वीकार करना पड़ा। सच तो यह है कि मोगल बादशाह ने ऐसी शिक्षा कभी भी नहीं पाई थी।

—*—

उपसंहार ।

ग्रंथकार का निवेदन ।

ग्रंथकार का विनीत निवेदन यही है, कि कोई पाठक यह न समझें "हिन्दू और मुसलमानों के किसी प्रकार के तारतम्य का दिखलाना ही ग्रंथकार का उद्देश्य है।" हिन्दू होने ही से कोई भला नहीं होता, योंही मुसलमान होने से ही कोई बुरा भी नहीं होता; अथवा हिन्दू होने ही से न कोई बुरा होता है और न मुसलमान होने ही से भला। क्योंकि भले वा बुरे लोग दोनों ही दल में बराबर ही हैं। वरन यह भी मानना पड़ेगा कि जब इतनी शताब्दियों तक मुसलमान भारतवर्ष के बादशाह रहे, तब राजकीयगुणों में मुसलमान उस समय के हिन्दुओं की अपेक्षा अवश्य ही श्रेष्ठ थे; पर यह भी सत्य नहीं है कि सभी मुसलमान बादशाह समस्त हिन्दू राजाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ रहे हों। पर हां, यह ठीक है कि अनेक स्थल में मुसलमान ही राजकीयगुणों में हिन्दुओं की अपेक्षा श्रेष्ठ थे। और सब से मुख्य बात तो यह है कि और और गुणों के साथ जिस में धर्म है, वही—चाहे हिन्दू हो, या मुसलमान—श्रेष्ठ है। और अन्यान्य गुणों के रहते भी जिस में धर्म का नाम तक नहीं है, वही—चाहे हिन्दू हो या मुसलमान—नीच भी है। अतएव औरंगज़ेब धर्म से रहित था, इसी कारण उस के समय से ही मोगल बादशाहत का नीचे गिरना प्रारम्भ हुआ था। और राजसिंह धर्मात्मा थे, इसीलिये वे एक क्षुद्र राज्य के आधिपति होने पर भी मोगल बादशाह को अपमानित और परास्त कर सके थे। बस इस ग्रंथ में इसी का निचोड़ कहा गया है। राजा जैसे होते हैं, राजा के अनुचर और राजा की प्रजा आदि भी वैसी ही होती हैं। देखिए, उदयपुरी और चंचलकुमारी की तुलना से ज़ेबउन्निसा और निर्मल कुमारी की तुलना से, और माणिक लाल तथा मुबारक की तुलना से

यह बात भली भांति जानी जा सकती है, इसलिए ये सब कल्पनाएं की गई।

औरंगज़ेब की उत्तम ऐतिहासिक तुलना से उसे स्पेन का दूसरा फिलिप कह सकते हैं। क्योंकि ये दोनों ही एक बड़े भारी साम्राज्य के अधीश्वर थे, दोनों ही ऐश्वर्य में, सेनाबल में, गौरव में और सभी राजाओं की अपेक्षा बहुत बड़े थे। दोनों ही श्रमशीलता, सतर्कता आदि राजकीय गणों से विभूषित थे, परन्तु दोनों ही महा निठुर, कपटाचारी, क्रूर, दांभिक, आत्ममातहितैषी और प्रजापीड़क थे। इसलिये ये दोनों ही अपने अपने साम्राज्य के मिट्टी में मिल जाने के वीये को बो गए। ये दोनों ही एक छुद्र सत्रुद्वारा पराजित और अपमानित हुए थे, जिनमें—फिलिप अंग्रेज (तब यह एक छुद्र जाति थी,और ओलंदेजोंसे, और औरंगज़ेब मरहटे और राजपूतों से पराजित हुआ था। महाराष्ट्र वीर शिवा जी और अंगरेज़ों की उस समय की नेत्री अलिज़ेबेथ की बराबर तुलना की जा सकती है, परन्तु इन दोनों की अपेक्षा भी ओलंदेज विलियम और राजपूतकुलतिलक राजसिंह की भली भांति से तुलना है। इन दोनों ही की अक्षयकीर्त्ति इतिहास में भरी पड़ी है, परन्तु कसर इतनी ही है कि विलियम ने योरोप में देशहितैषी, धर्मात्मा और वीरपुरुषों के अग्रगण्य कहला कर प्रसिद्धि पाई थी—और इस देश में इतिहास ही नहीं है, इसी से राजसिंह को कोई चीन्हता ही नहीं।

समाप्त।

